भूमिका

"अग्निर्जातो अथर्वणा विदद् विश्वानि काव्या"

(ऋग्वेद १०–२१–५)

वेद ईश्वरीय ज्ञान का भंडार है। संसार में जितना भी ज्ञान विज्ञान, विद्याएँ और कलाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। उन सब का मूल, वेद में ही विद्यमान है। यह सत्य है कि बाद में भिन्न-भिन्न आचार्यों और विद्वानों ने अपनी-अपनी रुचि के विषयों की व्याख्या और विस्तार करके उनको स्वतन्त्र शास्त्रों का रूप दिया है, परन्तु जो कोई ध्यानपूर्वक अध्ययन करेगा उसे यह अवश्य प्रतीत होगा कि संसार के ज्ञान का आदि स्रोत वेद ही है।

मानव जीवन बहुमुखी होता है। पशुओं की तरह केवल आहार कर लेने अथवा सन्तानोत्पत्ति करने से मानव-जीवन सार्थक नहीं हो सकता। आत्म-ज्ञान, नीति, आचार, चरित्र सम्बन्धी ज्ञान, नाना प्रकार की विद्याओं और कलाओं का ज्ञान ही मनुष्य को "मानव" नाम का अधिकारी बना सकता है। इसी उद्देश्य से मानवीय-सभ्यता के आरम्भ में ईश्वरीय ज्ञान के दृष्टा ऋषियों ने जीवनोपयोगी समस्त ज्ञान को वेदों की ऋचाओं के रूप में प्रकाशित किया। वैसे तो चारों ही वेदों में ईश्वरीय विभिन्न शक्तियों का रहस्य और ज्ञान संग्रहीत है, पर अध्ययन करने वालों की सुविधा के लिए चारों वेदों का यह समस्त ज्ञान चार मुख्य भागों में विभाजित कर दिया है, जैसा कि निम्न ऋचा में कहा गया है—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद् जायत॥

(ऋ० १०–९०–९)

अर्थात् "उस 'सर्वहुत यज्ञ' अर्थात् सर्व शक्तिमान परमेश्वर से ऋचाएँ (ऋग्वेद) साम, छन्द (अथर्व) और यजु: उत्पन्न हुये।" इनमें से अथर्व का "ब्रह्मवेद" "अमृतवेद" "आत्मवेद" के नाम से भी उल्लेख किया जाता है। वास्तव में यह आत्मज्ञान का वेद है। इसके अध्ययन द्वारा मनुष्य अपने में अन्तर्हित समस्त शक्तियों के ज्ञान और प्रयोग को समझकर और संसार में पूर्ण सफलतायुक्त जीवन व्यतीत करके ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। इसी बात को लक्ष्य में रखकर भूमिका के आरम्भ में दिये गये मन्त्रार्थ में कहा गया है, कि "अथर्वा से उत्पन्न विद्या ने समस्त काव्यों का ज्ञान प्राप्त किया।" यह सत्य है कि मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष बतलाया गया है, पर जब तक मनुष्य पहले तीन पुरुषार्थों को--अर्थात् धर्म, अर्थ, काम को पूरा नहीं कर लेता तब तक मोक्ष का दावा करना बुद्धि-संगत नहीं कहा जा कहता। इसीलिये परम ज्ञानी और सर्व विद्या विशारद अथर्वाचार्य ने इस वेद में मानव-जीवन के लिये आवश्यक सब प्रकार की विद्याओं और साधनो का ज्ञान भर दिया है। शास्त्रकारों ने "अथर्ववेद" के कर्मों" की जो सूची बनाई है उस पर एक दृष्टि डालने से ही इस वेद की महत्ता प्रकट हो जाती है। उन विद्याओं का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

(१) स्थाली पाक: (अन्नसिद्धि)

(२) मेधाजननम् (बुद्धि की वृद्धि करने के उपाय)

(३) ब्रह्मचर्यम् (वीर्यरक्षण, ब्रह्मचर्य व्रत आदि)

(४) ग्राम-नगर राष्ट्र वर्धनम् (ग्राम, नगर, किले राज्य आदि की प्राप्ति और उनका संवर्धन)

(५) पुत्र, पशु, धन, धान्य, प्रजा, स्त्री, करि, तुरगरथान्दोलिकादि सम्पत्साधिकानि (पुत्र, पशु, धन, धान्य, प्रजा, स्त्री, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि ऐश्वर्य साधनों की सिद्धि के उपाय)

(६) साम्मनस्यम् (जनता में एक्य, मिलाप, प्रेम, सहयोग आदि की स्थापना के उपाय)

(७) राज-कर्म (राजा के कर्त्तव्य और आवश्यक कर्म)

(८) शत्रु-त्रासनम् (शत्रु को कष्ट देने और नष्ट करने के उपाय)

(९) संग्राम-विजय (युद्ध में विजय सम्पादन करना)

(१०) शस्त्र-निवारणम् (शत्रुओं के शस्त्रों, आक्रमणों का निवारण करना ।

(११) पर सेना मोहनोद्वेजनस्तंभनोच्चाटनादीनि (शत्रु सेना में मोह, भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेग भाव उत्पन्न करना, उनकी हलचल को रोकना, उनको उखाड़ देना आदि के उपाय)

(१२) स्वसेनोत्साह परिरक्षण भयार्थानि (अपनी सेना का उत्साह बढ़ाना और उसको निर्भय करना)

(१३) संग्रामे-जय पराजय परीक्षा (युद्ध में जय होगी या पराजय, इसका पहले से विचार कर लेना)

(१४) सेनापत्यादि प्रधान पुरुष जय कर्माणि (सेनापति, मन्त्री, अमात्य आदि प्रधान राज्याधिकारियों को नियन्त्रण में रखना)

(१५) पर सेनासञ्चारणम् (शत्रु की सेना में गुप्त रीति से सञ्चार करके उसका सब भेद जान लेना और वहाँ से अपने ऊपर आने वाले अनिष्टों के प्रतिकार की व्यवस्था करना)

(१६) शत्रुत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्र प्रवेशनम् (शत्रु द्वारा उखाड़े गये अपने राजा को पुनः स्वराष्ट्र में स्थापन करने की योजना)

(१७) पापक्षय कर्म (पतन के कारणों को दूर करना)

(१८) गोसमृद्धिकृषि पुष्टतराणि (गौ, बैल आदि का संवर्धन और कृषि कार्य को विकसित करना)

(१९) गृहस्मतकराणि (घर की शोभा और वैभव बढ़ाने के कर्म)

(२०) भैषज्यानि (रोग निवारक औषधियों का ज्ञान)

(२१) गर्भाधानादि कर्म (गर्भाधान से लेकर समस्त आवश्यक संस्कार)

(२२) सभाजय साधनम् (सभा में, विवाद में जय प्राप्त करने और कलह शांति के उपाय)

(२३) वृष्टि साधनम् (योग्य समय पर वृष्टि कराने के उपाय)

(२४) उत्थान कर्म (शत्रु पर चढ़ाई करना)

(२५) वाणिज्य लाभः (देश विदेश में व्यापार की वृद्धि करके लाभ उठाना)

(२६) ऋण विमोचनम् (दूसरे लोगों के देने, ऋण को उतारने की विधियाँ)

(२७) अभिचार निवारणम् (व्यक्तिगत अथवा सामाजिक शत्रुओं का नाशक विधियों से बचाव करना)

(२८) आयुष्यम (दीर्घ आयु और सुदृढ़ स्वास्थ्य की प्राप्ति के साधन)

(२९) यज्ञ-याग (मानव कल्याणकारी यज्ञों की क्रियाएं)

इस सूची से विदित होता है कि अथर्ववेद मानव-जीवन को सुचारु रूप मे सञ्चालित करने तथा सांसारिक विघ्न बाधाओं को पार करके स्थायी सुख और शान्ति के प्रदेश में प्रवेश करने की कुन्जी है। कुछ विदेशी लोगों ने इस वेद पर जादू टोना और अश्लीलता आदि का आक्षेप किया है, पर वे यह विचार नहीं करते कि यदि मनुष्य में सांसारिक संघर्षो में विरोधियों का सामना करने और उन्हें पराभूत करने की शक्ति और बुद्धि न होगी तो वह अपने धार्मिक और नैतिक कर्तव्यों का पालन भी किस प्रकार कर सकता है ? संसार में दुष्ट प्रकृति के लोग सदा से ही रहते हैं और सदैव ही रहेंगे। यदि हम उनके कुचक्रों से अपनी रक्षा करने में समर्थ न होंगे तो हमारे धर्म कर्म की तो क्या वात, हमारे शरीर, घर, परिवार आदि का भी अस्तित्व नहीं रह सकता। इसलिए अथर्वकार ने मनुष्य को धर्म, नीति सच्चरित्रता के नियमों की शिक्षा देने के साथ साथ उन विधियों का भी ज्ञान प्रदान किया है जिनके द्वारा वे दुष्टों द्वारा किए जाने वाले अनिष्टकारी उपायों का भली प्रकार प्रतिकार कर सकें। 'अथर्व-वेद'

के सबसे प्रथम मन्त्र में ही इस बात को स्पष्ट कह दिया गया है —

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ।।

"विश्व में दिखलाई देने वाले समस्त रूपों को धारण करके, जो तीन गुणा सात (अर्थात् इक्कीस) पदार्थ सर्वत्र व्याप्त हैं, उनको शरीर के बल-वाणी का स्वामी आज मुझे देवे ।"

यह समस्त जगत सात मूल पदार्थों से बना है — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, तन्मात्रा और अहंकार । ये सात पदार्थ ही न्यूनाधिक परिणाम में सम्मिलित होकर संसार की प्रत्येक वस्तु को एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं । साथ ही ये सातों पदार्थ तीन अवस्थाओं में होकर गुजरते हैं अर्थात (१) सत्त्व (समावस्था) (२) रज (गतिरूप अवस्था) (३) तम (गतिहीन अवस्था) संसार में जो कुछ भी भली-बुरी वस्तु या कार्य दिखलाई देते हैं, वे सब इन्हीं इक्कीस विभागों के अन्तर्गत आते हैं । इसलिए सच्चा आचार्य या गुरु (वाचस्पतिः) वही है जो शिष्य को इन इक्कीस भेदों का यथार्थ ज्ञान प्रदान करके, उसमें संसार-सागर में कुशलतापूर्वक संचार करने और पार लग जाने की शक्ति उत्पन्न करता है । अथर्ववेद में जहाँ कहीं 'अभिचार' 'कृत्या' आदि का विषय आया है वहाँ यह भी प्रकट कर दिया गया है कि उसका उद्देश्य धार्मिकों की रक्षा और पापियों का निवारण करना ही है । इतना ही नहीं वेद में इस प्रकार के कर्म करने की प्रेरणा शायद ही एकाध स्थान पर मिल सके, अधिकांश में राक्षसों, पिशाचों (दुष्टों) द्वारा किए जाने वाले ऐसे अभिचार-कर्मों के निवारण का ही विधान बतलाया गया है ।

यही बात अश्लीलता के आक्षेप के सम्बन्ध में कही जा सकती है । वेद में मनुष्यों को गार्हस्थ धर्म का उपदेश दिया गया है और इस सम्बन्ध में जहाँ अतिथि पूजा और पशु-पालन, कृषि आदि सम्बन्धी बातें बतलाई हैं वहाँ सन्तानोत्पादन, गर्भ रक्षा, प्रसव आदि की भी शिक्षा दी है । इन तथ्यों को लेकर ही बाद में वात्सायन आदि

ऋषियों ने "कामसूत्र" जैसे ग्रन्थों की रचना की । जब ये बातें स्वास्थ्य-विज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि ये बतलाई जायें तो कोई मूर्ख अथवा छिद्रान्वेषी-व्यक्ति ही उन पर अश्लीलता का आरोप कर सकता है ।

अथर्ववेद में जगह-जगह रोगों के मिटाने के लिए अथवा दूषित स्वभाव को सुधारने के लिए उपाय बतलाए गये हैं, जिनकी अनेक व्यक्ति जादू-टोने अथवा गंडा-तावीज आदि से तुलना करते हैं। इसका वास्तविक तथ्य यह है कि प्राचीन काल के आत्मशक्ति सम्पन्न ऋषिगण आजकल के समान बाह्य उपचारों के बजाय शारीरिकि विद्युत और मानसोपचार की विधियों पर अधिक बल देते थे और प्रायः उन्हीं का प्रयोग करके विभिन्न व्याधियों और मानसिक दोषों का प्रतिकार करते थे । आजकल भी भारतीय ग्रन्थों का आधार लेकर अनेक विदेशी विद्वानों ने मार्जन या अभिमर्शन (मेस्मरेजिम) आदेश (हिप्नैटिक-सजैशन) सङ्कल्प या आवेश (सेल्फ हिप्नोटिज्म) मानसोपचार (मैन्टल हीलिग) आदि की विधियाँ निकाली हैं ।

आधुनिक विज्ञान की बाह्य सफलता से चकाचौंध में पड़ जाने वाले व्यक्तियों के समाधान के लिए ही हमने उपर्युक्त कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं । अन्यथा इन बाहरी विधियों, और भौतिक शक्तियों से वेद की विधियों की कोई तुलना नहीं की जा सकती । वेदों का वास्तविक रहस्य तो आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर ही प्रकट होता है और उसी के महत्व को दृष्टिगोचर करके प्राचीन ऋषि लिख गए हैं:—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्ति पारगः ।
निवसत्यादि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥

"जिस राष्ट्र या राज्य में अथर्व वेद का ज्ञाता शांति के विधान को जानने वाला विद्वान रहता है वह राष्ट्र सब प्रकार के उपद्रवों से बचकर प्रगति करता रहता है ।"

—श्रीराम शर्मा आचार्य

॥ ॐ ॥

प्रथम काण्ड

(प्रथम अनुवाक)

१ सूक्त

——❀——
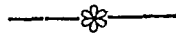
(ऋषि–अथर्वा । देवता–वाचस्पतिः । छन्द–अनुष्टुप्; वृहती)

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पति नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेम गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

जड़ चेतन में समस्त रूपों से व्याप्त तीन गुणा सात (इक्कीस) देवता सर्वत्र भ्रमण करते हैं। वाणों के स्वामी ब्रह्माजी उनके असाधारण बल को आज मुझे दें (जगत में सात पदार्थ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा और अहंङ्कार हैं और तीन गुण सत्व, रज और तम बतलाये गये हैं। इन सप्त तत्वों के तीनों गुणों में व्याप्त होने से ही २१ प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति होती है।) ॥१॥ हे वाणी के स्वामी देव ब्रह्मा ! प्रकाशित मन के साथ मेरे पास आइए। हे वसुपति ! इच्छित फल प्रदान कर मुझे आनन्दित करिये। पढ़े हुए ज्ञान को धारण करने के लिये बुद्धि

प्रदान कीजिये ॥२॥ जैसे धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाने से दोनों सिरे समान रूप से खिंच जाते हैं वैसे ही, हे वाचस्पति ! वेद धारण करने की बुद्धि और आनन्दोपभोग की इच्छित सामिग्री मुझे, एकत्रित करो । पूर्ण रूपेण मुझ में स्थित करो । आपकी दी हुई सुख सामिग्री और बुद्धि मुझमें स्थिर रहे ॥३॥ वाणी के स्वामी ब्रह्माजी का हम आह्वान करते हैं । देव वाचस्पति हमको बुलावें । हम ज्ञान से कभी दूर न हों । सम्पूर्ण ज्ञान से हम ओतप्रोत हों ॥४॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—पर्जन्यः । छन्द—अनुष्टुप्; गायत्री)

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१॥
ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि ।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥२॥
वृक्ष यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् ।
शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र ॥३॥
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रवं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

सभी जड़ चेतन को धारण पोषण करने वाला पर्जन्य इस बाण का पिता है, यह हम जानते हैं तथा समस्त तत्वों से युक्त पृथ्वी इसकी माता है यह भी हम अच्छी तरह जानते हैं । इन दोनों से पुत्र "शर" की उत्पत्ति होती है ॥१॥ हे देवपति हमारे शरीरों को पत्थर जैसा सुदृढ़ और शक्ति सम्पन्न बनाओ । यह प्रत्यञ्चा हमारी ओर न झुके (दूसरों की ओर झुके) हमारे शत्रुओं के द्वेषपूर्ण कर्मों को हमसे दूर रखो ! उनका बल नष्ट करो ॥२॥ जिस प्रकार वट वृक्ष की सघन छाया में गर्मी से पीड़ित गौयें शीघ्रता से शरण लेती है, उसी प्रकार शत्रु द्वारा पालन किये जाने वाले उसके वीरों द्वारा हम पर चलाये गए तीव्र बाण को हम से दूर

हटाओ ॥३॥ जिस प्रकार पृथ्वी और द्युलोक के बीच में तेज की स्थिति होती है उसी प्रकार रोग, स्राव और घावों को यह शर दबाये रखे ॥४॥

३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—पर्जन्यादयो । छन्द—पंक्तिः; अनुष्टुप्)

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ।१।
विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ।२।
विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ।३।
विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ।४।
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ।५।
यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रितम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ।६।
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्याइव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ।७।
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ।८।
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ।९।

शर (बाण) के पिता को हम भली-भाँति जानते हैं। वे सैकड़ों बल युक्त सामर्थ्य वाले मेघ हैं। उस शर से हे रोगी ! तेरे मूत्रादि रोगों को नष्ट करता हूँ। शरीर में रुका हुआ तेरा मूत्र बाहर निकले ।१। हम शर

के अनन्त शक्ति सम्पन्न एवं वीर्यवान् मित्र (सूर्य) को जानते हैं। हे रोग पीड़ित मनुष्य ! इससे मैं तेरे रोग को दूर करता हूँ। पेट में रुका हुआ तेरा मूत्र बाहर निकल जावे ॥२॥ बाण के पिता अमित बल सम्पन्न वरुण को हम जानते हैं। हे रोग ग्रस्त ! इस बाण से मैं तेरे रोगों का उपशमन करता हूँ। तेरे शरीर से मूत्र शब्द करता हुआ शीघ्र ही बाहर निकले ॥३॥ हम अनन्त वीर्यवान और आनन्द देने वाले चन्द्रमा को, जो शर का पिता है जानते हैं। ऐसे शर में तेरे रोगों को दूर करता हूँ। पृथ्वी पर तेरा मूत्र शब्द करता हुआ बाहर निकले ॥४॥ अनन्त बल वीर्यवान तेजस्वी सूर्य को हम शर का पिता जानते हैं। हे रोगिन ! ऐसे शर से मैं तेरे शरीर में से रोगों को हटाता हूँ। तेरा उदरस्थ मूत्र शब्द करता हुआ शीघ्र ही बाहर आवे ॥५॥ जो मूत्र तेरे मूत्राशय और मूत्र नाड़ियों में रुका हुआ है वह शीघ्र ही शब्द करता हुआ बाहर निकल आये ॥६॥ जिस प्रकार तालाब के पानी को बाहर निकालने के लिये मार्ग को खोदते हैं, उसी प्रकार हे मूत्र रोग से ग्रसित रोगी ! मैं तेरे मूत्र निकलने के लिए मार्ग को खोलता हूँ। तेरा सारा इकट्ठा हुआ मूत्र शब्द करता हुआ बाहर निकले ॥७॥ जैसे समुद्र, सागर, तालाब आदि का जल निकालने के लिए मार्ग बना दिया जाता है वैसे ही मैंने तेरे रुके ही मूत्र को बाहर निकालने के लिये मूत्राशय के द्वार को खोल दिया है। तेरा सारा मूत्र शब्द करता हुआ बाहर निकल जावे ॥८॥ जैसे धनुष से छोड़ा हुआ बाण शीघ्र ही अपने लक्ष्य की ओर चला जाता है उसी प्रकार रुका हुआ तेरा सारा मूत्र शब्द करता हुआ बाहर निकल जावे ॥९॥

४ सूक्त

(ऋषि–सिन्धुद्वीपः कृतिर्वा। देवता–आपः छन्द–गायत्री; बृहती)

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः १

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् २

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ।३।

अप्स्वतरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ।४।

यज्ञकर्ताओं की माता और बहन के समान जल, सोमरस, होमद्रव्यदूध घृत आदि को अपने मार्गों से यज्ञ में लेकर आते हैं ।।१।। सूर्य जिस जल के साथ रहता है तथा सूर्यमण्डल स्थित वह जल हमारे यज्ञ को फल प्रदान करने की शक्ति सम्पन्न करे ।।२।। मैं जल के अधिष्ठाता देवता का आह्वान करता हूँ जहाँ जल पूर्ण नदी तालाबों में हमारी गायें जल पीती हैं ।।३।। जल अमृत और औषधियों से परिपूर्ण है। इसके इन दिव्य गुणों से हमारे घोड़े और गायें बलवान तथा शक्ति सम्पन्न बनें ।।४।।

५ सूक्त

(ऋषिः–सिन्धुद्वीपः कृतिर्वा । देवता—आप : । छन्द—गायत्री)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ।१।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ।२।
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ।३।
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ।४।

हे जलो ! क्योंकि आप समस्त सुखदायक हो इसलिए हमें सुखोपभोग करने रमणीय तत्वों के दर्शन करने, तथा परब्रह्म से साक्षात्कार के लिये परिपुष्ट करिये ।।१।। जिस प्रकार मातायें स्वेच्छा से अभिलाषापूर्वक अपने बच्चों को दूध पिलाकर पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार हे जलो ! आप में स्थित जो तत्वरूप परम कल्याणकारी रस है उसमें हमको भागीदार करो। अर्थात् उस रस से पुष्ट करो ।।२।। हे जलो ! जिस अन्नादि की वृद्धि के लिये तृप्त करते हो, उस अन्न की प्राप्ति के लिये आपको हम पर्याप्त रूप में पावें और आप हमें अधिकाधिक रूप में बढ़ाओ ।।३।। समस्त धनों एवं सुख साधनों के स्वामी, प्राणी मात्र को अपने-अपने स्थान पर बसाने वाले औषधियों से व्याधि निवारण करने वाले जल की मैं प्रार्थना करता हूँ ।४।

६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा कृतिर्वा । देवता—आपः । छन्द—गायत्री;पंक्तिः)

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः ।१।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्व-
शम्भवम् ॥२॥

आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वे मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३॥

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः । शं खनित्रिमा आपः शमु
याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥४॥

दिव्य गुणों से सम्पन्न जल हमें सभी ओर से सुखकारी हों तथा पूर्ण शान्ति प्रदान करें । ईश्वर प्राप्ति में सहायता करें तथा हमारे पीने के लिये हों ॥१॥ जल में सब औषधियां विद्यमान हैं तथा समस्त जग को आनन्द तथा कल्याण देने वाला अग्निदेव है, ऐसा मुझे सोम ने उपदेश दिया है ॥२॥ हे जलो ! मेरे रोगों के शमनार्थ तुम मुझे औषधियाँ प्रदान करो और मेरे शरीर को पुष्ट करो ताकि मैं बहुत समय तक सूर्य को देखता रहूँ ॥३॥ मरु प्रदेश का जल हमें सुख प्रदान करे,जल सम्पन्न देश का जल भी हमें सुखकारी हो,खोदे हुए कुएं आदि का जल हमें सुखप्रद हो, घड़े आदि बर्तन में भरकर लाया हुआ जल हमें सुख प्रदान करे,वर्षा से प्राप्त हुआ जल भी हमें सुख दे ॥४॥

७ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—चातनः । देवता—अग्निः; इन्द्रश्च । छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥

राज्यस्य परमेष्ठिन्जातवेदस्तनुवशन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥

वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्न नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥४॥

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आयन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धां इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७॥

हे अग्ने ! जिस देवता की हम स्तुति कर रहे हैं हमारे हवि से प्रसन्न उस देवता को हमारे पास ले आओ । हे दिव्य गुणों से युक्त देव ! राक्षसों, डाकुओं आदि को आप नष्ट कर देते हो, इसलिये इन्हें भी अपने पास बुलाओ ॥१॥ हे स्वर्गादि श्रेष्ठ स्थानों में रहने वाले देव ! सभी शरीरों में जठराग्नि रूप में व्याप्त संयम करने वाले अग्ने ! हमारे स्रुवे आदि से तोलकर दिये गये घृत और हवि का भोजन करिये और राक्षसों, दुष्टों को रुदन कराइए ॥२॥ हे अग्ने ! आप और परमैश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव भी हमारे हवि और घृत को स्वीकार करें । सबके भक्षण करने वाले और यत्र-तत्र भ्रमण करने वाले, जो दुष्ट और घातक राक्षस हैं, उन्हें आप विनष्ट करदें । उन्हें विलाप करायें ॥३॥ सर्व प्रथम अग्निदेव राक्षसों को दण्ड देना प्रारम्भ करें, तदन्तर भुजबल सम्पन्न इन्द्र राक्षसों को निकालने का प्रयत्न करें अग्नि और इन्द्र से पीड़ित राक्षस आकर बोलें कि मैं अमुक हूँ अर्थात् अपना परिचय देकर आत्म समर्पण करें ॥४॥ हे ज्ञान रूप अग्ने ! हम आपका अतुल पराक्रम देखें । अतीन्द्रिय ज्ञान वाले उपासनाओं आदि से साक्षात् होने वाले अग्ने ! जैसा कि हम चाहते हैं वैसा उन राक्षसों से कहिए ताकि वे हमें फिर बाधा न पहुँचावें । आपकी आज्ञा से दग्ध राक्षस अपना-अपना परिचय देते हुए हमारे पास आ जांय ॥५॥ हे ज्ञान स्वरूप अग्ने ! आप दूत बनकर हमारे हितकारी कार्य करो ।

क्योंकि आप हमारे इच्छित प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये और अनर्थ को दूर करने के लिये उत्पन्न हुये हैं, इसलिये राक्षसों को दूर हटाइए ॥६॥ हे अग्ने ! आप पाशादि से दुष्टों को बांध कर यहां ले आओ। तदनन्तर अपने वज्र से इन्द्र इनके शिरों को चूर्ण करदें ॥७॥

८ सूक्त

(ऋषि चातनः । देवता—बृहस्पति प्रभृति । छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप् ।)

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥१॥
अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२॥
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्न पातय परमक्ष्युतावरम् ॥३॥
यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥४॥

जिस प्रकार नदी फेन को अपने प्रवाह से एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचा देती है, उसी प्रकार देवताओं को दी गई हवि एवं दानादि दुष्टों को यहां से दूर हटावें। जो स्त्री अथवा पुरुष अभिचारादि एव दूसरों को हानि पहुँचाने के दुष्ट प्रयत्न करते हैं, वे अपने कार्य में निष्फल होकर तेरी प्रार्थना करें ॥१॥ हे अग्नि और सोम देवताओ ! यह राक्षस आपसे त्रासित हुआ आपकी विनती करते हुये आपकी शरण में आया है। आप इसे हमारा शत्रु जानें और इसकी पूरी-पूरी जांच करें। हे बृहस्पति ! आप इसे अपने वश में करके रखें ॥२॥ हे सोमरस का पान करने वाले अग्निदेव ! राक्षसों की सन्तान के पास पहुँच कर उन्हें समाप्त कर दो तथा इस दुष्ट को भी मार डालिये। भयभीत हुये इस दुष्ट के नेत्र को नष्ट कर दीजिये ॥३॥ हे ज्ञान सम्पन्न अग्ने ! तुम ब्राह्मणों द्वारा मंत्रबल से वृद्धि को प्राप्त करके इन राक्षसों को अनेक प्रकार से नष्ट करो। तुम गुफाओं में रहने वाले इन दुष्टों की सन्तानों कुलों, आदि को अच्छी तरह जानते हो। अतः इन्हें समूल नष्ट कर दो ॥४॥

६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वस्वादयो मंत्रोक्ताः । छन्द—

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिञ् ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ २ ॥
येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठय या धेह्येनम् ॥ ३ ॥
ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

सभी तरह के धन वैभव आदि की कामना करने वाले इस पुरुष को वसु इन्द्र, पूषा, वरुण, सूर्य अग्नि आदि देव धन प्रदान करें । आदित्य विश्वेदेवा तथा समस्त देवता भी इस अति उत्तम तेज को धारण करके तेजवान बनादें ॥ १ ॥ हे देवताओ ! इस पुरुष में सूर्य, अग्नि, चन्द्र स्वर्ण आदि की ज्योति पूर्ण रूप में रहे । इस प्रकार शत्रु हम से नीचे रह जावें हे देवो ! लेश मात्र दुख से रहित परम श्रेष्ठ स्वर्गलोक में पहुंचाओ ॥२॥ हे ज्ञानस्वरूप जातवेद अग्ने ! जिन श्रेष्ठ एवं दिव्य मन्त्रों से आपने इन्द्र के लिये दुग्धादि रस हवि रूप में प्रदान किये हैं, हे अग्ने ! उन्ही मन्त्रों द्वारा इस पुरुष को इस लोक में बढ़ाओ और अपने समान वालों से श्रेष्ठ स्थान में स्थित करो अर्थात् जाति में सबसे श्रेष्ठ बनाओ ॥३॥ हे तेज रूप अग्ने ! आपकी कृपा स्वरूप में इनके (राक्षसों के) धन पुण्यकर्म तथा चित्त का हरण करता हूं और उन्हें प्राप्त करता हूं । शत्रु हमारे अधीन हो जावें और इस मनुष्य को अर्थात् यजमान को आप दुःख रहित श्रेष्ठ स्वर्ग में पहुँचा दो ॥ ४ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—असुरः, वरुणः । छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥
नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वंह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥
यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान् महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥ ४ ॥

देवों में वरुण पापियों को दण्ड देने वाले हैं । सबके नियामक होने से वरुण देव प्रकाशित हैं । सत्य भाषण वरुण देव के वश में है । फिर भी मैं उनकी स्तुति आदि करके मन्त्र बल से ज्ञान सम्पन्न होकर तीक्ष्ण हो गया हूँ । अतः वरुण देव के प्रचण्ड क्रोध से पीड़ित इस मनुष्य को छुड़ाता हूँ ॥ १ ॥ हे तेजोमय वरुण ! आपके क्रोध के लिये नमस्कार है । हे प्रचण्ड वरुण ! सकल प्राणियों में व्याप्त क्रोध को आप भली प्रकार जानते हो । मैं एक साथ ही दूसरे सहस्रों अपराधी पुरुषों को भेजता हूँ आपकी कृपा से यह मनुष्य ! आपका बन कर ही सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ २ ॥ हे रोग पीड़ित मनुष्य ! जिह्वा का दुरुपयोग करके तूने बहुत सा असत्य वचन बोला है । असत्यादि बोलने के अपराध से वरुणदेव के क्रोधपात्र ! मैं उनसे (वरुण देव से) तुझे छुड़ाता हूँ ॥ ३ ॥ हे मनुष्य ! तुझको समुद्र के अधिष्ठाता देव वरुण से छुड़ाता हूँ । हे प्रचण्ड बल वाले वरुण देव ! आप भी अपने दूतों से कहिये जिससे वे इस पुरुष को बार-बार आकर पीड़ित न करें । आप हमारी स्तुति और हवि आदि से प्रसन्न हूजिये और हमारे अपराध को बिसारिये ॥ ४ ॥

११ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—पूषादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप्)

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥ १ ॥
चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत ।
देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥ २ ॥
सूषा व्यूर्णोति वि योनिं हापयामसि ।
श्रथया सूषणे त्वमव त्वं विष्कले सृज ॥ ३ ॥
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥ ४ ॥
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥ ५ ॥
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

हे पूषादेव ! वषट्कार के द्वारा ऋत्विज आपको हवि अर्पण करें । अर्यमा और वेधा वषट्कार के द्वारा आपको हवि दें । आपकी कृपा से यह स्त्री सुख सन्तान पैदा करे और कष्ट से बचे । प्रसव काल में इसके अङ्ग पीड़ित न हों ॥ १ ॥ स्वर्ग एवं भूलोक की श्रेष्ठ दिशाओं के अधिष्ठाता दिग्देवता और इन्द्रादि देवताओं ने पहले गर्भ को बनाया था । अब वे सभी देवता इस समय इस गर्भ के बाहर निकालने के लिए इसे आच्छादन से मुक्त करें ॥ २ ॥ हे पूषा देवता ! गर्भ को जरायु से मुक्त करो । हम भी सुख से प्रसव होने के लिये गर्भ के मार्ग को खोलते हैं । हे प्रसव काल में सहायक देवता ! तुम भी प्रसन्न होकर गर्भिणी के अङ्गों को ढीला करो । सूति मारुत देव आप गर्भ का मुँह नीचे की ओर करके इसे प्रेरित करो ॥ ३ ॥ हे प्रसव करने वाली स्त्री ! इस जरायु से तू पुष्टि नहीं हो सकती । इस जरायु का सम्बन्ध तो मज्जा, मांस, चर्बी आदि किसी भी धातु से नहीं है । यह बाहर निकाल फेंकने योग्य है । अतः

जल के ऊपर स्थित नरम सिवार के समान शुभ्र जरायु कुत्ते के खाने के लिए नीचे को गिर जावे ॥ ४ ॥ हे गर्भवती स्त्री ! मैं तेरे गर्भ निकालने के मार्ग को बच्चे के बाहर निकालने के लिए फैलाता हूँ और प्रतिबन्धक नाड़ियों को भी फैलाता हूँ । माता, पुत्र को अलग-अलग करता हूँ । इसके बाद यह जरायु भी उदर से निकाल कर नीचे को गिरे ॥ ५ ॥ जिस प्रकार वायु, मन, तीव्रगति से चलते हैं और जैसे आकाश में पक्षी शीघ्रता से बिना रोक टोक के विचरण करते हैं उसी प्रकार हे दस मास गर्भस्थ शिशो ! तू जरायु के साथ गर्भ से बाहर को आ तथा यह जरायु नीचे गिरे ॥ ६ ॥

१२ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि-भृग्वंगिरा: । देवता-यक्ष्मनाशनम् । छन्द-जगती, त्रिष्टुप् , अनुष्टुप्)

जरायुज: प्रथम उस्त्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्टया ।
स नो मृडाति तन्वऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१॥
अङ्गे अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविशा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ॥२॥
मुञ्चशीर्षक्तया उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥३॥
शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्य: शमस्तु तन्वे मम ॥ ४ ॥

जरायु से उत्पन्न जगत् से पूर्व सृष्टि में सबसे प्रथम उत्पन्न वायु के समान शीघ्रगामी और अनन्त बल सम्पन्न सूर्य मेघों को गर्जाते हुए वर्षा के साथ आते हैं । वे सूर्य हमें त्रिदोष जनित रोगों से मुक्त करें । वे सीधे चलने वाले सूर्य जो एक होकर भी तीन प्रकार से प्रकाशित होते हैं, हमारे शरीर को सुख दें ॥ १ ॥ प्रत्येक अवयवों में अपनी दीप्ति रूप से व्याप्त हे सूर्य ! हम स्तुति हवि आदि से आपको पूजते हैं । आपके समीपवर्ती देवताओं की भी हवि द्वारा सेवा करते हैं । रोगों से ग्रसित और सन्धिबन्धनों को जकड़े हुये इस पुरुष की रोग निवृत्ति के लिए हम

आपको पूजते हैं ॥ २ ॥ हे सूर्य ! इस पुरुष को शिर दर्द, श्लेष्म, खांसी आदि रोगों से छुड़ाइए जो इसके अङ्ग-अङ्ग में घुस गये हैं। वर्षा एवं जलादि के संयोग से उत्पन्न हुआ अभ्रुजा (श्लेष्म) रोग वायु से उत्पन्न हुआ वात रोग, पित्त विकृति से उत्पन्न हुए ज्वरादि रोगों से इस पुरुष को छुड़ाइये। ये रोग समूह इसे छोड़कर वन में, वृक्षो में एवं निर्जन पर्वतों में चले जावें ॥ ३ ॥ मेरे और अङ्गों में व्याप्त रोग शान्त होकर सुख पहुँचे। नीचे के अङ्गों का रोग शान्त होकर सुख मिले। मेरे चारों अङ्गों को सुख प्राप्त हो तथा मेरा समस्त शरीर रोगमुक्त होकर सुखी बने ॥ ४ ॥

१३ सूक्त

(ऋषि—भृग्वांगिराः। देवता—विद्युत। छन्द—अनुष्टुप्, जगती, पंक्तिः)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाश अस्यसि ॥१॥
नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्मते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥
यां त्वादेवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

दमकती हुई विद्युत को मेरा प्रणाम पहुँचे। विद्युत की गड़गड़ाहटकारी ध्वनि तथा अशनि को मेरा प्रणाम पहुँचे। आपके व्यापन स्थान मेघ को मेरा प्रणाम पहुँचे। आप दुखदायियों एवं आततायियों पर वज्र प्रहार करके उन्हे दूर फेंकती हैं ॥ १ ॥ हे पर्जन्य ! आप जल को अपने में धारण किये रहते हैं, अकाल में नीचे नहीं गिरने देते। सत्पुरुषों की रचा करने वाले आपको नमस्कार हो। आप तप को इकट्ठा करते हैं और पातकों पर अपना अपना अशनिरूप वज्र फेंकते हैं। आप हमारे शरीर को

सुख दें तथा हमारे पुत्र-पौत्रादि को भी सुख प्रदान करें ॥ २ ॥ हे उच्चता से नीचे की ओर न गिरने वाले पर्जन्य ! आपको नमस्कार है। तुम्हारे अशनिरूप वज्र के लिए हमारा नमस्कार है। हे पर्जन्य ! गुहा के समान अगम्य ! आपके श्रेष्ठ निवास स्थान को हम जानते हैं। आप नाभि चक्र की तरह इस अन्तरिक्ष रूपी समुद्र में स्थित हो ॥ ३ ॥ हे देवी अशने ! शत्रुओं एवं आततायियों पर फेंकने के लिये इन्द्रादि सभी देवताओं ने उनकी हिंसा करने को बलवान सुदृढ़ बाण रूप में तेरी रचना की है। आकाश में गर्जती और दमकती हुई अशने ! तुम्हारे लिए प्रणाम है। तू हमारे भयों को दूर करती हुई हमें सुख दे ॥ ४ ॥

१४ सूक्त

(ऋषि—भृग्वंगिराः। देवता—यमः। छन्द—अनुष्टुप्)

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥१॥
एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥२॥
एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥३॥
असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥४॥

जिस प्रकार मनुष्य वृक्षों से फूलों को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार मैं इस स्त्री के भाग्य और तेजस्विता को स्वीकार करता हूं। जिस प्रकार एक बड़ा पर्वत पृथ्वी पर अचल और स्थिर रहता है उसी प्रकार यह कन्या भी बहुत दिनों तक माता के घर रहे ॥ १ ॥ हे नियामक राजा यम ! यह कन्या आपकी वधू है पहले इसने आपको ग्रहण किया था अब यह वधू माता-पिता या भाई के घर में पड़ी रहे ॥ २ ॥ हे राजन् ! आपकी यह कुल वधू आपके कुल की रक्षा करने वाली है। इस स्त्री को

इम पुनः आपको देते हैं। जब तक इसका शिर पृथ्वी पर गिरे तब तक यह माता-पिता के घर में निवास करे ॥३॥ ! हे स्त्री ! तेरे भाग्य को मैं असित, गय, कश्यप ऋषियों के मन्त्रों से इस प्रकार ढकता हूँ [बांधता हूँ] जिस प्रकार घर में स्त्रियां अपने धन वस्त्र आदि को गुह्य रखने की चेष्टा करती हैं ॥४॥

१५ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–सिन्ध्वादयो मंत्रोक्ताः। छन्द–अनुष्टुप्, पंक्तिः)

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥
इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥२॥
ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥३॥
ये सर्पिषा संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥४॥

समस्त नदियां हमारे अनुकूल हो मिलकर बहें। वायु भी हमारे अनुकूल होकर मिलकर बहते रहें। पक्षी भी हमारे अनुकूल हों, साथ-साथ उड़ते रहें। पूर्व सभी देवता मेरे इस यज्ञ का सेवन करें। क्योंकि मैं बहने वाले घी दूध हवि आदि को संगठनबद्ध करके यज्ञ कर रहा हूं ॥१॥ हे देवो ! आप सब मेरे आह्वान करने से मेरे यज्ञ में आओ। यज्ञ में हवि को स्वीकार करने वाले और स्तुति पाने वाले हे देवताओ ! अपने प्रसाद स्वरूप इस यजमान को प्रजा, पशु धन धान्यादि से समृद्ध करो। ये हमारे पास आ जावें ॥२॥ नदियों के जो अक्षय स्रोत ग्रीष्मादि में भी कभी क्षीण न होकर संगठन बद्ध होकर बहते हैं उन सबसे हम पशु, धन, धान्यादि अविच्छिन्न रूप में प्राप्त करते रहें ॥३॥ बहने वाले घृत, दूध, एवं जल के प्रवाहों से हम गौ, धन, धान्यादि को प्रवाह रूप में प्राप्त करें ॥४॥

१६ सूक्त

(ऋषि—चातनः। देवता—अग्निः, वरुण आदि। छन्द—अनुष्टुप्।)

येमावास्यां रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्रिणः।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ॥१॥
सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् ॥२॥
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥३॥
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४॥

मनुष्यों के घातक और उन्हें हानि पहुँचाने वाले ये राक्षस पिशाचादि उन्हें मारने एवं हानि पहुँचाने के लिए अमावस्या की रात्रि को घूमा करते हैं। इसलिए राक्षसों और चोरों का संहार करने वाले चौथे अग्निदेव हमें अभय करें [रक्षा करें] ॥१॥ वरुणदेव ने सीसे के विषय में कहते हुए बताया है कि यह मेरा है। अग्निदेव सीसे का रक्षण करते हैं। परमैश्वर्य सम्पन्न देवराज इन्द्र ने मुझे सीसा देते हुए कहा है, हे प्रिय! यह देवताओं द्वारा दिया गया सीसा राक्षसों का संहार करने वाला है इससे लोकों की रक्षाकर अभिलाषित कामना पूर्ति करो ॥२॥ यह सीसा राक्षसों को हटाने वाला है और उन्हें निकालने वाला है। यह सीसा राक्षसों एवं पिशाचों का भक्षण करने वाला है। अर्थात् उनका संहार करने वाला है। राक्षसों से उत्पन्न समस्त पीड़ादायक एवं हानिकारक उपद्रवों का मैं तिरस्कार करता हूँ। अर्थात् शमन करता हूँ ॥३॥ हे शत्रु! यदि तू हमारे घोड़ों एवं गायों को मारता है, यदि तू हमारे भृत्य एवं वीरों को मारता है तो हमारे शत्रु रूप (सीसे से मारने का अर्थ सीसे की गोली से मारने का समझना चाहिये। बन्दूक में सीसे की गोली ही चलाई जाती है) तुझको हम सीसे से मारते हैं। तू [भविष्य में भी] हमारे पुत्रों एवं वीरों आदि को हानि न पहुँचाये इसलिए तुझे सीसे से ताड़ित करते हैं अर्थात् मारते हैं ॥४॥

१७ सूक्त (छठवां अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता–योषितो धमन्यश्च । छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री ।)

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥१॥
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद् धमनिर्मही ॥२॥
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥३॥
परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्य क्रमीत् । तिष्ठतेलयता सु कम् ॥४॥

स्त्री की यह लाल रक्त वाहिनी नाड़ियां अर्थात् धमनियां स्थिर हो जांय अर्थात् चलना बन्द करदें, ताकि अधिक खून बाहर न निकले । जिस प्रकार भाई रहित बहनें पिता के घर में रहती हैं और पति के घर नहीं आती तैसे ही नाड़ियां रक्त बाहर न निकालें इसके लिए स्थिर रहें ॥१॥ हे शरीर के नीचे के भाग में स्थित रहने वाली नाड़ी ! तू भी स्थिर हो जा जिससे अधिक रुधिर बाहर न निकले । हे उपरि अङ्गों की धमनी तू भी रक्त बहाना बन्द करके शान्त हो जा । शरीर के मध्य भाग वाली धमनी भी स्थित हो जावे । छोटी तथा बड़ी सभी नाड़ियां रुधिर का बहाव बन्द करके स्थिर रहें ॥२॥ हृदय की प्रधान सौ धमनियां एवं सहस्रों शाखा नाड़ियों में बीच की प्रधान नाड़ियां मंत्र से ठहर गई हैं जिससे रक्त बहना बन्द हो गया । इसके साथ-साथ अन्तिम अवशिष्ट नाड़ियां भी ठीक होगई अर्थात् रुधिर बहना बन्द होने के साथ वक्र मूत्राशय की नाड़ी, धनु और बृहती नाड़ी । हे नाड़ियो ! तुम को चारों ओर से रोक लिया है, अतः तुम रक्तस्राव बन्द करो और ठहर जाओ और इसे सुख प्रदान करो ॥३-४॥

१८ सूक्त

(ऋषि–द्रविणोदाः । देवता–सवित्रादयो मंत्रोक्ताः–छन्द–बृहती, अनुष्टुप

निर्लक्ष्म्यं निर्ललाम्यं निररातिं सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥१॥

निररणिं सविता साविषत् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥२॥
यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
सर्वं तद् वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वां सविता सूदयतु ॥३॥
रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत ।
विलीढ्यं ललाम्यं ता अस्मन्नाशयामसि ॥४॥

मस्तक स्थान में स्थित असौभाग्य सूचक चिन्ह अर्थात् बुरे लक्षणों को पूर्ण रूपेण निकालते हैं। शरीर स्थित शत्रु के समान अनिष्ट करने वाले दुर्लक्षणों को हम त्यागते हैं। जो सौभाग्यप्रद एवं कल्याणकारी चिन्ह हैं उन्हें अपने और हमारी संतान के लिए धारण करते हैं। कुलक्षणों को शत्रुओं की ओर दूर भगाते हैं। ॥१॥ सबके प्रेरक सविता देवता, वरुण देवता, तथा अर्यमा देवता हाथ पैरों में स्थित अलक्ष्मी एवं असौभाग्य के चिन्हों को दूर करें। सब को प्रेरित करने वाली अनुमति भी इच्छित फल देती हुई शरीर के दुर्लक्षणों को दूर करे। देवताओं ने भी इसको सौभाग्य देने के लिए प्रेरणा दी है। ॥२॥ हे पुरुष! तेरे शरीर आत्मा केश एवं नेत्रों में जो भयंकर कुलक्षणों के चिन्ह हैं, उन बाहरी भीतरी दुश्चिन्हों को हम मंत्र रूप वाणी से दूर करते हैं। सविता देव तेरा कल्याण करें ॥३॥ हिरण के समाग पैर वाली, बैल की तरह दांतों वाली, गाय के समान चलने वाली तथा विकृत शब्द बोलने वाली, ऐसी स्त्री को हम दूर हटाते हैं अर्थात् मंत्र प्रभाव से उक्त दुर्लक्षणों को दूर करते हैं। ललाट स्थान पर स्थित दुर्लक्षण को भी हम दूर करते हैं ॥४॥

१९ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—इन्द्र प्रभृति। छन्द—अनुष्टुप, बृहती, पङ्क्तिः)

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद् विषूचीरिन्द्र पातय ॥१॥
विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२॥
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो अस्माँ अभिदासति ।

रुद्रः शरव्य यैतान् ममामित्रान् विविध्यतु ॥३॥
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ्छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४॥

अस्त्र आदि से वेधने वाले शत्रु हमारे पास न आ सकें। चारों ओर से आकर प्रहार करने वाले शत्रु भी हमारे पास न आ सकें। परमैश्वर्य सम्पन्न हे इन्द्रदेव। शत्रुओं की ओर से फेंके जाने वाले बाण समूहों को हम से दूर गिराइये ॥१॥ जो छोड़े जाचुके हैं और छोड़े जायगे तथा विविध प्रकार से चारों ओर फैले हुए बाण हमसे दूर जाकर गिरें। हमारे जो दिव्य दैविक अस्त्र हैं और जो मनुष्यों के बाण हैं ये दोनों प्रकार के अस्त्र शत्रुओं को वेध डालें ॥२॥ जो हमारा समान जाति वाला, तथा बात न करने योग्य भिन्न जाति वाला, या समान जन्म अथवा जाति वाला हम पर चढ़ाई करे और दास बनाना चाहे तो इन सब शत्रुओं को रुलाने वाले संहारकारी रुद्रदेव अपने हिंसक बाणों से वेध डालें ॥३॥ जो जातिवाला अथवा अन्य जाति का शत्रु द्वेष भाव के कारण हमको शाप देता है तो इन सब शत्रुओं का सब देव नाश करें। मेरा मंत्र रक्षा करने वाला कवच रूप हो। अर्थात् शत्रु के शाप देने पर प्रयुक्त किया जाने वाला यह मंत्र कवच की तरह हमारी रक्षा करे ॥४॥

सूक्त २०

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सोम, मारुत आदि। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्।

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१॥
यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद् यावयतं परि ॥२॥
इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३॥
शास इत्था महां अस्यमित्रसाहो अस्तृतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥४॥

हे सोमदेव ! मेर शत्रु अपने स्थान से विलग होकर अपनी स्त्री के पास कभी न जावे । हे मरुतो ! (उनन्चास मारुत) मैं जिस यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा हूं उसमें हमें सुखी करो । सन्मुख आता हुआ शत्रु तेज के कारण मेरे समक्ष न आ सके । हमें अकीर्ति प्राप्त न हो । अभीष्ट पथ में वाधक जो पाप कर्म हैं वे भी मुझमें न आवें ॥ १ ॥ हे वरुण देवताओ ! आप शत्रुओं के छोड़े हुये इस अस्त्र-शस्त्र समूह को हमसे दूर रखो, वह हमें न छू सके। आज युद्ध में हिंसा की कामना से छोड़े हुए शत्रुओं के अस्त्र समूह को हम से दूर करने का प्रवन्ध करो ॥ २॥ हे वरुण देवता पास में स्थित एवं दूर खड़े हुए शत्रु से छोड़ा हुआ अस्त्र जो मुझे हनन करने के लक्ष्य से आ रहा है, उस सब अस्त्र-शस्त्र को हमसे दूर करो । हे वरुण ! हमें वड़ा सुख और आनन्द प्रदान कीजिये । आप कठोर अस्त्र शस्त्रों को हमसे दूर करिये ॥ ३ ॥ हे इन्द्र आप शासक एवं नियन्ता हैं । आपकी कभी पराजय नहीं होती वरन् शत्रुओं का तिरस्कार कर उन्हें आप पराजित करते हैं । ऐसे महिमामय इन्द्रदेव का मित्र पुरुष भी शत्रुओं द्वारा न पराजय प्राप्त करता है और न मारा ही जाता है । ऐसे इन्द्र के सहयोग से हम भी शत्रु को जीतें ॥ ४ ॥

२१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप्)

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥१॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥२॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३॥
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥४॥

अविनाशी, शोभन फल, मंगल के देने वाले, प्रजा का स्वामी,

वृत्त नाम वाले मेघ को वृष्टि के लिए ताड़ित करने वाले, शत्रुओं का विशेष रूप से शमन करने वाले, प्राणीमात्र के नियन्ता, सोम का पान करने वाले, इन्द्रदेव हमें अभय करते हुए संग्राम में हमारे अगुवा अर्थात् नेता बनें ॥ १ ॥ हे परमैश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ! हमें जीतने के लिये युद्ध करने वाले शत्रुओं को मारिये ! सेना लेकर आक्रमण करने वाले शत्रुओं का नियमन कीजिये और जो हमारा शत्रु बनकर हमारे धन, क्षेत्र आदि को छीन कर हमारा नाश करना चाहता है उसे गहरे अन्धकार में डाल दीजिये ॥ २ ॥ वृत्रासुर का हनन करने वाले इन्द्र देव ! आप राक्षसों का संहार कीजिये। वृत्रासुर के समान बलवान शत्रु के जबड़ों को तोड़ दें। हे प्रभो ! जो हमारा अपकार चाहता है उस शत्रु के क्रोध उत्साह को भी शान्त कीजिये, ताकि हमारा अपकार न कर सके ॥३॥ हे इन्द्र देव ! हमें बड़ा भारी सुख दीजिये। शत्रु के अभिमन्त्रित शस्त्रों को हमसे दूर कीजिये। द्वेष करने वाले शत्रु के मन को दबा दीजिये। हमें मारने की कामना वाले शत्रु के आयुध को नष्ट कीजिये ॥४॥

२२ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—सूर्यः हृद्रोगश्च। छन्द—अनुष्टुप्)

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥१॥
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥२॥
या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥३॥
शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥४॥

हे व्याधिग्रस्त पुरुष तेरे हृदय में जलन पैदा करने वाला हृद्रोग तथा कामला आदि रोग से उत्पन्न शरीर का पीलापन सूर्य की ओर

चला जावे। हरितवर्ण एवं उक्त संताप भी इस शरीर से निकलकर सूर्य की ओर चला जावे। गौ के रक्त वर्ण से प्रथक रक्तवर्ण द्वारा मैं तुझे ढककर स्वस्थ करता हूँ ॥१॥ हे रोगिन्! तेरी दीर्घायु एवं स्वास्थ्य के लिये हम तुझे गौ सम्बन्धी रक्तवर्ण से ढकते हैं, जिससे यह पुरुष पापरहित होकर कामला आदि रोग से पैदा हुए हरिद्वर्ण से रहित हो जावे ॥ २ ॥ देवताओं की लालवर्ण वाली कामधेनु आदि गौएँ हैं और मनुष्य की जो लालवर्ण वाली गौएँ हैं इन दोनों प्रकार की गायों के रक्तवर्ण एवं यौवन को प्राप्त कर मुझे आच्छादित करते हैं अर्थात् गाय के उज्जल वर्ण स्वास्थ्य से संयुक्त करते हैं ॥ ३ ॥ हे रोग पीड़ित! रोग से उत्पन्न हुये तेरे हरितवर्ण को शुक एवं कोष्ठ शुक नामक पक्षियों में स्थापित करते हैं और गोपीतनक नामक हरिद्वर्ण वाले पक्षियों में तेरा हरिद्वर्ण स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥

२३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वनस्पतयः। छन्द—अनुष्टुप्)

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥१॥
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥२॥
असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥३॥
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥४॥

हे हरिद्रा नामक औषधि! तू रात्रि में उत्पन्न हुई है, और रोगग्रस्त पुरुष को आनन्द देने वाली राम भँगरा नामक औषधि! तथा कृष्ण वर्ण करने वाली इन्द्रवारुणि नामक औषधि! असित वर्ण करने वाली नील औषधि! रात्रि में उत्पन्न हुई हरिद्रा आदि औषधियो! तुम इस कुष्ठ रोग से विकृत इस अङ्ग को अपने रङ्ग से रङ्ग दो। अर्थात्

कुष्ठ को नाश करके अपना सा रङ्ग इस अङ्ग का बनादें ॥१॥ हे औषधि ! तू श्रेष्ठ है, श्वेत कुष्ठ को इस शरीर से दूर करदे, जिससे इस रोगी में पहले जैसी लालिमा प्रवेश करे। हे औषधि ! तू इस श्वेतवर्ण को दूर हटा दे ताकि फिर यह इसे स्पर्श न करे ॥२॥ हे नील औषधि ! तेरा उत्पन्न होने का स्थान काला होता है और जिनके सम्पर्क में तू आती है उन्हें काला कर देती है। तू असितवर्ण वाली है तेरा स्वभाव भी ऐसा ही है। इसीलिये तू लेपने आदि से कुष्ठ और धब्बे आदि रोगों को दूर करदे ॥ ३ ॥ अस्थियों में व्याप्त, हड्डी और त्वचा के बीच के माँस में स्थित तथा त्वचा पर स्थित कुष्ठ आदि का जो चिन्ह है उसे मन्त्र द्वारा मैंने नष्ट कर दिया है ॥४॥

२४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आसुरी वनस्पति। छन्द—अनुष्टुप्; पंक्तिः)

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ।
तदासुरी युधा जिता रुपं चक्रे वनस्पतीन् ॥१॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम्।
अनीनशत् किलासं सरुपामकरत त्वचम् ॥ २ ॥
सरुपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता।
सरूपकृत त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥ ३ ॥
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता।
इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥ ४ ॥

हे औषधे ! पहले तू सुन्दर पर वाले गरुड़ की पित्त थी आसुरी माया ने उस पित्त को गरुड़ के साथ युद्ध करके जीत लिया था और जय में प्राप्त उस पित्त को औषधि का रूप बना दिया। वह रूप नील आदि में गया ॥१॥ आसुरी माया रूप स्त्री ने पहले कोढ़ चिकित्सक बनकर नील औषधि को (जो सुपर्ण पित्त से निर्मित हुई) कुष्ठ को दूर करने वाली औषधि के रूप में निर्मित किया था। इस औषधि को प्रयोग करने

पर अब भी कुष्ठ को दूर कर दिया है तथा दूषित त्वचा को कोढ़ से शून्य करके समान वर्ण वाली किया है ॥ २ ॥ हे औषधे! तेरी माता तेरे समान रङ्ग वाली है, तेरा पिता भी समान रङ्ग वाला है, तू भी समान रङ्ग वाली है अर्थात् अपने पास में आने वाली वस्तु को अपने समान रङ्ग वाली बना देती है। इसलिये तू कोढ़ से दूषित अङ्ग को भी अपने समान रङ्ग वाला बना ॥ ३ ॥ हे श्यामवर्णा, समान रूप करने वाली औषधे! तुझे आसुरी माया ने पृथ्वी पर उत्पन्न किया है। तू इस कुष्ठ से ग्रसित अङ्ग को रोग से ठीक प्रकार मुक्त करके पहले जैसा बनादे ॥४॥

२५ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः। देवता—यक्ष्मनशनोऽग्निः। छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥ १ ॥
यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम्।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्या देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥२॥
यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥३॥
नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि
यो अन्येद्यु रुभयद्यु रभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥४॥

हे कष्टदायक एवं कठिनता से जीवित रहने देने वाले ज्वर! धर्मपालक तथा धर्मधाता विद्वान लोग जिस अग्नि में हवन करते हैं उस अग्नि में तेरा जन्म स्थान कहते हैं। इसलिए कठिन जीवन करने वाले ज्वर! तू अपने कारण अग्नि को भली प्रकार समझकर हमारे छिड़के हुए

उष्ण जल से हमारे अङ्गों एवं शरीर को छोड़कर अग्नि के साथ बाहर हो जा ॥१॥ हे जीवन को दुःखमय बनाने वाले ज्वर रोग ! तू तापरूप-उष्णता गुण से युक्त है, तू शरीर को नष्ट कर देने वाला है, तू अग्नि से उत्पन्न हुआ है। इसके अतिरिक्त हे ज्वर ! तुम पुरुष के शरीर को पीतवर्ण का बना देते हो इसलिए तुम्हें हूड्ढ कहा जाता है। ऐसा ज्वर हमारे उष्ण जल से सिंचित शरीर को अपना जन्म स्थान अग्नि जानकर इस अग्नि के साथ बाहर निकल जाए।२। हे जीवन को दुखी बनाने वाले ज्वर!यदि तुम शरीर के भीतर ताप उत्पन्न कर कष्टदायक हो, या समस्त शरीर को तप्त करने वाले हो और चाहे राजा वरुण के पुत्र हो तो भी तुम पुरुष के शरीर में पीतवर्ण पैदा करने के कारण हूड्ढ नाम से पुकारे जाते हो। हे ज्वर ! तुम अपने उत्पत्ति स्थान को जानकर हमारे उष्ण जल से अभिसिंचित शरीर को त्याग कर बाहर निकल जाओ ॥३॥ शीत को उत्पन्न करने वाले शीत ज्वर के लिये मेरा नमस्कार है। ताप उत्पादक ज्वर को नमस्कार करता हूं। जो प्रतिदिन आने वाला, दूसरे दिन आने वाला होता है, जो तीसरे दिन आने वाला होता है उन सब प्रकार के ज्वर को मैं नमस्कार करता हूं ॥४॥

२६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—इन्द्रादयः। छन्द--गायत्री; त्रिष्टुप्।)

आरे सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत्। आरे अश्मा यमस्यथ ॥१॥
सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः। सविता चित्रराधाः।२।
यूयं न प्रवतो नपान्मरुत सूर्यत्वचसः। शर्म यच्छाथ सप्रथाः ॥३॥
सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥४॥

हे देवताओ ! शत्रु द्वारा छोड़ा हुआ यह अस्त्र हमसे दूर ही रहे। और हमें मारने के लिये जो पत्थर फेंक रहे हैं, वह यन्त्र आदि से फेंका हुआ पाषाण भी हमसे दूर रहे ॥१॥ आकाश में दृष्टिगत होने वाले सूर्यदेव हमारे मित्र हों। धनयुक्त सविता देवता एवं परमैश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव हमारे मित्र हों ॥२॥ पृथ्वी पर से सूर्य द्वारा खींचे हुए जल को नियमित समय तक धारण करने वाले पर्जन्यदेव ! हे सातगण वाले

मरुद् गणो ! आप सूर्य के सदृश्य तेजस्वी हैं। आप सब हमें विस्तृत एवं पूर्ण सुख दीजिए ॥३॥ हे इन्द्रादि देवताओ ! आप शत्रुओं द्वारा छोड़े गए अस्त्र-शस्त्रों को हमसे दूर हटाओ और हमें सुख दो। हमारे अनिष्टों को दूर करके हमें सुख दो, आरोग्य दो तथा हमारे बाल बच्चों को सुख दो ॥४॥

२७ सूक्त

(ऋषि--अथर्वा। देवता—इन्द्राणी। छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप्।

अमूः पारे पृदाक्व स्त्रिषप्ता निर्जरायवः।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥१॥
विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती।
विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥२॥
न वहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः।
वेणोरद्गाइवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥३॥
प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान्।
इन्द्राण्येतुप्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥४॥

सर्पों की यह इक्कीस जातियां नागलोक में वास करती हैं। उन सर्पों की कैंचुलियां, जो नाल के समान लिपटी रहती हैं, उनसे दूसरों का अहित चिन्तन करने वाले रणक्षेत्र में उपस्थित शत्रु के चक्षुओं को हम आच्छादित करते हैं ॥१॥ शत्रुओं की हिंसा में समर्थ, शिव के धनुष के समान तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र को धारण कर मारकाट मचाती हुई हमारी सेना चारों ओर से बढ़े, जिससे यदि शत्रु सेना एकत्र हों तो वे कर्त्तव्याकर्त्तव्य को न सोच पावें और उसके राजा देश, कोश आदि को सदा के लिये खो बैठें ॥२॥ थोड़े शत्रु हमारे सामने ही न आवें, अश्व-रथ, गज और पैदल असंख्य शत्रु भी हम पर विजय न प्राप्त न कर सकें। हार कर निर्धन हुये वैरी, वांस की ऊपरी शाखा जैसी दुर्बल होती है, वैसी ही असमृद्धि को प्राप्त हों ॥३॥ हे सुभटो ! तुम शीघ्र चलते हुए लक्ष्य पर पहुंचो। इच्छित फल प्रदान करने वाले पुरुष के निवास तक हमें

पहुंचाओ। और शत्रु के राष्ट्र तक हमारी सेना को पहुंचाओ। सेना की अभिमानी देवता इन्द्राणी रक्षा के लिए आगे-आगे चलें ॥४॥

२८ सूक्त

(ऋषि—चातनः। देवता—अग्नि, यातुधान। छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१॥
प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥२॥
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो विघ्नतां यातुधान्यो वि तृह्यन्तामराय्यः ।४।

अग्निदेव रोग और राक्षसों का नाश करने वाले हैं, वे स्वर्ग में रहते हैं। वे अग्नि, क्रूर वाणी वाले हिंसक और परछिद्रान्वेषी, पीड़क और उद्वेग करने वाले राक्षसों को भस्म करते हुए इस पुरुष के समीप आगमन कर रहे हैं ॥१॥ हे अग्ने! इन परिछिद्रान्वेषी पिशाचों और यातना देने वाले यातुधानों को भस्म करो। प्राणियों के प्रतिकूल कार्य करने वाली राक्षसियों को भी भस्म कर दो ॥२॥ जो राक्षसी हिंसात्मक पाप करने वाली है, जो राक्षसी कठोर शब्दों में कुवाक्य कहती हैं, जो राक्षसी संतानादि के रूप रस, पुष्टि को हरण करना प्रारम्भ करती है, वे सब राक्षसियां अपनी और हमारे शत्रुओं की प्रजा का ही भक्षण करें ॥३॥ वे राक्षसी अपने पुत्र, भगिनी और पौत्रादि को खा जायें। वे परस्पर केश खींचते हुए लड़कर मृत्यु को प्राप्त हों और वे राक्षसियां भी परस्पर लड़ती हुई जीवन-विहीन हों ॥४॥

२९ सूक्त (छठा अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठ। देवता—ब्रह्मणस्पतिः, अभीवर्तमणिः। छन्द—अनुष्टुप्)

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥
अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥
अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥
उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः ।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥
सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥

हे ब्रह्मणस्पते ! इन्द्र जिस समृद्धिदायकमणि से वृद्धि को प्राप्त हुए, उस मणि के सहारे शत्रुओं द्वारा उत्पीड़ित राष्ट्र की समृद्धि का संवर्द्धन करो । अश्व, अज, ऐश्वर्य आदि से हमको सम्पन्न करो ॥१॥ हे मणे ! तू हमारे शत्रुओं के सम्मुख जा डटे और हमारे पक्ष की होकर उन्हें पराजित कर । तू हमारे सभी स्वाभाविक वैरियों के सामने जाकर रणक्षेत्र को प्राप्त हुए शत्रुओं को निर्वीर्य कर ॥२॥ हे मणे ! जीवों को प्रेरणा देने वाले सवितादेव ने तुझे समृद्ध किया है, सोम ने तेरी वृद्धि की है । यह सभी प्राणी तेरी वृद्धि करते हैं । जो तुझे धारण करता है, तू उसकी महिमा को फैलाती है ॥३॥ इस वृद्धि की साधन रूप, शत्रुओं को वशकर उन्हें नष्ट करने वाली मणि को राष्ट्र की समृद्धि और शत्रुओं की हार के निमित्त मेरे बांधो ।४। सब प्राणियों को प्रेरणा देने कोआदित्य हो गए । शत्रुओं के पराभव की कामना वाली मेरी मन्त्र रूप वाणी भी प्रकट हो गई । अभिवर्त मणि को धारण करने वाला मैं, वैरियों की हिंसा में समर्थ होऊं इसीलिए आज यह आदित्य और मन्त्र प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥ हे मणे ! तेरे बल से मैं शत्रुओं का हनन करने वाला, प्रजाओं को इच्छित फलों से सींचने वाला, अपने राष्ट्र का स्वामी और शत्रुओं को वश करने वाला बनूं । यातना देने वाले वैरियों के वीरों पर और उनकी प्रजाओं पर शासन करने में समर्थ हो सकूं ॥६॥

३० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा आयुष्कामः । देवता–विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

विश्वेदेवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ।।१।।
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येऽनं जरसे वहाथ ।।२।।
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ।।३।।
येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ।४।

हे इन्द्र ! हे विश्वेदेवाओ ! हे वसुगण ! देवताओ ! इस आयु की कामना वाले पुरुष की रक्षा करो । हे धाता ! अर्यमा ! तुम भी सावधानी से ऐसा ही करो । इस पुरुष का सजातीय अथवा विजातीय शत्रु भी इसका सामीप्य प्राप्त न कर सके । इसकी हिंसा में कोई भी समर्थ न हो ।।१।। हे देवगण ! तुम्हारे जो पितर और पुत्र हैं वे भी इस पुरुष के सम्बन्ध में मेरी प्रार्थना पर ध्यान दें । मैं इस आयु की कामना वाले पुरुष को तुम्हें सौंपता हूँ । तुम इसे विपत्तियों से बचाते हुये पूर्ण आयु तक स्थिर रखो ।।२।। हे सकल देवगण ! तुम संसार के उपकारार्थ स्वर्ग में रहते हो और हे अग्न्यादि देव ! तुम भूमंडल पर वास करते हो । हे वायो! तुम अंतरिक्ष में गमनशील हो । हे तेंतीस देवताओ ! औषधियों और गवादि पशुओं के अभिमानी देवताओ ! तुम सब इस आयुष्काम मनुष्य की आयु को बढ़ाओ । इसे सौ वर्ष तक जीवित रखने के लिए मृत्यु के कारणरूप ज्वरादि तथा अन्य कारणों को भी हटाओ ।। ३ ।। जिन अग्नि के निमित्त पंचयाग रूप प्रयाज किये जाते हैं वे अग्नि और जिन देवताओं के लिये तीन याग किये जाते हैं और अग्नि में होमी हुई हवि जिनका भाग है वे इन्द्रादि देवता, अग्नि से अन्यत्र गिरी हुई हवि के भक्षक बलिहरण आदि देवता और

दिशाओं के स्वामी देवता तथा अन्य सभी देवताओं को आयु चाहने वाले पुरुष की आयु बढ़ाने के लिये सत्रसद (समीप बैठने वाले) नियुक्त करता हूँ ॥४॥

३१ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–आशापालाः (वास्तोष्पतयः)। छन्द–अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्,)

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥
य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो अंहसः ॥ २ ॥
अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥३॥
स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥४॥

सब जीवों के स्वामी अमृतत्व से युक्त इन्द्रादि चार दिक्पालों के लिये इस याग में हम मंत्रयुक्त आहुति देते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्रादि चारों देवताओ ! हमको संतापित करने वाली पाप देवता निर्ऋति के मृत्युदायक पाशों तथा उसके अन्य दुःख देने वाले पाशों से हमारी रक्षा करो ॥२॥ हे कुवेर ! काम्य धन की प्राप्ति के लिए मैं तुम्हे हवि देता हूँ। मैं श्रोण (लंगड़ापन) व्याधि से मुक्त होकर तुम्हारा पूजन करता हूँ। पूर्वोक्त चार दिक्पालों में जो चौथे हैं, वे हमको सुवर्ण आदि धन प्रदान करें और मेरी हवि से तृप्त हों ? ॥३॥ हमारे माता, पिता, गौएं और समस्त संसार के लिये कुशल हो। हमारी माता आदि सुन्दर धन और श्रेष्ठ ज्ञान वाले हों और हम सौ वर्ष तक सूर्य के दर्शन करने वाले हों ॥४॥

३२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—द्यावापृथिवी। छन्द—अनुष्टुप्,)

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥१॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ॥२॥
यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥३॥
विश्वमन्यामभीवारं तदन्यस्यामधि श्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥४॥

हे जिज्ञासुओ ! तुम इस वस्तु को जानो । वह जलात्मक ब्रह्म पृथिवी पर नहीं रहता, द्यौ में भी नहीं रहता । उस जल से कौशिक द्वारा बताई हुई क्षिति औषधियाँ तथा विरोहणशील औषधियाँ जीवित रहती हैं ॥१॥ इन औषधियों का कारणरूप जल आकाश पृथिवी के मध्य अंतरिक्ष में स्थित है । यक्ष गंधर्वों का निवासस्थान भी अन्तरिक्ष है । इस लोक में वर्तमान स्थावर जंगम युक्त विश्व का आश्रय जल है । विधाता, मनु आदि को भी उसका ज्ञान है या नहीं ? ॥२॥ हे आकाश-पृथिवी, तुम इस जल के उत्पत्ति कर्म में लगे रहे हो तब यह उत्पन्न हुआ है । जल हर समय तरल गुण वाला है । समुद्र की ओर गमन करने वाली नदियाँ सदा अक्षय जलयुक्त रहती हैं ॥३॥ आकाश विश्व का ढक्कन रूप है । पृथिवी का आश्रित विश्व द्यौ से वृष्टि याचना करता है । वृष्टि द्वारा समस्त धनों के कारणरूप आकाश को और विश्व की आश्रयरूप पृथिवी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

३३ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः देवता—आपः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥४॥

जो जल अत्यन्त रमणीय और सुन्दर वर्णवाला, पवित्रताप्रद है और जिससे सूर्य उत्पन्न हुये हैं, जिस मेघस्थ और समुद्रस्थ जल में विद्युत और वड़वानल उत्पन्न होता है, जो अग्निगर्भा है वे सब प्रकार के जल हमारे रोगादि को दूर कर हमको सुख प्रदान करने वाले हों ॥१॥ जिस जल में स्थित हुये पापियों के नियामक वरुण मनुष्यों के सत्यासत्य का निरीक्षण करते हैं, पाश धारणकर फल देते हैं और जिस जल में अग्निरूप गर्भ स्थिर हुआ वह जल हमको सुख शांति प्रदान करे ॥२॥ जिस से सारभूत सोम का स्वर्ग में इन्द्रादि देवता भोग करते हैं और जो जल अन्तरिक्ष में अनेक रूप का हो रहता है जो अग्नि को गर्भ में धारण करता है, वह जल हमको सुख शांति प्रदान करे ॥३॥ हे जल के अभिमानी देवताओ ! तुम अपने क्रूरता रहित चक्षु से मुझ अनिष्टादि को न चाहने वाले की ओर देखो और अपने शरीर से मेरी त्वचा का स्पर्श करो । अमृतवर्षा रूप जल, और अग्निगर्भा जल हमको सुख शांति प्रदान करें ॥४॥

३४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मधुवनस्पति । छन्द अनुष्टुप् ।)

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सानो मधुमतस्कृधि ॥१॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥३॥
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥४॥

परित्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे ।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥५॥

सम्मुख स्थित यह "वत्" रूखड़ी और विरोहणशील मधूकलता इस मधुमई पृथिवी में ही उत्पन्न हुई हैं। हे वीरुत् ! तू स्वभाव से ही मधुर है, मैं तुझ मधुरमई को खोदता हूँ। तू हमें मधुर रस से पूर्ण करदे ॥१॥ हे मधूक ! जैसे जलमधूक का पुष्प मधुर रस से सम्पन्न होता है, वैसे ही मेरी जिह्वा का अग्रभाग मधुर रस वाला रहे, ऐसा ही कर। तू मेरे शरीर अन्तःकरण और व्यापार में व्याप्त हो ! ॥२॥ हे मधूकलते ! तेरे धारण करने पर मेरे निकटवर्ती कार्यों में प्रयुक्त होना मधुमय हो और दूर जाकर कार्य करना भी प्रसन्नता से युक्त हो। मेरी वाणी भी मधुर हो और मैं अपने सब व्यापारों में मधुर होने के कारण सब का प्रिय बन जाऊँ ॥३॥ हे मधूकलते ! तेरे सामीप्य को प्राप्त कर मैं मधु से भी अधिक मिष्ठ होऊँ तू केवल मेरी ही सेवा करने वाली है, अतः जैसे मीठी शाखा का सब सेवन करते हैं वैसे ही मैं भी सब के द्वारा सेवनीय मिष्ठ बनूं ॥४॥ हे पत्नि ! सब ओर से व्याप्त मधुर ईख के समान परस्पर विद्वेष रहित और मधुमय रहने के लिये ही मैं तुझे प्राप्त हुआ हूँ। तू जिस प्रकार मेरी ही इच्छा करने वाली रहे और मुझे त्याग कर अन्यत्र न जा सके, इसी निमित्त मैं तुझे प्राप्त हुआ हूँ ॥५॥

३५ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा (आयुष्कामः) देवता—हिरण्यम् । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥१॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥२॥
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धि-
रण्यम् ॥३॥
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥४॥

हे पुरुष ! तू आयुष्काम है। तेरी आयु बढ़ाने के लिये तेज बल की प्राप्ति द्वारा शतायुष्य करने के लिए, जैसे दक्षगोत्री महर्षियों द्वारा "शत-नीक राजा" के नीलम बांधा था, वैसे ही उस आनन्दप्रद हिरण्य को तेरे बांधता हूं ॥१॥ हिरण्यधारी मनुष्य को ज्वरादि की पीड़ा नहीं होती। मांस-भक्षी पिशाच भी उसे पीड़ित नहीं करते। यह नीलमयुक्त स्वर्ण इन्द्रादि देवताओं से पहले उत्पन्न हुआ है। यह बल करने और शरीर के धारण करने वाली आठवीं धातु है। राक्षसों का नाशक होने से इसे दाक्षा-यण कहते हैं। जो इसे धारण करता है वह राक्षसों का नाश करने वाला शतायुष्य होता है ॥२॥ जलों का तेज, सूर्य चन्द्र का तेज, इन्द्र का ओज, बल, वीर्य आदि सबको इस हिरण्य के धारण करने वाले पुरुष में स्थापित करता हूं। जैसे इन्द्रात्मक सामर्थ्य इन्द्र में ही रहती हैं, वैसे ही इस पुरुष में उपरोक्त वस्तु प्रकाशित हों। तेज आदि समृद्धि होने वाला नीलमयुक्त सुवर्ण को धारण करे ॥३॥ हे पुरुष ! तू समस्त ऐश्वर्यों की इच्छा करने वाला है, मैं तुझे ऋतुओं से पूर्ण करता हूँ, संवत्सर तक रहने वाले दूध से युक्त कर गवादि पशु और धन-धान्य से सम्पन्न करता हूँ। अन्य सभी देवताओं सहित इन्द्राग्नि भी हमारी त्रुटियों से रुष्ट न होते हुए सुवर्ण धारण से उत्पन्न फल को देने वाले हों ॥४॥

॥ इति प्रथमं काण्डं समाप्तम् ॥

द्वितीय काण्ड

—:०:—

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि–वेनः। देवता–ब्रह्म, आत्मा। छन्द–त्रिष्टुप्, जगती।)

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१॥
प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत्।२।
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३॥
परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वेषो अग्निः ॥४॥
परि विश्वा भुवनान्यावमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५॥

सत्य ज्ञान आदि लक्षण वाले परब्रह्म में सम्पूर्ण विश्व लीन होकर रहता है, ऐसे ब्रह्म को वेन (सूर्य) ने देखा। इस भौतिक जगत् से अभिन्न और सर्वशक्ति युक्त होने से इसे सूर्य के रूप और नाम से प्रकट किया। सभी से उत्पन्न प्रजाएं इस सूर्य को जानती हैं और सामने खड़े होकर स्तवन करती हैं ॥१॥ रश्मिवंत सूर्य हृदय गुहा स्थित उस ब्रह्म को आराधकों को बतावें। इस ब्रह्म के तीन पाद गुहा में स्थित हैं अर्थात् साधारण दृष्टि अथवा ज्ञान से ओझल हैं। उस ब्रह्म का ज्ञान केवल सत्य उपदेश द्वारा ही हो सकता है ॥२॥ वह सूर्यात्मक ब्रह्म हमारा पोषक पिता है, वह हमको उत्पन्न करने वाला है, वही हमारे भ्राता आदि हैं। वे ही हमारे कर्म फल रूप स्वर्गादि के ज्ञाता है। सभी लोकों को वह जानने वाला है।

जिस परब्रह्म का वर्णन किया जाता है, वही इन्द्र, अग्नि आदि के के नाम से लोक में प्रकट होता है ।।३।। मैं आकाश पृथिवी और सम्पूर्ण विश्व को तत्वज्ञान के द्वारा प्राप्त कर चुका हूँ । सत्य ब्रह्म द्वारा प्रथम उत्पन्न सूत्रात्मा जैसे संसार को व्याप्त कर स्थित रहता है, वैसे ही मैं स्थित हूँ । वक्ता में स्थित वाणी के प्रयुक्त होते ही जैसे सब जान जाते हैं, वैसे ही मैं तत्वज्ञान के प्रकट होते ही इन सब को प्राप्त कर चुका हूँ ।।४।। इन्द्रादि देवता जिस कारणभूत ब्रह्म में लीन हो जाते है और जिस ब्रह्म में वृत्तियों द्वारा साक्षात् होने पर परमानन्द को भोगती हुई इन्द्रियां ब्रह्म में लीन हो जाती हैं, उस ब्रह्म के दर्शनार्थ में ज्ञान प्राप्त होने से पूर्व विभिन्न लोकों में अनेक बार घूम चुका हूँ ।।५।।

२ सूक्त

(ऋषि–मातृनामा । देवता–गन्धर्वाप्सरसः । छन्द–जगती, त्रिष्टुप् गायत्री)

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ।१।
दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः ।।२।।
अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ।।३।।
अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ।।४।।
याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्व पत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ।।५।।

दिव्य जल और शक्तियों के धारण करने वाले सूर्य वृष्टि आदि से पुष्ट करने के कारण पृथ्वी आदि लोकों के स्वामी हैं और प्राणियों को भी पुष्ट करने वाले हैं । वे प्रजाओं के लिए स्तुत्य हैं । हे गंधर्व ! मैं तुम्हें

परब्रह्म भाव से मानता हूँ और हवि देता हुआ नमस्कार करता हूँ ॥१॥ जो गंधर्व आकाश में स्थित, सूर्य, रूप से तेजस्वी, लोकों का स्वामी, देवताओं के क्रोध को दूर करने वाले और सुखदाता है, वह हमको सुख प्रदान करे ॥२॥ सुन्दर रूप वाली रश्मि रूप अप्सराओं से सूर्य गंधर्व सुसंगत हो गए। इन अप्सराओं का स्थान समुद्रोप नाम के सूर्य ही है। विद्वानों का कथन है कि सूर्योदय के समम सूर्य से ही रश्मियाँ निकलती और अस्तकाल में उन्हीं में लीन हो जाती हैं ॥३॥ हे नक्षत्र रूप रश्मियो ! तुम में जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले चन्द्रमा से संयुक्त होती हो, ऐसी तुम को मैं नमस्कारयुक्त हवि देता हूँ ॥४॥ उपद्रव द्वारा मनुष्यों को रुलाने वाली, मोह में डालने वाली, ग्लानि फैलाने वाली गंधर्व पत्नी अप्सराओं को नमस्कारपूर्वक हवि देता हूं ॥५॥

३ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—(अस्राव) भेषजम् । छन्द—अनुष्टुप् बृहती ।)

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् ।
तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥१॥
आदंगा कुविदंगा शतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥२॥
नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥३॥
उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥४॥
अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥५॥
शंनो भवन्त्वाप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥६॥

जो मूंज व्याधि हरण करने वाला, श्रेष्ठ पर्वत से उतरने वाला है, उसके अग्र भाग को औषधि बनाता हूं। हे मूंज ! तुझे परम वीर्ययुक्त औषधि बनाकर व्याधि दूर करने के निमित्त प्रयुक्त करता हूं ॥१॥ हे औषधे ! तू प्रयुक्त होते ही रोग का नाश कर अतिसार आदि रोगों को नष्ट कर दे। तू अपनी सजातीय औषधियों में उत्कृष्ट है, तू अतिसार, अतिमूत्र और नाड़ीव्रण का नाश करने में पूर्णतया समर्थ है ॥२॥ प्राणनाशक असुर और देहपात करने वाली व्याधियां इस व्रण के मुख को व्याप्त होते हैं। परन्तु यह मूंज नामक औषधि स्रावों को रोकने वाली तथा अतिसार आदि रोगों को नष्ट करने वाली है ॥३॥ भूमिगत जलराशि से रोगनाशिनी औषधि रूप मिट्टी ऊपर आती है, यह वमई की मिट्टी रूप भेषज सब प्रकार के स्रावों और अतिसारादि रोगों को समूल मिटा देती है ॥४॥ खेत की मिट्टी व्रण का पाक करने वाली और अतिसारादि को दूर करने वाली महान औषधि है। यह अस्राव युक्त रोगों को समूल मिटा देती है ॥५॥ औषधि के निमित्त प्रयोग किये जाने वाले जल हमारे रोगों का शमन करने वाले और सुखदायक हों। रोगोत्पादक कारणों को इन्द्र का वज्र नष्ट करे। राक्षसों द्वारा मनुष्यों पर छोड़े गए रोग रूप आयुध अन्यत्र जाकर गिरें ॥६॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—जङ्गिडमणिः। छन्द—पङ्क्तिः, अनुष्टुप्)

दीर्घायुत्वाय वृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं विभृमो वयम् ॥१॥
जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः ॥२॥
अयं विष्कन्धं सहतेऽयं वाधते अत्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥३॥
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४॥

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यो ॥५॥
कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

हम दीर्घजीवी हों, इसके लिये हिंसात्मक कर्मों से अपनी सदा र
करते हुये, राक्षसों के वेग को अवरुद्ध करने और शरीर को सुखाने वा
व्याधि को दूर करने वाली जंगिड वृक्ष निर्मित मणि को बांधते हैं ॥
यह जंगिड मणि हिंसक कृत्या राक्षसों के चर्वणादि से शरीर के टूक
होने से बचाने में समर्थ है। यह सब ओर से हमारी रक्षा करे ॥२॥
मणि दूसरों के द्वारा प्रेरित उपद्रवों से टक्कर लेती है और कृत्यादि
नाश करती है। यह सब रोगों को शान्त करने वाली औषधि रूप म
हमको पाप से बचावे ॥३॥ अग्नि आदि देवताओं द्वारा प्रदत्त सुखोत्पा
जंगिड मणि से हम विघ्नों को भूत, प्रेत, पिशाच और असुरों को उ
घूमने के स्थानों में ही दबाते हैं ॥४॥ मणि बंधक रूप सन और जं
मेरी सब ओर से रक्षा करने वाले हों। इनमें से सन कृषि के रस से
जंगिड जङ्गल से लाया गया है। इस प्रकार प्राप्त यह दोनों हमको विघ्
दि से बचावें ॥५॥ अन्य के द्वारा अभिचार से उत्पन्न पीड़ादायिनी कृ
को यह मणि दूर करती है। यह बलवती, शत्रु का पराभव करने वा
है। यह हमारी आयु की वृद्धि करे ॥६॥

५ सूक्त

(ऋषि—भृगुराथर्वणः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्:)

इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम् ।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥
इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वर्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥२॥
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न ।

विभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥३॥
आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥४॥
इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥५॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्राइव धेनवः स्यान्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥६॥
वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥७॥

हे इन्द्र! तुम दिव्य ऐश्वर्य से युक्त हो, हमको इच्छित फल प्रदान करो अपने हर्यश्व द्वारा हमारे यज्ञ में आगमन करो और अभिषुत सोम का पान करो। यह छन्ने से शुद्ध किया गया सोम तुम्हें तृप्त करने वाला हो।१। हे इन्द्र! इस अमृत तुल्य नवीन रस से युक्त सोम द्वारा अपने पेट को भरो फिर अभिषुत सोम का आनन्ददायक रस तुम स्तुति प्राप्त करने वाले को स्वर्ग के समान हर्षकारक हो ॥२॥ इन्द्र सब जीवों के मित्र और शत्रुओं के वश करने वाले हैं, उन्होंने वृत्रासुर और अवारक मेघ का हनन किया था। अङ्गिराओं की यज्ञ साधन गौओं को हरने वाले वल को भी इन्द्र ने ही मारा था। सोम पीकर हर्षित होने पर इन्द्र ने यह कार्य किये थे।३। हे इन्द्र! इन अभिषुत सोमों को अपनी कोखों में भरो। हमारे आह्वान पर यहाँ आओ और हमारी स्तुति रूप वाणी को सुनकर प्रसन्न होओ। हे इन्द्र! अपने मित्र मरुद्गण आदि देवताओं सहित कर्म को फल प्रदान करने को सोम पीकर संतुष्ट होओ ॥ ४ ॥ इन्द्र के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन करता हूँ। उन्होंने वृत्रासुर और मेघ को मारा और जल को निकाला और पर्वतों पर नदियों के लिये मार्ग बनाया ॥ ५ ॥ इन्द्र ने वृत्रासुर का हनन किया, मेघ को छिन्न-भिन्न किया और जब वृत्रासुर के पिता त्वष्टा ने इन्द्र के लिये अपना वज्र तीक्ष्ण किया, तब गौओं के समान नीचा मुख किये प्रवाहित नदियाँ समुद्र की ओर गमनशील हुईं ॥ ६ ॥ इन्द्र वृष के समान सिंचनशील आचरण वाले हैं। उन्होंने सोम रूप अन्न को प्रजापति से धारण किया और

सोम यागों में अभिषुत सोम का पान किया। उसकी शक्ति से बलवान होकर वज्र को उठाया और इन हिंसक असुरों में प्रथम उत्पन्न हुये इस वृत्रासुर का नाश कर दिया ॥७॥

६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—शौनकः (सम्पत्कामः)। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥
क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४॥
अति निहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

हे अग्ने! संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस आदि तुम्हारी समृद्धि करें। पृथिवी आदि भी तुम्हें बढ़ावे और तुम अपने दिव्य शरीर से प्रदीप्त होकर चारों दिशाओं को प्रकाशित करो ॥१॥ हे अग्ने! स्वयं प्रदीप्त होते हुए यजमान की कामनाओं को पूर्ण करो, उसे धन देने के लिये उन्नत होओ। तुम्हारी सेवा करने वाले यह ऋत्विज् यजमान आदि कर्म को करते रहें और कभी भी क्षीण न हों। जो तुम्हारे सेवक नहीं है वे यश से हीन हो जाँय ॥२॥ हे अग्ने! ऋत्विज् यजमान आदि तुम्हारे उपासक हैं, तुम हमारे प्रमाद से भी रुष्ट न होओ। तुम हमारे शत्रुओं और पापों को पराभूत करते हुये अपने घर में सचेष्ट रहो ॥३॥ हे अग्ने! अपने बल से युक्त होओ। तुम मित्रों पर उपकार करने वाले हो अतः उनका पोषण करो। समान जन्म वाले ब्राह्मणों में मध्यस्थ रहो, यजमान के उपजीव्य होओ। राजाओं के देवाह्वाक यज्ञों में प्रदीप्त होओ ॥४॥ हे

अग्ने ! यह विषय विकार श्वान-सूकर योनि में डालने वाले हैं इनका शमन करो। देह-शुष्क करने वाली व्याधियों को दूर करो। पाप में गिराने वाली कुबुद्धि को मिटाओ। हमारे शत्रुओं का नाश कर हमको पुत्र-पौत्रादि वाला धन प्रदान करो ॥५॥

७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वनस्पतिः (दूर्वा)। छन्द—अनुष्टुप्बृहती)

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१॥
यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥२॥
दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥३॥
परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद् धनम्।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥४॥
शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त्तेन नः सह।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥५॥

पिशाचादि से उत्पन्न पाप, विप्र-शाप आदि को नाश करने वाली, देव-निर्मित "वीरुध" (जड़ी) मुझ हर प्रकार के शापों से मुक्त करदे, जिस प्रकार जल-शरीर के सब मलों को दूर कर देता है, मल को जल द्वारा पृथक् करने के समान दूर करे ॥१॥ शत्रु द्वारा कोसना, ब्राह्मणों का शाप, भगिनी का क्रोध यह तीनों प्रकार के दोष हमारे पैरों से दबे रहें ॥२॥ हे मणे ! नीचा मुख करके फैली हुई, जड़ के समान ऊपर को उठी हुई, सैकड़ों ग्रन्थि वाली दूर्वा के द्वारा तुम हमें शाप से मुक्त करो ॥३॥ हे मणे ! तू मेरी, मेरी सन्तान की और मेरे धन की रक्षा कर। हमारा शत्रु वृद्धि को न पावे और हिंसक यक्ष पिशाचादि भी हमारी हिंसा में समर्थ न हों ॥४॥ शाप देने वाले को ही वह शाप लगे। हमारे अनुकूल जो पुरुष हैं वह

हमको सुख देने वाला हो। हमसे दुर्भाव रखने वाले और छिप कर हमारी निन्दा करने वाले के नेत्र और पार्श्व को छिन्न भिन्न करते हैं ॥५॥

८ सूक्त

(ऋषि—भृग्वंगिराः। देवता—यक्ष्मकुष्ठादिनाशनम्। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति)

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥१॥
अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२॥
बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३॥
नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४॥
नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यो नमः क्षेत्रस्य पतये।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५॥

"विचृती" नामक मूल नक्षत्र का उदय होगया यह माता-पिता से प्राप्त क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि रोगों को पाश के समान बांधने वाले हों, रोग के मूल को नष्ट करें ॥१॥ यह उषाकालीन रात्रि इन क्षेत्रिय रोगों को मिटावे। सूर्य इस रोग को शमन करें! अपस्मार आदि रोगों को दूर करने वाली पिशाची दूर हो जायें। औषधि भी इन रोगों का नाश करने में समर्थ हो ॥२॥ हे रोगिन्! अर्जुन के काठ से बनाई गई जौ के भुस और तिल सहित मंजरी से निर्मित मणि तेरे रोग का शमन करे तथा क्षेत्रीय रोगों की नाशक औषधि भी रोग मिटावे ॥३॥ हे रोगिन्! बैलों सहित हल को और उसके अवयवों को तेरे रोग-शमन के लिये नमस्कार है। क्षेत्रीय रोगों की नाशक औषधि तेरे रोग का नाश करे ॥४॥ मिट्टी निकाल लेने के पश्चात् त्याज्य गड्ढों को नमस्कार। जिन गृहों के खिड़की आदि जीर्ण हैं और गिरने के लिये प्रस्तुत हैं, उन शून्य गृहों को नमस्कार

उन गृहों के स्वामियों को भी नमस्कार है। यह क्षेत्रीय रोगों की नाशक औषधि तेरे रोग का नाश करे ॥५॥

९ सूक्त

(ऋषि—भृग्वंगिराः। देवता—वनस्पतिः। छन्द—पंक्तिः अनुष्टुप्।,

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैन जग्राह पर्वसु।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥१॥
आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात्।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥२॥
अधीतीर ध्यगादयमधि जीवपुरा अगन्।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥३॥
देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः।
चीतिं ते विश्वे देवाः अविदन् भूम्यामधि ॥४॥
यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ॥५॥

हे मणे! तू पलाश गूलर आदि से निर्मित है। जो ब्रह्म-राक्षसी, ब्रह्म राक्षस द्वारा ग्रहणीय है, उसने इसे अमावस्या को पकड़ लिया है, उससे इसको मुक्त कर। इस पुरुष को छुड़ा कर पुनर्जीवित कर ॥१॥ हे मणे! यह पुरुष तेरे प्रभाव से ग्रह से छूट जाय और इस लोक में पुनः लौटे। यह अपने व्यापार में समर्थ हो और अपने पुत्रों का पिता हो ॥२॥ ब्रह्मग्रह से छूटने पर इस पुरुष को भूली हुई विद्या फिर याद आ जाय। यह प्राणियों के निवास स्थानों को पुनः जान ले ॥३॥ हे मणे! तू ग्रह विकार से रोगी को मुक्त करती हैं। तेरे इस सामर्थ्य को इन्द्रादि देवता जानते हैं। ब्राह्मण औषधियाँ वरुण, मित्र आदि देवता भी तेरी इस शक्ति के ज्ञाता हैं ॥४॥ जिन महर्षि अथर्वा ने इस मणि बन्धन की रचना की वह इस ग्रह के विकार को शमन करें। वे महान् भिषक् हैं। हे रोगिन्! पवित्र ज्ञान से सम्पन्न वे ही तेरी चिकित्सा करें ॥५॥

१० सूक्त

(ऋषि-भृग्वंगिरा: । देवता-निर्ऋतिद्यावापृथिव्यादयो मंत्रोक्ता: । छन्द त्रिष्टुप्)

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।१॥

शं ते अग्नि: सहाद्भिरस्तु शं सोम: सहौषधीभि: ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥२॥

शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्र: ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्याजामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥३॥

इमा या देवी: प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्याजामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥४॥

तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋति: पराचै: ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥५॥

अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुह: पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्था: ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामिवरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्
॥६॥

अहा अरातिमविद: स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥७॥

सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामिवरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥८॥

हे पुरुष! तुम रोग-पीड़ित को, माता पिता से प्राप्त क्षय, कुष्ठ आदि रोगों से मुक्त करता हूं। तुझे पाप से, पापियों को दण्ड देने वाले वरुण के पाश से और ब्रह्म-दोष से भी छुड़ाता हूं। मैं यह सब मन्त्र की शक्ति से करता हूँ। यह आकाश पृथिवी तेरा मङ्गल करें ॥१॥ हे रोगिन्! यह पार्थिव अग्नि जलाभिमानी देवताओं सहित सुख देने वाला हो। कबीला आदि औषधियों के सहित सोम तुझे सुखी करे। मैं तुझे क्षेत्रीय व्याधि और नैर्ऋति से मुक्त करता हूँ। वरुण के पाश से छुड़ाकर अपने मन्त्र की शक्ति से मैं तुझे पाप रहित करता हूं। यह आकाश-पृथिवी तेरे लिये मंगलमय हों ॥२॥ हे रोगिन्! आकाश-पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले वायु तेरा मङ्गल करें। चारों दिशायें तेरे लिये सुखकारी हों। मैं तुझे आक्रोश, निर्ऋति, क्षेत्रीय व्याधि, गुरु-द्रोह जन्य पाप और पापियों के नियामक वरुण के पाश से मुक्त करता हुआ पाप रहित करता हूं। आकाश-पृथिवी तेरे लिये मङ्गलमय हों ॥३॥ दमकती हुई दिशाएं वायु की पत्नी हैं, उनको सूर्य-मण्डल के अधिपति सवितादेव सब ओर से देखते हैं। वे दिशाएं और सविता देवता तेरा मङ्गल करें। मैं तुझे आक्रोश, निर्ऋति, क्षेत्रीय व्याधि, गुरुद्रोहजन्य पाप और पापियों के नियामक वरुण के पाश से मुक्त करता हुआ पाप-रहित करता हूं। आकाश-पृथिवी तेरे लिये मङ्गलमय हों ॥४॥ हे रोगिन! मैं तुझे रोग रहित कर वृद्धावस्था तक के लिये उन दिशाओं में स्थापित करता हूं। तेरा रोग दूर हो और पाप देवता पीछे को लौट जाय। मैं तुझे बांधवों के आक्रोश, क्षेत्रीय रोग, पाप देवता निर्ऋति गुरुद्रोहजन्य पाप और पापियों के नियामक वरुण के पाश से मुक्त करता हुआ पाप-रहित करता हूँ। आकाश-पृथिवी तेरे लिये मङ्गलमय हों ॥५॥ हे रोगिन्! तू क्षेत्रीय रोग भय से मुक्ति पा रहा है

और अपने रोग के पाप, भगिनी आदि के आक्रोश, देवद्रोह, पापियों को दण्ड देने वाले वरुण के पाश और ब्रह्म राक्षसी आदि के बंधनों से भी छुटकारा पा रहा है। मैं भी तुझे इन सभी से छुड़ाता हुआ मन्त्र बल से निष्पाप बनाता हूँ। आकाश और पृथिवी तेरे लिये मङ्गलमयी हों ॥६॥ हे रोगिन्! तू शत्रु के समान विघ्नकारी व्याधि से दूर हो। तू अपने पुण्य फल से मङ्गलमय पृथिवी लोक में आ गया है। मैं तुझे क्षेत्रीय रोग आक्रोश, पाप पापियों के नियामक वरुण के पाश से छुड़ाता हूँ और मन्त्र बल से निष्पाप करता हूँ। आकाश-पृथिवी तेरा मङ्गल करें ॥७॥ राहु से सूर्य को मुक्त कराते समय देवताओं ने पाप को भी दूर किया था, उसी प्रकार मैं तेरे क्षेत्रीय रोग को दूर करता हूँ। तुझे निर्ऋति, आक्रोश, गुरुद्रोहजन्य पाप और वरुण-पाश से मुक्त करता हुआ निष्पाप बनाता हूं। आकाश-पृथिवी तेरा मंगल करें ॥८॥

११ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—शुक्रः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—गायत्री, उष्णिक्।)

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥१॥
स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥२॥
प्रति तमभि चर योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥
सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५॥

हे तिलक मणे! तू अन्य के दोषरूप कृत्या को दोषित करने में समर्थ है। तू अन्य द्वारा प्रेरित आयुध को नष्ट करती है। वाणी रूप वज्र के लिए तू वज्ररूप है अतः शत्रुओं द्वारा किये गए अभिचारादि के उत्पातों को

दूर करती है। तू हमारे शत्रु को नष्ट कर जिससे हम उसका बिना प्रयत्न ही दमन कर डालें ॥१॥ हे तिलक मणे। तू आगत कृत्या को दूर करने वाली है और मंत्र युक्त रक्षात्मक सूत्र है। तू समान बल वाले शत्रु को लाँघती हुई अधिक बल वाले शत्रु का नाश कर॥२॥जो पशु, पुत्र, बाँधवों वाला शत्रु हम सब से वैर करता है, और हम जिसके मारने की इच्छा करते हैं उन शत्रुओं को हे मणे! तू नष्ट कर। समान बल वाले शत्रुओं को लाँघती हुई, अधिक बल वाले शत्रुओं का संहार कर ॥३॥ हे मणे! तू शत्रु कृत अभिचारों को जानती है और अपने धारण करने वाले में तेज धारण कराती है। तू अन्यकृत अभिचारों से हमारे देश की रक्षा करने में समर्थ है। तू समान बल वाले शत्रुओं को लाँघती हुई, अधिक बल वाले शत्रुओं का संहार कर ॥४॥ हे शत्रुओं को संताप देने वाली मणे! तू ज्वरादि युक्त संताप देने में समर्थ और कृत्या आदि को भी तू अपने सूर्य के समान तेज से संतप्त करती है। तू समान बल वाले शत्रु से पार होती हुई अधिक बल वाले शत्रुओं का पहिले नाश कर ॥५॥

१२ सूक्त

(ऋषि—भारद्वाजः। देवता—द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं। छन्द—त्रिष्टुप्।)

द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं ते इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥
इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं इदं हिनस्ति ।२।
इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्त्वां हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३॥
अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४॥
द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम्।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५॥

अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभि सं तपाति ॥६॥
सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरङ्.कृत: ॥७॥
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्नि: शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८॥

आकाश, पृथिवी और उनके मध्य में स्थित अन्तरिक्ष और उनमें वास करने वाले अधिपति देवता, वायु, सूर्य, अग्नि, लोकपालक विष्णु आदि सब इस अभिचार कर्मद्वारा प्रेरणा पाकर शत्रुओं को मारने वाले हों ॥१॥ हे यज्ञयोग्य देवताओ ! मेरा निवेदन सुनो कि वषट्कार द्वारा देवताओं को आहुति देने वाले भारद्वाज ऋषि मेरी काम्य वस्तुओं के फल के लिये अभिचार योग्य मन्त्रों का उच्चारण कर रहे हैं। जो शत्रु हमारे श्रेष्ठ कर्मों में लगे मन को दुखी कर चुका है वह मेरे इस कर्म द्वारा मृत्यु रूप दुर्गति को प्राप्त हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा चित्त सोम पीकर प्रफुल्लित होता है, तुम मेरे निवेदन पर ध्यान दो। मैं शत्रुओं कृत दुष्कर्मों के कारण तुम्हें बारम्बार बुलाता हूँ। मैं अपने शत्रु को वृक्ष के समान काटता हूँ ॥३॥ इन्द्र और सोम के उद्गाता से प्रयुक्त स्तोत्र, अंगिरा ऋषि, द्वादश आदित्य, अष्टावसु और रुद्रों सहित हमारे पुरुषार्थों की जो यज्ञ आदि कामना है और स्मृति विहित कूप, वापी, तड़ाग आदि हैं, उन कामना पूर्तियों से प्रकट पुण्य हमारा रक्षक हो। मैं इस अमुक नाम के शत्रु को अपने अभिचार कर्म द्वारा कृत्यारूप देवकोप से कष्ट करता हूं ॥४॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम शत्रु को तिरस्कृत करने के लिये तेजस्वी बनो। हे विश्वेदेवाओ ! शत्रुओं का संहार करने के लिये तैयार होओ। अंगिराओ ! पितरो ! मेरे शत्रु को वश में करने को तुम भी तत्पर होओ ॥५॥ हे मरुद्गण ! जो हमको हीन समझ कर हमारे अनुष्ठान को भी निंद्य बताते हैं, उनको तुम्हारा तेज रूप आयुध बाधा दे। मेरे कर्म के प्रति द्वेष करने वाले शत्रु को सवितादेव सब ओर से व्यथित करें ॥६॥ तेरे नेत्र आदि सप्त प्राण और कण्ठ की आठ नाड़ियों को तथा अन्य अङ्गों को अभिचार कर्म द्वारा छिन्न-

भिन्न करता हूं। हे शत्रु ! तू शव रूप आभूषण में सज कर यम स्थान को प्राप्त हो ॥७॥ मैं तेरे चूर्णित शरीर सहित अग्नि में पाँव की धूल डालता हूं, इसके द्वारा यह अग्नि तेरे देह में प्रविष्ट होकर तेरे प्राण और वाणी को भी व्याप्त करले ॥८॥

१३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः बृहस्पतिः विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्।)

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥१॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः।
वृहस्पतिः प्रायच्छद् बास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥२॥
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुप संव्ययस्व ॥३॥
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥४॥
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां वहवः सुजातम् ।५।

हे अग्ने ! तुम शतायु प्रदान करने वाले हो। तुम घृत के प्रतीक हो और घृत तुम्हारे अवयवों का आश्रयरूप है। इसलिये इस मन्त्रपूत गोघृत को पीकर तृप्त होओ और पिता द्वारा पुत्र की रक्षा करने के समान इस बालक की रक्षा करते हुये सौ वर्ष की आयु प्रदान करो ॥१॥ हे देवताओ ! इस बालक को परिधान धारण कराओ, इसे तेजस्वी बनाओ और पूर्ण अवस्था वाला करो। इसे सौ वर्ष की आयु दो। इन्द्रादि के स्वामी बृहस्पति ने सोम के लिये भी परिधान धारण कराया था ॥२॥ हे बालक ! परिधान क्षेम के लिये धारण कराया है। तू इसके प्रभाव से गौओं को हिंसा के भय से बचाता हुआ उसका पोषण कर और पौत्रादि वाला होकर शतायुष्य हो। तू समृद्धियुक्त ऐश्वर्य को भी प्राप्त कर ॥३॥ हे बालक !

अपने दक्षिण पाद द्वारा इस पाषाण पर चढ़ और इसी के समान दृढ़ तथा निरोग रह। विश्वेदेवा तुझे शतायुष्य करें ॥४॥ हे माणवक ! तेरे पुराने उतारे हुये वस्त्र को हम ग्रहण करते हैं। तू समृद्धि से सुशोभित हो। तेरे जन्म के पश्चात्, पशु पुत्रादि से प्रवृद्ध होते हुए सुन्दर भाई उत्पन्न हों और सब देवता तेरे रक्षक हों ॥५॥

१४ सूक्त

(ऋषि—चातनः। देवता—अग्निभूतपतीन्द्रा। छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥१॥
निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात्।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥
असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥३॥
भूतपतिर्निराजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥
यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५॥
परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन्।
अजैषं सर्वानाजीन् वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥६॥

उन्नत शरीर वाली, सन्तान नष्ट करने वाली, भयोत्पादिका निःसाला नाम्नी राक्षसी, धिषण नामक पाप-ग्रह, कठोर वाणी वाली, एकवाद्या राक्षसी का हम संहार करते हैं और चण्ड नाम की पिशाचनियों को भी भगाते हैं ॥१॥ हे मगुन्दी पिशाची की पुत्रियो ! हम तुम्हें गौओं के गोष्ठ से बाहर करते हैं। धन धान्ययुक्त भवन और आवास स्थानों से भी दूर करते हुये तुम्हारा नाश करते हैं ॥२॥ पृथिवी से दूर तथा नीचे को पाताल लोक

है, इसमें पुण्य कार्यों में विघ्न उपस्थित करने वाली अप्रिय नाम्नी राक्षसियाँ चली जाँय और विनाशिनी सेदि नामकी राक्षसी भी इस लोक को त्याग कर पाताल लोक में रहे ॥३॥ भूतनाथ रुद्र और इन्द्र इन आक्रोश करने वाली पिशाचियों को मेरे आवासस्थान से दूर करें ॥४॥ हे राक्षसियो ! तुम माता पिता के देह से प्राप्त कुछ अपस्मार ग्रहणी आदि को उत्पन्न करती हो। इस प्रकार की तुम मेरे इस घर से दूर होती हुई नाश को प्राप्त होओ ॥५॥ अपने लक्ष्य पर आक्रमण करता हुआ शीघ्रगामी अश्व जैसे रुक जाता है, वैसे ही इन पिशाचियों के रहने के स्थानों पर मैं भी आक्रमण कर चुका हूँ। हे पिशाचियो ! तुम सब युद्धों से पराजित हुई और मैंने तुम्हारे घर को भी छीन लिया है। अब तुम आश्रयहीन होकर मृत्यु को प्राप्त होओ ॥६॥

१५ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–प्राणः। छन्द–गायत्री।)

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः॥१
यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा विभेः॥२
यथा सूर्यश्च चंद्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा विभेः॥३
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न विभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा विभेः॥४
यथा सत्यं चानृतं च न विभीतो रिष्यतः। एवा मे प्राण मा विभेः॥५
यथा भूतं च भव्यं च न विभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः॥६

देवाश्रय रूप आकाश और मनुष्याश्रय भूत पृथिवी यह दोनों लोक सब के उपजीव्य हैं, अतः उपजीव्य को कोई नष्ट नहीं कर सकता। ऐसे ही हे प्राण ! तू मरण-शङ्का से रहित हो और इस मन्त्र-बल से आकाश पृथिवी के समान चिरजीवी हो ॥१॥ दिन और रात्रि न भयभीत होते है न नष्ट होते हैं। हे प्राण ! तू भी उन्हीं की समान मरण शङ्का से रहित हो और इस मन्त्र के बल से चिरजीवी हो ॥२॥ जैसे सूर्य चन्द्र न भयभीत होते हैं, न नष्ट होते हैं, वैसे ही मेरे प्राण ! तू भी किसी से मत डर और मृत्यु

की आशंका छोड़ दे। तू भी सूर्य चन्द्र के समान चिरजीवी हो ॥३॥ जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय जातियाँ न भयभीत होती हैं, न नष्ट होती हैं, वैसे ही मेरे प्राण ! तू मरण शङ्का से रहित हो और ब्राह्मण क्षत्रिय जाति के समान चिरजीवी हो ॥४॥ जैसे सत्य-असत्य न किसी से डरते हैं न नष्ट होते हैं वैसे ही हे मेरे प्राण ! तू भी मत डर और नष्ट होने की चिन्ता मत कर, तू भी सत्यासत्य के समान ही चिरजीवी हो ॥५॥ जैसे भूत और भविष्य किसी से नहीं डरते, न नष्ट होते हैं, वैसे ही तू भी मृत्यु की शङ्का त्याग कर चिरकाल तक जीवित रह ॥६॥

१६ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–प्राणापानौ प्रभृति। छन्द–त्रिष्टुप्, गायत्री)

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥१॥
द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥२॥
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥३॥
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥४॥
विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५॥

ऊपर मुख करके चेष्टा करने वाला प्राण है, नीचे की ओर से चेष्टा-वान् अपान है। इनके अभिमानी देवताओ ! मुझे मरण से बचाओ यह आहुति ग्रहण करो ॥१॥ हे आकाश-पृथिवी में स्थित दिशाओ ! तुम श्रवण शक्ति प्रदान कर मेरी रक्षा करो और यह आहुति स्वीकार करो ॥२॥ हे नेत्राभिमानी आदित्य ! तुम दर्शन शक्ति प्रदान कर मेरी रक्षा करो। यह आहुति स्वीकार करो ॥३॥ हे वैश्वानर अग्ने ! तुम वैद्युतिक अग्नि और सूर्य से उत्पन्न हो, तुम वाक् इन्द्रिय देकर मेरी रक्षा करो। मैं यह आहुति देता हूं ॥४॥ हे विश्व का पोषण करने वाले विश्वम्भर अग्ने ! अपनी पोषण शक्ति से मेरी रक्षा करो। यह आहुति तुम्हारे निमित्त हो ॥५॥

१७ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–ओजःप्रभृतीनि। छन्द–त्रिष्टुप्)

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ।१। सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ।२। बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३॥ आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥ श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ।५। चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ।६। परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७॥

हे ओज ! तू घृत के समान शारीरिक स्थित अष्टम दशा है । तू मुझे ओज प्रदान कर, मैं तुम्हारे लिये हवि देता हूं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम शत्रुओं को तिरस्कृत करने में समर्थ हो । मुझे तेज प्रदान करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम बल हो । मुझे बल प्रदान करो । मैं तुम्हारे लिये हवि देता हूं ॥३॥ हे अग्ने ! तुम आयु हो, मेरे जीवन के लिये सौ वर्ष की आयु प्रदान करो तुम्हारे निमित्त यह हवि देता हूं ॥४॥ हे अग्ने ! तुम श्रोत्र रूप हो, इस लिये मुझे सुनने की शक्ति प्रदान करो तुम्हारे निमित्त यह हवि देता हूँ ॥५॥ हे अग्ने ! तुम चक्षु रूप हो । मुझे देखने की शक्ति रूप नेत्र प्रदान करो तुम्हारे लिये यह हवि देता हूं ॥६॥ हे अग्ने ! तुम पालन करने वाले हो, इस लिये आयु भंग के कारणों से बचाते हुये हमारा पालन करो । तुम्हारे लिये यह हवि देता हूँ ॥७॥

१८ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—चातनः । देवता—अग्निः । छन्द—बृहती)

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥१॥
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ॥२॥
अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥३॥
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥४॥
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ॥५॥

हे अग्ने ! तुम शत्रु-नाश करने में समर्थ हो इसलिये मुझे भी शत्रु का नाश करने वाली शक्ति दो मैं तुम को हविष्य देता हूं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम वैरियों को नष्ट करने वाले हो, अतः वैरियों को नाश करने वाली शक्ति मुझे भी दो मैं तुमको हविष्य देता हूं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम दानादि के

शत्रु अराय नामक राक्षसों के हनन करने वाले हो । मुझे भी आरायों का नाशक बल प्रदान करो मैं तुमको हविष्य देता हूँ ॥३॥ हे अग्ने ! तुम पिशाचों को नष्ट करने वाले हो । ऐसी ही सामर्थ्य मुझे प्रदान करो मैं तुमको हविष्य देता हूं ॥४॥ हे अग्ने ! तुम राक्षसियों का संहार करने में समर्थ हो, मुझे भी राक्षसियों को नाश करने वाला बल दो मैं तुमको हविष्य देता हूं ॥५॥

१९ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अग्निः । छन्द–गायत्री)

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।१।
अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।२।
अग्ने यत् ते ऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।३।
अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।४।
अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।५।

हे अग्ने ! तुम में जो संतापप्रद शक्ति है उसके सहित शत्रु को लक्ष्य कर दीप्त होओ । जो शत्रु हमारे विरुद्ध कृत्यादि कर्म करता है उस विद्वेषी को पीड़ित करो ॥१॥ हे अग्ने ! हम से द्वेष रखने वाले या जिससे हम द्वेष रखते हैं, उस शत्रु पर तुम अपने क्रोध रूप आयुध को चलाओ ॥२॥ हे अग्ने ! हम से बैर करने वाले या जिससे हम बैर करते हैं उस शत्रु को अपने तेज से भस्म करो ॥३॥ हे अग्ने ! हम से बैर करने वालों या जिनसे हम बैर करते हैं उन पर अपनी शोक देने की शक्ति का प्रयोग करो ॥४॥ हे अग्ने ! हमारे वैरी शत्रुओं को दवाने वाले तेज को उन पर फेंक कर उन्हें वलहीन करो ॥५॥

२० सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–वायुः । छन्द–गायत्री)

वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।१।
वायो यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।२।

वायो यत् तेऽर्चिस्तेन तां प्रत्यर्चं यास्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।३।
वायो यत् ते शोचिस्तेन तां प्रति शोच योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।४।
वायो यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योस्मान् द्वेष्टियं वयं द्विष्मः ।५।

हे वायो ! तुम अन्तरिक्ष में घूमते हो। तुम अपनी पीड़ाप्रद शक्ति को शत्रु के प्रति प्रयुक्त करो। हम से द्वेष करने वाले कृत्याकारी को संताप देने वाले होओ ।।१।। हे वायो ! हम से द्वेष करने वाले या जिससे हम द्वेष करते हैं ऐसे शत्रुओं पर अपने क्रोध को करो ।।२।। हे वायो ! हमसे द्वेष करने वाले या जिनसे हम द्वेष करते हैं ऐसे दोनों प्रकार के शत्रुओं को नष्ट करने के लिये तुम अपनी अर्चि से प्रदीप्त होओ ।।३।। हे वायो ! हमसे द्वेष करने वाले या जिनसे हम द्वेष करते हैं ऐसे दोनों प्रकार के शत्रुओं को अपने शोकप्रद सामर्थ से शोकाकुल करो ।।४।। हे वायो ! हमसे द्वेष करने वाले शत्रु या जिनसे हम द्वेष करते हैं, इन दोनों पर अपने वशीभूत करने वाले बल का प्रयोग करो और शत्रुओं के तेज का हरण करलो ।।५।।

२१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—सूर्य । छन्द—गायत्री)

सूर्य यत् ते तपस्तेन तां प्रति तप योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।१।।
सूर्य यत् ते हरस्तेन तां प्रति हर योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।२।।
सूर्य यत् तेऽर्चिस्तेन तां प्रत्यर्च योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।३।।
सूर्य यत् ते शोचिस्तेन तां प्रति शोच योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।४
सूर्य यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।५

हे आदित्य ! तुम में जो संतापन शक्ति है, उस शक्ति को शत्रु की ओर लक्ष्य करते हुये प्रकट होओ। तुम अपने तेज को शत्रु के विपरीत करो। जिस शत्रु से हम द्वेष करते हैं अथवा जो शत्रु हमसे द्वेष करता हुआ कृत्यादि अभिचार कर्म करता है, उसे पीड़ित करो ।।१।। जो हम से वैर करता है और

जिससे हम बैर करते हैं, हे आदित्य ! उस शत्रु पर अपने क्रोधरूप आयुध को छोड़ो ॥२॥ जो हमसे वैर करता है और जिससे हम बैर करते हैं, हे आदित्य ! उस शत्रु को भस्म करने के लिये अपनी दीप्ति से संयुक्त होओ ॥३॥ हे आदित्य ! हमारे शत्रुओं को अपने शोक देने वाले बल से शोकाकुल बनाओ ॥४॥ हे आदित्य हमारे बैरियों को अपने शत्रुओं को वश करने वाले सामर्थ्य से वश करते हुये उन्हें निर्वीय कर दो ॥५॥

२२ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–चन्द्रः । छन्द–गायत्री)

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।१।
चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।२।
चन्द्र यत् ते ऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।३।
चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।४।
चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।५।

हे चन्द्र ! जो शत्रु हमसे द्वेष रखता है अथवा जिसके प्रति हम द्वेष रखते हैं और शत्रु हम पर कृत्यादि अभिचार करना चाहता है, उस शत्रु को अपनी सन्तापन शक्ति द्वारा संतप्त करो ॥१॥ हे चन्द्र ! जो हमसे द्वेष रखता है और जिस से हम द्वेष करते हैं उन शत्रुओं पर अपने क्रोध रूप बल को छोड़ो ॥२॥ हे चन्द्र ! अपनी दीप्ति से हमारे वैरियों को और जो हम से द्वेष करते हैं उनको नष्ट करो ॥३॥ हे चन्द्र ! हम से द्वेष करने वाले को या जिससे हम द्वेष करते हैं उस शत्रु को अपने शोकप्रद बल से शोकाकुल करो ॥४॥ हे चन्द्र ! हमारे वैरियों को अपने वश करने वाले सामर्थ्य द्वारा वशीभूत करो और उन्हें निर्वीय करदो ।५।

२३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—आपः । छन्द—गायत्री)

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥
आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोच योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥४
आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥५॥

हे जलो ! जो शत्रु हमसे द्वेष करता अथवा हम जिससे द्वेष करते हैं और जो हम पर कृत्यादि अभिचार कर्म करना चाहता है, उस शत्रु को अपनी संतापन शक्ति से संतप्त करो ॥१॥ हे जलो ! जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, उस शत्रु पर अपने क्रोध को प्रकट करो ॥२॥ हे जलो ! जो हमसे द्वेष करता है, या जिससे हम द्वेष करते है, उस शत्रु को 'अपनी दीप्ति से नष्ट करो ॥३॥ हे जलो ! जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, उस शत्रु को अपनी शोकप्रद शक्ति से शोकाकुल करो ॥४॥ हे जलो ! जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, उस शत्रु को अपने वश करने वाले सामर्थ्य से वश करते हुये निर्वीर्य कर दो ॥५॥

२४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आयुः । छन्द—पङ्क्तिः, बृहती)

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥१॥
शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेति किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥२॥
म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥३॥
सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥
जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥

उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥
अर्जु नि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेति किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७॥
भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८॥

हे शेरभक ! (वध करने वाले) तुम शरभ के समान सबकी हिंसा करने वाले राक्षसों के स्वामी हो । तुम शेरभों में मुख्य हो । हमारी ओर भेजी हुई तुम्हारी जो यातना और राक्षस हैं वे आयुधों सहित हमारे पास से लौट जांय । तुम्हारे चोर आदि अनुचर भी यहाँ ये चले जांय । जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें हमारे पास भेजा है अथवा तुम अपने दल सहित हमारे जिस शत्रु के पास रहते हो, उन्हीं के पशुओं का भक्षण करो । तुम और तुम्हारे आयुध शत्रु के मांस का भक्षण करें ॥१॥ हे शेवृधक ! (घात करने वाले) तुम अपने आश्रितों की सुख-वृद्धि करने वाले शेवृधों के अधिपति हो । तुम्हारी भेजी हुई यातनाएँ, राक्षसियाँ और हिंसात्मक आयुध मेरे पास से लौट जांय । तुम्हारे चोर आदि अनुचर भी यहाँ न रहें । हे राक्षसो ! जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें हमारे पास भेजा है अथवा तुम हमारे जिस विरोधी के पास रहते हो, उन्हीं शत्रुओं के मांस का भक्षण करो ॥२॥ हे म्रोक और अनुम्रोक ! (चोर) तुम धन छीन कर गुप्त रीति से चले जाते हो । तुम्हारी यातना, राक्षस और हिंसात्मक आयुध मेरे पास से लौट जांय । तुम्हारे चोर आदि अनुचर भी यहाँ न रहें । हे म्रोकानुम्रोको ! जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें यहाँ भेजा है अथवा तुम हमारे जिस विरोधी के पास रहते हो, उन्हीं शत्रुओं के मांस का भक्षण करो ॥३॥ हे सर्प, हे अनुसर्प ! तुम्हारे द्वारा प्रेषित यातना, राक्षस और हिंसात्मक आयुध मेरे पास से लौट जांय । तुम्हारे किमीदन आदि अनुचर भी यहाँ न रहें । हे राक्षसो ! जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें यहाँ भेजा है । अथवा तुम हमारे जिस विरोधी के पास

रहते हो, उन्हीं शत्रुओं के मांस का भक्षण करो ॥४॥ हे जूर्णि राक्षसी ! तू देह को जीर्ण करने वाली है। तेरे द्वारा प्रेरित अलक्ष्मी रूप यातनायें, राक्षसियां और हिंसात्मक आयुध मेरे पास से चले जांय। तुम्हारी किमीदिनी आदि अनुचरी भी मेरे पास न रहें। हे सदल जूर्णियो ! जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें हमारे पास भेजा है अथवा तुम हमारे जिस शत्रु के पास रहती हो, उन्हीं शत्रुओं का भक्षण करो। उन्हीं के मांस खाओ ॥५॥ हे उपाब्द राक्षसी ! तू कर्कश शब्द वाली और क्रूरकर्मा है। तेरे द्वारा प्रेरित अलक्ष्मी करने वाली यातनायें, राक्षसियां और हिंसा के साधन रूप आयुध मेरे पास से लौट जायें। तुम्हारी किमीदिनी आदि अनुचरी भी यहां न रहें। सदल-बल उपाब्द राक्षसियों ! जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें हमारे पास भेजा है अथवा तुम हमारे जिस शत्रु के पास रहती हो, उन्हीं शत्रुओं का भक्षण करो।६। हे अर्जुनि नाम्नी राक्षसी ! तुम्हारे द्वारा प्रेरित यातनायें, राक्षसियो और हिंसा के साधन रूप आयुध मेरे पास से लौट जायें। तुम्हारी किमीदिनी आदि अनुचरी भी यहां न रहें। हे सदलबल अर्जुनि राक्षसियो ! जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें हमारे पास भेजा है अथवा तुम हमारे जिस विरोधी के पास रहती हो, उन्हीं शत्रुओं के मांस का भक्षण करो ॥७॥ हे भरूजी नाम्नी राक्षसी ! तुम्हारे द्वारा प्रेरित अलक्ष्मी वाली यातनायें हिंसा-साधन आयुध और किमीदिनी आदि अनुचरियां मेरे पास से लौट जांय। हे सदलबल भरूजियो ! जिस प्रयोक्ता ने तुम्हें हमारे पास भेजा है अथवा तुम हमारे जिस विरोधी के पास रहती हो उन्हीं शत्रुओं के मांस का भक्षण करो॥८॥

२५ सूक्त

(ऋषि—चातन। देवता—पृश्निपर्णी। छन्द—अनुष्टुप्)

शन्नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१॥
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्य जायत।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥२॥

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३॥

गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४॥

पराच एनान् प्रणुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥५॥

यह पृश्निपर्णी (पिठवन) नाम की औषधि कुष्ठ आदि को शान्त करके हमको सुख देने वाली हो। मैं इस रोग को नष्ट करने वाली औषधि का (खाने, लगाने द्वारा) सेवन करता हूँ। यह औषधि प्रचंड बल धारण करती हुई पाप का नाश करती है, वह निर्ऋति राक्षसी को पीड़ित करे ॥१॥ यह पृश्निपर्णी (चित्रपर्णी, पिठवन) औषधियों में प्रथम उत्पन्न हुई है। यह दाद, खाजन, विसर्पक कुष्ठ आदि मुख्य रोगों को दवाने का मुख्य साधन है। मैं इसके लेप द्वारा उक्त रोगों को पक्षियों के सिर के समान समूल नष्ट करता हूं ॥२॥ हे पृश्निपर्णी ! शरीर के शुद्ध रक्त को चूस लेने वाले कुष्ठ आदि रोग रूप शत्रु का तथा शरीर-वृद्धि को रोकने वाली व्याधियों का नाश कर। तू गर्भ नष्ट करने वाले रोग को अथवा गर्भ न रहने देने वाले रोगों का भी नाश कर ॥ ३ ॥ हे पृश्निपर्णी ! यह कुष्ठ आदि रोग प्राणों को भ्रम में डालने वाले हैं। इन रोगों के कारणरूप पाप को सर्पादि को भस्म करने वाले दावानल के समान, पर्वत पर ले जाकर भस्म कर ॥४॥ हे पृश्निपर्णी ! सूर्योदय होने पर देश में अन्धकार रहता है, उस अन्धकार युक्त स्थान में धातुओं के भक्षक कुष्ठादि को भेजता हूँ। तू अपने लेप द्वारा, प्राणों को भ्रम में डालने वाले इन पाप-रोगों को उल्टा मुख कर भेज दे ॥५॥

२६ सूक्त

(ऋषि–सविता। देवता–पाशवः। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१॥
इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥२॥
सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः ।
सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
सं सिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥४॥
आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम् ।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥५॥

जो पशु यहाँ से लौट गये, वे पुनः इस गोष्ठ में आवें। जिन पशुओं की रक्षा के लिये वायु साथ रहता है और जिन गर्भ को प्राप्त पशुओं के नाम और रूपों को त्वष्टा नियत करता है सूर्य उन सब पशुओं को इस गोष्ठ में स्थित करें ॥१॥ गौओं को लाने की विधि से ज्ञाता बृहस्पति गौओं को गोष्ठ में प्रेरित करें। गवादि पशु मेरी गोष्ठ में आवें। सिनी-वाली और अभाभिमानी देवता ! इन पशुओं को लाकर गोष्ठ में रखो॥२॥ गौ, अश्वादि भले प्रकार आवें। सेवक, धान, जौ आदि भी समृद्धि सहित प्राप्त हो। मैं अपने इच्छित फल की सिद्धि के लिये घृताहुति देता हूँ ॥३॥ गौएँ मुझ स्वामी के पास रहें। हमारे पुत्र घृतादि से पुष्ट हों। मैं पहलौन गौ के दूध को सींचता हूँ। अन्न, जल और रस को घृत से सींचता हूँ॥४॥ इस प्रकार गो-दुग्ध, धान्य और रसादि को अपने घर में लाता हूं। अपनी पत्नी, पुत्रादि को भी घर में ला रहा हूं। ५॥

२७ सूक्त (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—कपिञ्जलः। देवता—ओषधिः रुद्रः इन्द्रः। छन्द—अनुष्टुप्)

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥१॥

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२॥

इन्द्रो हि चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्वरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥३॥

पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥४॥

तयाहं शत्रून्त्साक्षे इन्द्रः सालावृकाँइव ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥५॥

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखंड कर्मकृत् ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥६॥

तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥७॥

हे पाठा नाम्नी औषधे ! जो मेरे शत्रु हैं, वे मुझे, तुझे सेवन करने वाले को जीतने में समर्थ न हों । तू शत्रुओं से टक्कर लेकर उन्हें वश करती है । वाद विवाद मे मुझ वादी के प्रश्न करने पर प्रतिवादी को पराभूत कर । तू वात, पित्तादि दोषों को शमन करने वाली है । भिषक् की अनुमति से जिसे पीते हैं, ऐसी हे पाठा ! तू प्रतिवादियों को शुष्क कंठ वाले और असम्बद्ध बचन वाले बना ॥ १ ॥ हे औषधे ! गरुड़ ने विष-नाश के लिये खोजा था । तू मेरे प्रतिवादियों का पराभव कर । उन्हें शुष्क कंठवाले और असम्बद्ध वाक्य वाले बना॥२॥हे औषधे ! तुझे इन्द्र ने असुर-नाश के लिए अपनी दाँयी भुजा पर धारण किया था, वैसे ही मैं भी धारण करता हूं । तू मेरे प्रतिवादियों को बाद में पराभूत कर । उनके कण्ठों को सुखा दे जिससे वे असम्बद्ध वाक्य वाले हो जाँय॥३॥हे पाठे तुझे इन्द्र ने राक्षसों पर विजय-लाभ के लिये खाया था । तू मुझ सेवन

करने वाले को लक्ष्य में रखकर प्रतिवादी को हरा और उनके कण्ठों को सुखाकर असंगत वाक्य वाले कर ॥४॥ हे औषधे ! जैसे तेरे सेवन से इन्द्र ने राक्षसों को निरुत्तर कर दिया था। वैसे ही तेरा सेवन कर मैं भी प्रतिवादियों को निरुत्तर करता हूं। तू मेरे प्रतिवादी शत्रुओं को पराभूत कर और उनके गलों को शुष्क करदे। वे असम्बद्ध उच्चारण वाले बनें ॥५॥ हे रुद्र ! तुम स्मरण मात्र से जल को औषध बनाते हो। तुम नील वर्ण शिखा वाले और सृष्टि आदि पंचकर्मों के करने वाले हो। मेरे द्वारा सेवन की गई इस पाठा को प्रतिवादियों को तिरस्कृत करने की शक्ति दो। हे औषधे ! तू मेरे प्रतिवादियों को पराभूत कर। वे शुष्क कण्ठ वाले तथा असम्बद्ध वाक्योच्चारण वाले हों ॥६॥ हे इन्द्र ! जिसके तर्कों से हम क्षीण हो रहे हैं उस प्रतिवादी को प्रश्नहीन करो। हमको अपनी शक्ति से तर्क में प्रबल करो ॥७॥

२८ सूक्त

(ऋषि—शम्भू। देवता—जरिमा आयुः प्रभृति। छन्द—जगती त्रिष्टुप्,)

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥१॥
मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति॥२॥
त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३॥
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥४॥
इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन्।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥५॥

हे अग्ने ! तुम्हारी सेवा के लिए ही यह बालक रोग से छूट कर बढ़ता रहे। हे वृद्धावस्थे ! तेरी प्राप्ति तक यह बालक प्रवृद्ध हो। रोग रूप

पिशाचादि इसका अनिष्ट न कर पावें। जैसे माता पुत्र की रक्षा करती है, वैसे ही मित्र देवता, मित्र-द्रोह के पाप से इस बालक की रक्षा करें ॥१॥ दिवसाभिमानी देव मित्र और राज्याभिमानी वरुण समान मति से इस बालक को वृद्धावस्था प्राप्त करने वाला करें। देवाह्वाक अग्नि देवताओं से इसके दीर्घ जीवन की प्रार्थना करें ॥२॥ हे अग्ने ! तुम पार्थिव प्राणियों के स्वामी हो। उत्पन्न हुये और उत्पन्न होने वाले, इनके भी स्वामी हो। इस बालक के प्राणापान तुम्हारी कृपा से इसका त्याग न करें। मित्र और शत्रु भी इसकी हिंसा न करें ॥३॥ हे बालक ! तू पृथिवी के अङ्क में प्राणापान से युक्त हुआ सौ हेमन्त ऋतुओं तक जीवित रहे। पिता रूप आकाश और माता रूप पृथिवी तुझे वृद्धावस्था में मरने वाला करें ॥४॥ हे अग्ने ! इस बालक को तेज प्रदान कर सौ वर्ष तक जीने वाला करो। हे मित्रावरुण ! इस बालक को संतानदाता वीर्य दो। हे विश्वेदेवाओ ! इस बालक को सर्व गुण सम्पन्न और दीर्घजीवी करो। हे माता अदिति ! तुम इसे माता के समान सुख देने वाली होओ ॥५॥

२९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता-अग्निः, सूर्य प्रभृति। छन्द-अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो बले।
आयुष्य मस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१॥
आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥
आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥३॥
इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्राहितो न आगन्।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥४॥
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम्।

ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५॥
शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदाषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥६॥

इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन्॥७॥

पार्थिव रसों का पान करने वाले पुरुष को भग देवता के तेज से इन्द्रादि देवता सम्पन्न करें, अग्नि इसे शतायुष्य करें, सूर्य इसे तेज दें और बृहस्पति इसे वेदाध्ययन की बुद्धि दें ॥१॥ हे अग्ने ! इसे सौ वर्ष की आयु दो। हे त्वष्टा ! इसे संतान दो। हे सूर्य ! इसे गवादि धन से सम्पन्न करो। तुम्हारी कृपा से यह शतायुष्य हो ॥२॥ हे आकाश पृथिवी ! हमारी याचना सत्य हो। हमको इच्छित धन, अन्न, बल और संतान दो ! पूतभृत् में छिड़का जाने वाला आशीर हमको अन्न-संतान वाला करे। हे इन्द्र ! यह तुम्हारे बल से शत्रुओं पर विजय पावे और उनके घर आदि को भी अपने अधिकार में करे ॥३॥ इन्द्र से आयु प्राप्त कर, वरुण से बल पाकर, मरुतों द्वारा प्रेरित यह पुरुष हम में आगया। हे आकाश-पृथिवी तुम्हारे अंक में रह कर यह भूख और तृषा से पीड़ित न हो ॥४॥ हे आकाश पृथिवी ! इस पुरुष को अन्न और जल दो। तुमने इसे याचित अन्नादि प्रदान किया है और विश्वेदेवा मरुतों और जलों ने भी इसमें बल भर दिया है ॥५॥ हे प्यासे पुरुष ! मैं तुझे सुखदायक जल से तृप्त करता हूं। तू सुन्दर दीप्ति वाला और आनन्दमय हो। एक वस्त्र वाला यह रोगी अश्विद्वय के भेषज् रूप मन्थ को पान करे ॥६॥ इन्द्र ने तृषा की निवृत्ति के लिये इस मंथ को बनाया था। हे रोगिन् ! जो मन्थ तुझे दिया है उसके द्वारा बल और तेज से युक्त होकर शतायुष्य हो। यह मंथ तेरे शरीर से पृथक न हो ॥७॥

३० सूक्त

(ऋषि-प्रजापतिः। देवता-मनः अश्विनौ ओषधि, दम्पती। छन्द-पंक्तिः अनुष्टुप्)

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१
सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥२॥
यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्यइव कुल्मलं यथा ॥३॥
यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥४॥
एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ॥५॥

हे पत्नी! जैसे वायु के फेर में पड़ा हुआ तृण चक्कर काटता हुआ घूमता है, वैसे ही मैं तेरे मन को हिलाता हूँ। जिससे तू मेरी इच्छा करने वाली हो और मुझ से दूर न हो ॥१॥ हे अश्विद्वय! मैं जिसकी कामना करता हूं उसे प्राप्त करके मेरे पास पहुँचाओ। तुम दोनों के मन मेरी ओर हो जाय ॥२॥ सुन्दर पक्षी के आकर्षक स्वर और स्वस्थ पुरुष के प्रभाव-युक्त वाक्य के समान मेरा वह आह्वान बाण के समान लक्ष्य पर पहुंचे॥३॥ भीतर बाहर से एक से विचार वाली, निर्दोष अङ्ग वाली कन्याओं के चित्त को ग्रहण करने में समर्थ हे ओषधे! तू उनके मन को ग्रहण कर ॥४॥ यह इच्छित स्त्री पति की कामना से मेरे पास आ गई। मैं भी उसकी कामना करता हुआ उसे प्राप्त हो गया। मैं धन के साथ इसके पास आया हूँ जैसे श्रेष्ठ अश्व अपनी मादा के पास जाता है ॥५॥

३१ सूक्त

(ऋषि-काण्वः। देवता-मही, क्रिमिजम्भनम्। छन्द-अनुष्टुप्, बृहती)

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।

तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँइव ॥१॥
दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् ।
अल्गण्डून्त्सर्वाञ् छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥२॥
अल्गण्डून् हन्मि महता वधेनदूना अदूना अरसा अभूवन ।
शिष्टनशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ॥३॥
अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अधस्क्रवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥४॥
ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ये अस्माकं तन्व माविविशुः सर्वं तद्धिन्मि जनिम क्रिमीणाम् ॥५॥

कृमियों का नाश करने वाली इन्द्र की जो शिला है, उसके द्वारा मैं चक्की से चनों के पीसने के समान सब कृमियों को पीसता हूं ॥१॥ मैं दृश्य अदृश्य देहगत कृमियों को नष्ट करता हूँ। जाल के समान, रक्त मांस को दूषित करने वाले तथा अन्य सब प्रकार के कृमियों का नाश करता हूँ ॥२॥ मैं उन कृमियों को मंत्र और औषधि से नष्ट करता हूं। सब कृमि सूख कर निर्जीव हों। इन सब कृमियों को मैं मंत्र बल से समाप्त करता हूं ॥३॥ आँतों के, शिर के, पसलियों के तथा अन्य हर प्रकार के कीड़ों को हम मंत्र बल से नष्ट करते हैं ॥४॥ पर्वत, वन, औषधि, पशु आदि के जो कृमि व्रण और मुख द्वारा खान-पान के माध्यम से देह में घुस गये हैं, मैं उन सब की पुष्टि को रोकता हुआ नष्ट करता हूँ ॥५॥

३२ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—काण्वः। देवता—आदित्यः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१॥
विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारंगमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥२॥

अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥३॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥४॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५॥
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥६॥

उदय होते हुये सूर्य गौओं के शरीर में प्रविष्ट हुये कृमियों को अपनी रश्मियों से नष्ट करें ॥१॥ चितकवरे, चार नेत्र वाले, श्वेतादि अनेक वर्ण और आकार वाले कृमिमों को उनके देह सहित नष्ट करता हूं ॥२॥ हे कृमियो ! अत्रि, कण्व और जमदग्नि के मंत्रों से मैं तुम्हें नष्ट करता हूं । महर्षि अगस्त्य के पुनरुत्पत्ति न होने देने वाले मंत्र से कीड़ों को नष्ट करता हूँ ॥३॥ कृमियों का राजा, मंत्री अपने माता, भ्रातादि सहित मारा गया इस मंत्र के प्रभाव से कृमियों का वंश ही नष्ट हो गया ॥४॥ इन कृमियों के स्थान नष्ट हो गये । इनके घर भी नष्ट हो गये । बीज रूपी सूक्ष्म कीट भी नष्ट हो गये ॥५॥ हे सींगयुक्त कीट ! तेरे पीड़ाप्रद सींग को काटता हूं, तेरे कुषुम्भ को तोड़ता हूं । तेरे । विषयुक्त अवयव को पृथक् करता हूँ ॥६॥

३३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—यक्ष्मविवर्हणम् । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती, पंक्तिः)

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यमस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य मंसाभ्यां वाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्याम् प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥३॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्याम् प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥४॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥५॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामंगुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥६॥
अंगेअंगे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥७॥

हे क्षय ग्रस्त मनुष्य ! तेरे नेत्र कान, नाक, चिबुक और जीभ से यक्ष्मा रोग को पृथक् करता हूं ॥१॥ हे रोगिन् ! तेरी ग्रीवा की चौदह नाड़ियों से, उष्णिह नाम की नाड़ियों से, कंठ और वक्ष की नाड़ियों से, अनूक्य से, कंधे और भुजाओं से तेरे यक्ष्मा रोग को पृथक् करता हूं ॥२॥ हे रोगी पुरुष ! तेरे हृदय, क्लोम, हलीक्ष्ण, पार्श्व, उदर, प्लीहा, यकृत आदि से यक्ष्मा को हटाता हूं ॥३॥ तेरी आँतों से, उदर से, कुक्षियों से, प्लाशि से और नाभि से यक्ष्मा रोग को हटाता हूँ ॥४॥ तेरी जांघों से, पांवों के ऊपर के तथा आगे के भाग से, कटि से, कटि के नीचे से और गुह्य प्रदेश से यक्ष्मा रोग को दूर करता हूं ॥५॥ तेरी अस्थि, मज्जा, सूक्ष्म-स्थूल नाड़ी, उंगली और नख आदि से यक्ष्मा रोग को हटाता हूं ॥६॥ हे रोगिन् ! तेरे अन्य सभी अङ्गों से रोम कूपों से, जोड़ों से, त्वचा आदि से महर्षि कश्यप के के इस विवर्ह मंत्र के बल यक्ष्मा रोग को हटाते हैं ॥७॥

३४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—पशुपतिः प्रभृति । छन्द—त्रिष्टुप्)

यं ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।

निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥१॥
प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥२॥
ये वध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥३॥
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥४॥
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवया नैः ॥५॥

जो पशुपति (अर्थात् ईश्वर) दुपाये और चौपायों का स्वामी है, वह पूर्ण रूप से ज्ञात हुआ यज्ञ को प्राप्त होवे। उसकी कृपा से यज्ञ करने वालों को धन और बल प्राप्त हो ॥१॥ हे देवो! संसार के सार उपदेश का दान करते हुये इस यज्ञ करने वाले को सन्मार्ग दिखलाओ। जो सोम रूप सुसंस्कृत देवों का प्रिय अन्न है वह हमें प्राप्त हो ॥२॥ जो प्रकाशमान जीव इस बँधे जीव को मन से और आँख से देखते हैं, उनको वह विश्वकर्ता सब से पहले मुक्त करे ॥३॥ ग्राम के जो विविध रूप रंग वाले पशु, भिन्नता होने पर भी एक से दिखलाई पड़ते हैं, उनको भी प्रजाओं के साथ रहने वाला प्राणदेव (ईश्वर) पहले मुक्त करे ॥४॥ विशेष जानकारी रखने वाले ज्ञानी चारों स्थानों में भ्रमण करने वाले प्राण को सब अङ्गों से एकत्रित करके स्वस्थ जीवन व्यतीत करते हैं और फिर दिव्यमार्ग से सीधे स्वर्ग को जाते हैं और प्रकाशमय स्थान को प्राप्त होते हैं ॥५॥

३५ सूक्त

(ऋषि–अंगिराः । देवता–विश्वकर्मा । छन्द–त्रिष्टुप्)

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।

या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥१॥
यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥२॥
अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः ।
यदेनश्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥३॥
घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् ।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान् ॥४॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥

यज्ञ-कार्य से अन्यत्र धन-व्यय करने के कारण हम असमृद्ध रह गए। इसलिये आह्वानीय अग्नि हमारे प्रति शोक करते हैं। इस प्रकार हम अयष्टा और दुर्यष्टा है। हमारी सुन्दर यज्ञ करने की इच्छा को विश्वकर्ता पूर्ण करें ॥१॥ अतीन्द्रिय ऋषि यागवैकल्प वाले पाप से स्वयं भी अनुताप करते हुये यजमान को पापी बताते हैं। जिन प्रजापति ने सोम की बूंदों को अन्तरित किया है, वे प्रजापति उन बूंदों से हमारे यज्ञ को सम्पन्न करें ॥२॥ रणक्षेत्र को प्राप्त योद्धा अन्य योद्धाओं के रूप को जानता हुआ उन्हें तुच्छ समझता है, वैसे ही मैं इस यज्ञ के रूप को जानता हूं। विद्या के मद से अन्य विद्वानों को तुच्छ कर उनके तिरस्कार का पाप किया है, उस पाप से हे प्रजापते! मुझे मुक्त करो ॥३॥ चक्षु आदि प्राण रूप ऋषियों में यथार्थ देखने वाले चक्षु को नमस्कार है। देवताओं के पालक बृहस्पति को और हे प्रजापते! तुमको भी नमस्कार है। तुम क्रूर दृष्टि से उत्पन्न पाप को हटा कर हमारे रक्षक होओ ॥४॥ यज्ञ को यह अग्नि चक्षु के समान दिखाते हैं। सभी यज्ञ अग्नि द्वारा ही किये जाते हैं। देवताओं से पहिले इनका पूजन किया जाने से यह मुख्य हैं। ऐसे अग्नि देव को मैं घृताहुति देता हूं। इस प्रजापति द्वारा अनुष्ठीयमान यज्ञ में इन्द्रादि देवता अपनी कृपापूर्ण बुद्धि सहित आगमन करें ॥५॥

३६ सूक्त

(ऋषि—पतिवेदनः। देवता—अग्निः प्रभृति। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सह नो भगेन।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभागमस्त्वस्यै ॥१॥
सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम्।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥२॥
इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा विराजतु ॥३॥
यथाखरो मघवश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी सम्प्रिया पत्याविराधयन्ती ॥४॥
भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम्।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ॥५॥
आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृण।
सर्वंप्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ॥६॥
इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥७॥
आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः।
त्वमस्यै धेह्योषधे ॥८॥

हे अग्ने ! कन्या को ग्रहण करने की इच्छा वाला सुन्दर वर हमारे दृष्टिगत हो या जो वर हमको पहिले निराश कर चुका है, वह इस कन्या को प्राप्त करने की अभिलाषा सहित आकर अपने ऐश्वर्य सहित इस कन्या को प्राप्त हो। फिर आगत बरातियों को कन्या का वरण सुन्दर लगे और यह कन्या पति के साथ सौभाग्यवती हो ॥१॥ सोम, गंधर्व और अर्यमा नामक विवाहाग्नि से स्वीकृत कुमारिका रूप धन को धाता देवता की आज्ञा से मनुष्य रूप पति को प्राप्त करने वाली बनाता हूं ॥२॥ यह कन्या पति को प्राप्त हो, सोम इसे सौभाग्यवती बनावें, यह पति को प्राप्त कर तेज-

स्विनी हो और पुत्र को उत्पन्न करने वाली श्रेष्ठ जाया बने ॥३॥ सुन्दर स्थान जैसे मृगों को प्रिय होता है और वे वहाँ सुख से रहते हैं वैसे ही यह स्त्री पति के साथ प्रसन्नता से रहती हुई भाग्यवती बने ॥४॥ हे कन्ये ! अभि-लषित फलों से लदी हुई नौका पर आरोहण कर और इसके द्वारा अपने इच्छित पति को प्राप्त हो। जो वर तेरी इच्छा करे उसके पास अपने को पहुँचा ॥५॥ हे वरुण ! वर को इस कन्या के सामने बुला कर उसके मन को इसकी ओर प्रेरित करो और उसे विवाह के अनुकूल व्यापार वाला करो। उससे यह कहलवाओ कि यह कन्या मेरी पत्नी हो ॥६॥ हे कन्ये यह स्वर्णाभूषण, यह लेप-द्रव्य औषध और अलंकारादि के अधिष्ठाता देवता भग (सूर्य) यह सब तुझे सोम, गन्धर्व, अग्नि नामक राक्षसों से युक्त मनुष्य पति प्राप्त करने के लिये देते हैं।७। हे व्रीहि आदि औषधे ! इस कन्या को पति दो। हे कन्ये ! सूर्य वर को तेरे पास लावें। नियत वर तेरा पाणि-ग्रहण कर तुझे घर ले जाय ॥८॥

॥ इति द्वितीय काण्डं समाप्तम् ॥

तृतीय काण्ड

---:o:---

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः मरुतः इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान्।२।

अमित्रसेनां मघवन्नास्मान्छत्रू यतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३॥
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ।४।
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो विनाशय ॥५॥
इन्द्र सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

यह अग्निदेव सेनाध्यक्ष के सहयोग से, नाश के निमित्त उद्यत शत्रु सेना मन को व्याकुल करते हुये उसे शस्त्रास्त्र उठाने में असमर्थ बनावें। यह अग्नि देवासुर युद्ध में देव सेना को आगे ले जाने वाले हैं, यह बैरियों के अङ्गों को भस्म करते हुये आगे बढ़ें ॥१॥ हे मरुतो ! तुम युद्ध में मेरी सहायता के लिये समीप रहो और पशुओं पर प्रहार करो। वसु देवता भी हमारे द्वारा निवेदन करने पर पशु-नाश में प्रवृत्त हों। वसुओं में प्रधान अग्नि भी शत्रु की ओर अग्रसर हों ॥२॥ हे इन्द्र ! हम निरपराधों के प्रति शत्रु के समान व्यवहार करने वाली आक्रमणकारी सेना के सामने जाओ। तुम और अग्नि दोनों ही शत्रु सेना के लिये प्रतिकूल होकर उन्हें भस्म कर-दो ॥३॥ हे इन्द्र ! आप शत्रु सेना के मध्य में पहुंच कर अपने वज्र द्वारा उनका घोर रूप से संहार कीजिये। सामने की तरफ से. पीछे की तरफ से आते हुये और भागते हुये सब शत्रुओं को नष्ट कर डालिये। इस अवसर पर शत्रु को पराजित करने के सिवाय और किसी बात का विचार मत कीजिये ॥४॥ हे इन्द्र ! शत्रु सेना को विमूढ़ बना दो। अग्नि और वायु के योग से भस्म करने की जो विकराल गति होती है, उसके द्वारा तुम शत्रु को पराङ्मुख करते हुये बिनष्ट करो ॥५॥ हे देवताओं के अधिपति ! शत्रु सेना को किंकर्तव्यविमूढ़ बना दो और अपने मित्र मरुद्गण से उसे नष्ट

करा दो। अग्निदेव शत्रुओं के नेत्रों को विकृत कर दें। इस प्रकार सब तरह से पराजित होकर शत्रु सेना वापस चली जाय ॥६॥

२ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–अग्निः, इन्द्रादि। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥
अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥
इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्य तान् विषूचो विनाशय ॥३॥
व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत।
अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥४॥
अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥५॥
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥६॥

देवदूत के समान अग्रगण्य अग्नि शत्रुओं को भस्म करें, उनके मनों में मोह उत्पन्न करें और उन्हें शस्त्रास्त्र ग्रहण की सामर्थ्य से हीन कर डालें ॥१॥ हे शत्रुओ! तुम हमको दबाने का जो विचार किये हुये हो, उन विचारों को यह अग्नि भ्रमित करें और तुम्हें स्थान से च्युत कर दें ॥२॥ हे इन्द्र! शत्रुओं के मन भ्रमाते हुए तुम उसकी सेना के सामने विचरण करो। और अग्नि-वायु के योग से जो प्रचण्ड दहन गति होती है, उसके द्वारा शत्रुओं को नष्ट करो ॥३॥ हे शत्रुओं के मनों! तुम भ्रमित होओ, हे शत्रु-संकल्पो! तुम विरुद्ध बनो। हे देवगण! तुम इनके मन को मोह-ग्रस्त करो। हे इन्द्र! युद्ध के लिए तैयार शत्रुओं के उत्साह को तुम नष्ट कर दो ॥४॥

हे सुख नष्ट करने वाली "अप्वा" नाम की पापदेवी ! हमारे शत्रुओं के मनों को भ्रमपूर्ण करती हुई तू उनके शरीर में रम। तू शत्रुओं की ओर जाकर उनकी मति भ्रष्ट कर, भय शोकादि से पूर्ण करती हुई उन्हें मोह रूप पिशाचों के द्वारा नष्ट कर दे ॥५॥ हे मरुतो ! अपने बल के अंहकार में हम से स्पर्द्धा करती हुई यह शत्रु सेना हमारी ओर बढ़ रही है, इसे अपनी माया से नष्ट कर दो। इनमें से किसी व्यक्ति को अपने के सिवा अन्य किसी का ज्ञान न रहे ॥६॥

३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-अग्न्यादयो मंत्रोक्ताः। छन्द-त्रिष्टुप् पंक्ति, अनुष्टुप्)

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी ऊरुची।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥१॥
दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम्।
यद् गायत्रीं बृहती मर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥२॥
अद्भयस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥३॥
श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम्।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥४॥
ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥५॥
यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥६॥

हे अग्ने ! यह राजा अपने राज्य से पतित हुआ, पुनः राज्य पाने के निमित्त तुम्हारा आह्वान करता है। प्रजापालक राजा तुम्हारी कृपा से पूर्ण हो। तुम इसके निमित्त द्यावापृथिवी में व्याप्त होओ, इस कार्य में उन्चास मरुद्गण तुम्हारी सहायता करें। तुम इस राजा को फिर राज्य दिलाओ ॥१॥ हे ऋत्विजो ! देवराज इन्द्र को इस राजा

की सहायता के निमित्त आहुत करो। देवगण ने इन इन्द्र को गायत्री छन्द, वृहतीछन्द और वृहद्उक्थ से परम पराक्रमी बना दिया है। अतः उन इन्द्र को ही यहाँ लाओ ॥२॥ हे राजन्! तेरा राज्य दूसरों ने छीन लिया है, उस राज्य में स्थित करने के लिये वरुण जल से सोम, अपने आश्रय स्थान पर्वत से और इन्द्र तुझे तेरी प्रजाओं के द्वारा आमंत्रित करें। इसके पश्चात् तू बाज की-सी द्रुतगति से आता हुआ, शत्रुओं द्वारा अपराजित होकर अपनी पूर्व प्रजाओं में सुशोभित हो ॥३॥ स्वर्ग के निवासी देवता, तुझे दूसरे के आश्रय में पड़े हुए को अपने देश में पहुँचावें। हे राजन्! तेरे आने के मार्ग को अश्विनी कुमार शत्रु-शून्य करें। हे बन्धुओ! इस पुनः प्राप्त राजा से भेंट कर तुम इसकी सेवा करने वाले होओ ॥४॥ हे राजन्! तुम से प्रतिकूल रहने वाले, अब अनुकूल हो जायें और तुम स्नेह करते हुए आज्ञानुवर्ती हो। इन्द्र, अग्नि और विश्वदेवा प्रजापालन की शक्ति तुम में उत्पन्न करें ॥५॥ हे राजन्! तेरे पुनः राज्य प्रवेश से जो समान बली, उच्च बल या कर्म बल वाला व्यक्ति सहमत न हो, उस शत्रु को हे इन्द्र! तुम बहिष्कृत करो और इस राजा के राज्य की घोषणा करो ॥६॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता–इन्द्रः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ्विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥
त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२॥
अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु वहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३॥
अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो विभ जा वसूनि ॥४॥

आ प्र द्रव परमस्याःपरावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥५॥
इन्द्रेन्द्र मनुष्याः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः ।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ।६।
पथ्या रेवती र्बहुधा विरूपाः सर्वाः सङ्गत्य वरीयस्ते अक्रन्
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥७॥

हे राजन् शत्रुओं द्वारा अपहृत तुम्हारा राज्य तुम्हें फिर मिल गया । तुम प्रजा-पालक और शत्रु-रहित होते हुए शोभित होओ । सब दिशाओं के गौरवशील देवता और सब दिशाओं में निवास करने वाले सब मनुष्य तुम्हें अपना स्वामी समझें और तुम उनके अभिवादन को प्राप्त होओ ।१। हे राजन् ! यह श्रेष्ठ दिशाऐं तुम्हारे लिए शुभ हों, तुम अपने देश के उच्च सिंहासन पर विराजमान होओ और फिर हम सेवकों को यथायोग्य धन प्रदान करो । तुम्हारी प्रजा तुम्हें राज्य-कर्म के निमित्त वरण करती हुई तुम्हारे शासन में रहे ॥२॥ हे राजन् ! तुम्हारे अन्य सजातीय राजा तुम्हारे बुलाने पर सामने आवें । तुम्हारा दूत अग्नि के समान अपृधष्य रूप से विचरण करने वाला हो । तुम्हारे स्त्री पुत्रादि सब पुनः राज्य-प्राप्ति से सम्पन्न होते हुये प्राप्त भेटों से सन्तुष्ट हों ॥३॥ हे राजन् ! अश्विनी कुमार मित्रा, मित्रावरुण, और मरुद्गण तुम्हें राज्य में प्रविष्ट करें । फिर तुम अपने मन को दान में लगाओ और अत्यन्त पराक्रम से सम्पन्न होओ ॥४॥ हे राजन् ! यदि तुम दूर देश में होओ तो भी शीघ्रता से अपने देश में आओ । तुम्हारे राष्ट्र प्रवेश के समय आकाश-पृथिवी मंगलकारिणी हों । यह वरुण तुम्हें बुलाते हैं तुम अपने राज्य में आगमन करो ॥५॥ हे इन्द्र ! मनुष्यों के पास आओ । तुमने वरुण की सहमति से इस राजा को बुलाने की आज्ञा दी है इसलिए यहाँ आओ । हे राजन् ! इन्द्र तुम्हें बुलाते हैं अतः अपने राज्य में आओ और इन्द्र आदि का यज्ञ करते हुये प्रजाओं को अपने-अपने कार्य में लगाओ ॥६॥ हे राजन यह

सब प्रकार के बल देवता तुम्हारा कल्याण-साधन करें। यह सब देवता तुम्हें राष्ट्र में आने के लिये बुलावें। तुम अपनी सौ वर्ष की आयु तक राज्य सुख को भोगने वाले होओ ॥७॥

५ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–सोम, पर्णमणिः। छन्द त्रिष्टुप् अनुष्टप्)

आयमगन् पर्ण मणिर्वली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्।
ओजो देवानां पय ओशधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥
मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम्।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥२॥
यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम्।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥३॥
सोमस्य पर्णः सहउग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥
आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५॥
ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥६॥
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥७॥
पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेणमया।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥८॥

अपने बल से शत्रुओं को नष्ट करने वाली सब औषधियों की सार-भूत पलाश-मणि मुझे प्राप्त हो और अपने तेज से मुझे तेजवत बनावे ॥१॥ हे पलाश से निर्मित मणि, मुझ में धन और बल को स्थित कर जिससे अपने राज्य को स्वाधीन करने में दूसरों का मुख ताकने वाला न होऊँ ॥२॥ इन्द्र आदि देवों ने इच्छित फलदायिनी होने के कारण

इस गोपनीय मणि को पलाश में स्थित किया। देवगण उस मणि को हमारे भरण-पोषण और आयुवर्द्धन के निमित्त हमें प्रदान करें ॥३॥ सोम की मणि दूसरे को तिरस्कृत करने में समर्थ है, अतः मुझे प्राप्त हो। इन्द्र द्वारा प्रदत्त और वरुण द्वारा अनुशिष्ट उस सोम के पर्ण की मणि को मैं शतायुष्य होने के निमित्त ग्रहण करता हूं ॥४॥ यह पर्णमणि चिरकाल तक मेरे पास रहती हुई मेरे लिये कल्याणजनक हो। मैं शत्रु-मर्दक अत्यन्त बली अर्यमा की कृपा से अपने समान बल वाले से श्रेष्ठ होने के निमित्त इसे अपने हाथ पर धारण किये रहूं ॥५॥ धीवर, रथकार लोहार आदि कर्मकारों तथा बुद्धिजीवी विद्वानों को हे पलाश निर्मित मणे! मेरे आधीन कर ॥६॥ राजा का अभिषेक करने वाले मंत्री, अन्य देश के राजगण, ब्राह्मण द्वारा क्षत्रियों में उत्पन्न सारथि और ग्राम नेता, इन सबको हे मणे! तू मेरी सेवा में तत्पर कर ॥७॥ हे मणि! तू सोम के पर्ण का विकार रूप है, इसलिए देह की रक्षक है। तू मेरी वीर्यवान् मेरी समानजन्मा है। तू सूर्य के समान तेजस्विनी है। मैं तेज प्राप्त करने के निमित्त तुझे पहनता हूँ ॥८॥

६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—जगद् बीजं पुरुषः। देवता—अश्वत्थः। छन्द—अनुष्टुप्)

पुमान पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥१॥
तानश्वत्थ निः श्रृणीहि शत्रून् वैबाध दोधतः।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥२॥
यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥३॥
यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥४॥

मिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेषिम ये च माम् ॥५॥
यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्धि सहस्व च ॥६॥
तेऽधराञ्चः प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैबाध प्रणुत्त नां पुनरस्ति निवर्त्तनम् ॥७॥
प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥८॥

अत्यन्त वीर्य वाले "पुरुष-वृक्ष" पीपल और गायत्री सारोत्पन्न अत्यंत बली खदिर वृक्ष के संयोग से निर्मित "अश्वत्थमणि" धारण करने पर वह मेरे शत्रुओं का नाश करे ॥१॥ हे खदिरोत्पन्न पीपल से निर्मित मणे ! तेरा वृत्र नाशक इन्द्र और वरुण के साथ स्नेह है, तू शत्रुओं को पूर्णतया नष्ट कर ॥२॥ हे पीपल ! तू मणि का उपादान रूप है । तू जैसे खदिर की त्वचा को भेद कर उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार हमारे वैरियों को छेद डाल ॥३॥ जैसे पीपल अन्य वृक्षों को दबाता हुआ, बैल के समान वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही तेरी विकार रूप मणि को धारण करने वाले हम शत्रुओं को नष्ट करने में प्रवृद्ध हों ॥४॥ हे पीपल ! पाप देवी निर्ऋति मेरे वैरियों का किसी प्रकार भी न खुल सकने वाले बन्धनों में जकड़ ले ॥५॥ हे पीपल जैसे तुम वनस्पति वृक्षों पर चढ़ कर उन्हें नीचा करते जाते हो, वैसे ही मेरे शत्रुओं का सिर कुचलते हुए, उन्हें तिरस्कृत कर नाश को प्राप्त कराओ ॥६॥ जिन तट के वृक्षों से नौकाएँ बाँधी जाती हैं, उनसे खुलने पर नौका नदी के प्रवाह में नीचे की ओर खेई जाती है, वैसे ही मेरे शत्रु प्रवाह में रहें, पार न लग पावें । क्योंकि खदिर में उत्पन्न हुए पीपल के प्रवाह में ग्रस्त शत्रु फिर नहीं लौट सकता ॥७॥ मैं शत्रुओं का उच्चाटन करता हूँ और शत्रु का ध्वंस करने के साधन मंत्राभिमंत्रित पीपल की शाख से उनका

संहार करता हूं ॥८॥

७ सूक्त

(ऋषि–भृग्वंगिराः । देवता—हरिणः प्रभृति । छन्द—अनुष्टुप्)

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१॥
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३॥
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४॥
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्तवा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५॥
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६॥
अपवासे नक्षत्राणामपवास उपसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७॥

द्रुतगामी कृष्णमृग के शिर में जो रोग-नाशिनी सींग रूप औषधि है वह माता-पिता से प्राप्त क्षय, कुष्ठ, मृगी आदि रोगों को मिटावे ॥१॥ हे मृग शृंग ! तुझे क्षेत्रिय रोग नाशार्थ मणि रूप से धारण किया है । तू हृदयस्थ गुंथे हुए क्षेत्रिय रोग का शमन कर ॥२॥ यह चार कोने वाला हरिण चर्म परिच्छद के समान शोभित है, उसके द्वारा मैं तेरे अनेक प्रकार के क्षेत्रिय रोगों का नाश करता हूँ ॥३॥ माता-पिता से आये हुए क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि क्षेत्रिय रोगों को आकाश में स्थित विचृत नामक तारे, देह के विविध अंगों से पृथक् करें ॥४॥ जल ही भेषज है, जल ही समस्त रोगों का नाशक एवं औषधि रूप हैं । हे रोगिन् ! ऐसे

जल तुझे क्षेत्रिय रोगों से मुक्त कराने वाले हों ।।५।। हे रोगिन् ! अन्नादि के सेवन से जो कुष्ठ आदि रोग तेरे शरीर में उत्पन्न हो गए हैं, उसे दूर करने वाली जिस ओषधि को मैं जानता हूँ उसके द्वारा तेरे रोग को दूर करता है ।।६।। रोग आदि का कारणरूप पाप उषाकाल अथवा प्रातःकाल में किए हुए अभिषेक आदि से नष्ट हो फिर हमारा क्षेत्रिय रोग नष्ट हो जाय ।।७।।

८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता-मित्रादयो विश्वे देवाः । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन पृथिवीमुस्रियाभिः ।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ।।१।।
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ।।२।।
हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्यां अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ।।३।।
इहेदसाथ न परोगमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ।।४।।
सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ।।५।।
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनु वर्त्मान एत ।।६।।

मृत्यु से रक्षा करने में समर्थ और मित्रवत् उपकारी मित्र देवता वसंतादि ऋतुओं से हमको दीर्घायुष्य बनावें । फिर वरुण, वायु और अग्नि हमको महान राज्य पर प्रतिष्ठित करें ।।१।। धाता, अर्यमा और सविता देव मेरी हवियों को ग्रहण करें । यह सभी देवता एवं इन्द्र तथा त्वष्टा देव मेरी स्तुति श्रवण करें । मैं देवमाता अदिति को भी आहूत

करता हूँ। इनकी कृपा से मैं अपने समान व्यक्तियों में सम्मान प्राप्त करूँ ॥२॥ मैं यजमान को श्रेष्ठ पद प्राप्त कराने के लिए सोम, सविता तथा अदिति के अन्य सब पुत्रों को स्तुति-मन्त्रों द्वारा आहूत करता हूँ। इस आहुति के आश्रयभूत अग्निदेव अपनी दीप्ति बढ़ावें। मैं अपने सजातीय व्यक्तियों में श्रेष्ठत्व प्राप्त करूँ ॥३॥ हे महिलाओ ! तुम कन्या के पास ही रहो। इस वर की इच्छा के निमित्त विश्वेदेवा तुम्हें पास ही रखें। मार्ग प्रेरक पूषादेव तुम्हें सद्‌प्रेरणा करें ॥४॥ हम आप लोगों के चित्तों, कर्मों और विचारों को अपने अनुकूल करते हैं। जो नियमों के प्रतिकूल चलें उनको आपके सामने ही दण्ड दें ॥५॥ हे विरुद्ध मन वालो ! मैं तुम्हारे मनों को अपने आधीन करता हुँ। तुम भी मेरे मन के अनुकूल हुए मन सहित प्राप्त होओ। तुम मेरे इच्छानुसार काम करो और मेरे अनुकूल बनो ॥६॥

६ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—द्यावापृथिव्यौः, विश्वेदेवा, । छन्द —बृहती)

कर्शफस्य विशफस्य द्यौष्पिता पृथिवी माता।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ॥१॥
अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम्।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥२॥
पिशंगे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिकृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥
येना श्रवस्य वश्चरथ देवा इवासुरमायया।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काववस्य च ॥४॥
दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषियिष्यामि काबवम्।
उदाशवो रथाइव शपथेभिः सरिष्यथ ॥५॥
एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु।
तेषां त्वामग्र ऊज्जहरुर्मणिं विष्कन्वदूषणम् ॥६॥

हाथ में नख, खुर वाले व्याघ्र आदि, खुर रहित सर्प आदि, तथा गो महिष आदि को वृष्टि आदि से पोषण करने के कारण आकाश पिता और आश्रय रूप होने से पृथिवी माता है। हे देव गण ! तुमने जिस प्रकार विघ्नों के कारणों को सामने किया है, वैसे ही इन विघ्नों को दूर करो ॥१॥ इच्छित कार्य के फल की प्राप्ति से रहित मनुष्यों को दूषित शरीर वाले देवताओं ने विघ्न शान्ति के लिये अरलू वृक्ष की मणि को धारण किया। स्वायंभुव मनु ने भी ऐसा ही किया। मैं भी मणि धारण करता हुआ विघ्नों को सूखे चमड़े की रस्सी द्वारा जड़ से नष्ट करता हूँ ॥२॥ पीले रंग के डोरे कवच के समान पुवी हुई अरलु मणि को विघ्न शमन के निमित्त धारण करते हैं। हमारे द्वारा धारण की हुई यह मणि श्रवस्य, शोसक, कुबु`र आदि विघ्नों को प्रभाव हीन करे ॥३॥ हे मनुष्यो ! तुम शत्रु पर विजय प्राप्त कर अन्न-धन लेना चाहते हो। तुम असुरों की माया से मोहित देवगण के समान विघ्नों से मोहित हुए घूम रहे हो। जैसे कुत्तों का दूषण वन्दर है वैसे विघ्नों का दूषक खंग आदि शस्त्र हो ॥४॥ हे मणे ! अन्यों द्वारा उपस्थित विघ्न को निष्फल करने के लिए में तुझे धारण करता हूँ। कावव नामक विघ्न का दूषण करता हूँ। हे मनुष्यो ! इस प्रकार विघ्न शान्ति के पश्चात् तुमनि:शंक होकर अपने कार्यो में लगो ॥५॥ हे मणे ! पृथिवी में स्थित एक सौ एक प्रकार के विघ्नहैं। उनकी शांति के निमित्त ही देवताओं ने तुझे मुक्त किया था। इसलिए विघ्नों की दूषक अरलु-मणि को मैं भी धारण कर रहा हूँ ॥६॥

१० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अष्टका। छन्द—अनुष्टुप् , त्रिष्टुप्, जगती)

प्रथमा ह व्यु वास सा धेनुरभवद् यमे।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥१॥
यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम्।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२॥
संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।

सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥३॥
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥४॥
वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५॥
इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥६॥
आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्त्सं भुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥७॥
आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥८॥
ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान्
समाः संवत्सरान् मासान भूतस्य पतये यजे ॥९॥
ऋतुभ्यष्ट् वार्तवेभ्यो माद्भयः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥१०॥
इडया जूह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहान लुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥११॥
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यू नामभवच्छचीपतिः ॥१२॥
इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृणाहि नो हविः ॥१३॥

इस एकाष्टका सम्बन्धी उषा ने अन्धकार दूर कर दिया। यह सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुई थी। वह एकाष्टका हमारे लिए दूध वाली हो और वृद्धि को प्राप्त हुई उत्तमोत्तम फल दे ॥१॥ जिस एकाष्ट-कात्मक रात्रि को पास आते देखकर, हवि पाने वाले देवता प्रशंसा करते

हैं, वह संवत्सर की पत्नी रूपा है। वह हमारे निमित्त सुन्दर कल्याण युक्त हो ॥२॥ हे रात्रे! तुम्हारी हम उपासना करते हैं, तुम हमारे पुत्र पौत्रादि को चिर आयुष्य बनाओ और गवादि पशुओं से हमको सम्पन्न करो ॥३॥ यह उषा एकाष्टका लक्षण वाली सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होकर अन्धकार दूर कर चुकी है। वह उषा अन्य उषाओं में प्रविष्ट हुई नित्य उदय होती है। इसमें सूर्य, सोम, अग्नि आदि का निवास है। सूर्य की भार्या रूप यह उषा प्राणियों को प्रकाश देती हुई अत्यंत श्रेष्ठ भाव से स्थित रहती है ॥४॥ हे एकाष्टके! वनस्पति के विकार रूप उलूखल, मूसल आदि तथा पत्थरों ने तेरे निमित्त जौ आदि अन्नों को कूटने पीटने तथा दही आदि से युक्त स्तुति की है। तेरी कृपा से हम सुन्दर पुत्र, पौत्र, भृत्य और धनों के अधिपति हों ॥५॥ हे जातवेद! तुम हवि ग्रहण करो और प्रसन्न होओ। फिर गौ, घोड़ा, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट नामक यह सातों प्रकार के पशु मुझ में प्रीति रखें ॥६॥ हे रात्रे! मुझे धन, पुत्र, पौत्रादि से समृद्ध करें। हम तेरी कृपा से देवताओं की कृपा में रहें। तू हवियुक्त हुई देवताओं को प्राप्त हो और फिर इच्छित फल वाली होकर हमारे पास आ। उनसे हमारे लिये अन्न बल लेकर यहाँ आगमन कर ॥७॥ हे एकाष्टके! यह सम्वत्सर तेरा पति है। यह आ गया। तू इसके साथ रहती हुई हमारे पुत्र पौत्रादि संतति को आयुष्मती कर और धन से हमको सम्पन्न कर ॥८॥ वसंतादि ऋतुओं और उनके स्थायी देवताओं को हविर्दान द्वारा पूजित करता हूँ। संवत्सर के दिन रात्रि का यज्ञ करता हुआ हवि देता हूं, ऋतु के अवयव रूप काष्ठादि, चौवीस पक्ष, द्वादश मास आदि का भी यज्ञ करता हूँ। संसार के स्वामी काल के लिए पूजता हूँ ॥९॥ ऋतुओं, दिन रात्रि और संवत्सर की प्रसन्नता के निमित्त विधाता, धाता, समृद्ध देवता की तथा संसार के स्वामी काल के निमित्त हे एकाष्टके! मैं तेरा यज्ञ करता हूं ॥१०॥ हम घृतादि युक्त हवि से देवताओं का यज्ञ करते हैं। उन देवगणों की कृपा से हम असंख्य गौओं को प्राप्त करते हुए सब कामनाओं से सम्पन्न हों।११।

रूप कर्म द्वारा महत्तावान् इन्द्र को प्रकट किया। उस इन्द्र के बल से देवताओं ने अपने शत्रु असुरों को विशेष प्रकार से पराङ्मुख किया, वे इन्द्र, नाशकारी शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हों ॥१२॥ हे इन्द्र पुत्रे, हे सोम पुत्रे ! हे एकाष्टके ! तू देवता और मनुष्यों को उत्पन्न करने वाले प्रजापति की पुत्री है। अतः तू हमारी हवि को ग्रहण करती हुई हम को प्रजा और पशुओं की कामना से पूर्णतया सन्तुष्ट करने वाली हो ॥१३॥

११ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्माभृग्वङ्गिराश्च। देवता–इन्द्राग्निः प्रभृति। छन्द त्रिष्टुप्, जगती)

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम ॥१॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमे-
नम् ॥४॥
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥५॥
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
शरीरमस्यांगानि जरसे वहतं पुनः ॥६॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥७॥
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया।

तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुंचद् ब्रहस्पतिः ॥८॥

अज्ञात रूप से देह में प्रविष्ट होने वाले यक्ष्मा रोग से मैं तुझे हवि द्वारा मुक्त कराता हूँ। जिसने पहले सोम को ग्रहण किया था उस राज्यक्ष्मा से तुझे मुक्त कराता हुआ चिर आयुष्य बनाता हूं। हे इन्द्राग्ने ! जिस पिशाची ने इस बालक पर प्रभुत्व स्थापित किया हो, उस पिशाची से इसे मुक्त कराओ ॥१॥ व्याधि के कारण इस पूरुष की आयु क्षीण हो गई और यह इस लोक में वापिस लाता हुआ शतायुष्य होने को वल-युक्त करता हूँ ॥२॥ जिस हवि का फल अनंत दर्शन शक्ति प्राप्त कराना तथा श्रवण शक्ति रूप वल प्राप्त कराना है उस हवि की शक्ति से मैं इस रोगी पुरुष को पास से लौटा लाया हूँ। मैं इन्द्र को हवि से इस लिए प्रसन्न करता हूँ कि वे इस पुरुष को आयु क्षीण करने वाले पापों से पार लगावें जिससे यह सौ वर्ष की आयु भोग सके।३। मैं इस रोगी पुरुष को सौ वर्ष की आयु प्राप्त कराने वाले हवि द्वारा मृत्यु से लौटा लाया। हे रोगमुक्त ! तू सौ शरदों, सौ हेमंतों और सौ वसंत तक जीवित रह। इन्द्र, अग्नि, सविता और वृहस्पति तुझे शतायुष्य करें ॥४॥ हे प्राणापान ! वृषभों के अपने गोष्ठ में प्रविष्ट होने के समान तुम इस क्षय-ग्रस्त के शरीर में प्रविष्ट होओ। पुरुष जिन मृत्यु के कारण रूप रोगों को कहते हैं, वे रोग दूर हो जायें ॥५॥ हे प्राणापान ! तुम अकाल में ही इस शरीर को मत त्यागो। वृद्धावस्था तक रोगी के शरीर में वर्तमान रहो ॥६॥ हे रोग-मुक्त ! मैं तुझे वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनाता हूँ। जरावस्था तक रोगों से तेरी रक्षा करता हूँ। विद्वान जिन मृत्युकारक रोगों का वर्णन करते हैं, वे सभी रोग तुझ से पृथक हो जायें ॥७॥ हे रोगमुक्त ! जैसे सेचनसमर्थ वैल को रस्सी से वांधा जाता है, वैसे जरावस्था तुझे यथा समय प्राप्त हो। तुझे अकाल में ही मृत्यु ने अपने वन्धन में कस लिया है, उस वन्धन को वृहस्पति कटवा दें ॥८॥

१२ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-शाला, वास्तोषपतिः । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती; बृहती)

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप संचरेम ।१।
इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ।२।
धरुण्यसि शालेबृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ।३।
इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ।४।
मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरंरयिं दाः ।५।
ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्व-
वीराः ।६।
एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ।७।
पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम् ।
इमां पातृनमृतेना समङ्ग्धीष्टा पूर्त मभि रक्षात्येनाम् ।८।
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ।९।

मैं इस प्रदेश में खंभों के सहारे शाला बनाता हूँ । वह शाला घृतादि प्रदान करती हुई भय रहित रहे । तुझ में सुन्दर गुण वाले, रोगों और अरिष्टों से रहित तथा पुत्र-पौत्रों से युक्त हुए वर्तमान हों ॥१॥ हे शाले ! तू अनेक अश्व, गौ, आदि तथा शिशुओं की प्रिय वाणी से युक्त हो और

अन्न घृत दुग्धादि से उत्पन्न हुई यहीं स्थित रह और हमको मंगल देने वाली हो ।।२।। हे शाले ! तू देवताओं से सम्पन्न अनेक भोगों को धारण करने वाली है । तुझ में बछड़े और पुत्र आगमन करें ।।३।। शाला निर्माण की विधि के ज्ञाता बृहस्पति, सविता देव, वायु और इन्द्र इस शाला को खम्भे आदि रखकर बनावें । मरुद्गण घृत और जल से सींचें और फिर भगदेवता इसकी भूमि को कृषि योग्य करें ।।४।। धान्यादि को पोषण करने वाली शाले ! तू प्राणियों को सुख देने वाली है, देवताओं ने मनुष्यों के उपभोगार्थ तेरी रचना की थी । तू तिनकों से ढकी हुई शुभ आशाओं वाली हो और हमको पुत्रादि युक्त धन प्रदान कर ।।५।। हे बांस ! तू शाला के बीच खम्भे में रह । हे शाले ! तुझ में रहने वाले कभी संतप्त न हों और पुत्र पौत्रादि से युक्त होकर शतायुष्य बनें ।।६।। इस शाला में युवा पुत्र और गमनशील गौ बछड़े सहित आकर प्राप्त हों, मधु और दुग्ध के कलश भी यहां आगमन करें ।।७।। हे स्त्री ! इस शाला में टपकने के स्वभाव वाले, जल द्वारा सम्पादित मधु-घृत की धारा वाले कलश को लेकर आ । इसे सुधा रूप जल से भले प्रकार उज्जवल करो। इस शाला में चोर और अग्नि के भय से, श्रौत और स्मार्त कर्म हमारा रक्षक हो ।।८।। मैं यक्ष्मा से रहित और तुम्हारे सेवकों के क्षय-विनाशक कलश के जलों को, कभी भी नाश को न प्राप्त होने वाले अग्नि के सहित लाता हूँ ।।९।।

१५ सूक्त

(ऋषि–भृगुः । देवता–सिन्धुः, आपः वरुणः, । छन्द– अनुष्टुप् जगती)

अदद: संप्रयतीरहावनदता हते ।
तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ।१।
यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनुष्टन ।२।
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हिकम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नामा वो हितम् ।३।

एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरति तस्मादुदकमुच्यते ।४।

आपो भद्रा घृमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् तः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरङ्गम् आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ।५।

आदित् पश्याम्युत वाश्रृणोम्यामा घोषो गच्छति वां ङ् मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णाअ्रि तृपं यदा वः ।६।

इदं वः आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः ।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ।७।

हे जलो ! मेघ के ताड़ित करने पर इधर-उधर चल कर नाद करने के कारण तुम्हारा नाम नहीं हुआ है और तुम्हारे अप, उदक नाम भी अर्थ के अनुकूल ही हैं ।।१।। वरुण द्वारा प्रेरित होने पर तुम नृत्य करते-से एकत्र चलने लगे थे उस समय इन्द्र तुम्हें मिले तभी से तुम्हारा नाम अप् हुआ ।।२।। इच्छा न रहते हुए भी इन्द्र ने तुम्हें अपनी शक्ति से वरण किया, इसीलिए तुम्हारा नाम वार हुआ ।।३।। इन्द्र ने एक बार तुम पर आधिपत्य जमाया । इन्द्र के महत्व के कारण जलों ने अपने को बड़ा मान कर उदान किया तभी से वे उदक हुए ।।४।। कल्याणकारी जल ही घृत हुए । अग्नि में होमने पर घृत जल रूप हो जाता है । यह जल ही अग्नि और सोम के धारण करने वाले हैं । ऐसे जलों का मधुर रस मुझे अक्षय बल और प्राण सहित प्राप्त हो ।।५।। फिर मैं देखता और सुनता हूँ कि उच्चारित शब्द मेरे पास मेरी वाणी को प्राप्त हो रहा है । वह रस के आने से मुझ में आया है । हे जलो ! तुम सुन्दर रङ्ग वाले अमृत के समान हो तुम्हारे सेवन से मैं तृप्त हो गया ।।६।। यह जलों में गिरता हुआ सुवर्ण तुम्हारा हृदय है । हे जलो ! यह मंडूक बछड़े के समान है । जिस खात में तुम्हें प्रविष्टि करता हूँ उसमें तुम मण्डूक पर फेंकी हुई "अवका" के समान दृढ़ होओ ।।७।।

१४ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता– गोष्ठः अर्यमादयो मंत्रोक्ता, । छन्द–अनुष्टुप्)

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥१॥
सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनञ्जयो मयि पुष्यत् यद् वसु ॥२॥
संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥३॥
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४॥
शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥५॥
मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्ती रुप वः सदेम ॥६॥

हे गौओ ! तुम्हें हम सुखपूर्ण गौओं से युक्त करते हुए, चारा आदि से सम्पन्न करते है । हम तुम्हें समृद्धि, पुत्र-पौत्र आदि से भी सम्पन्न करते हैं ॥१॥ हे गौओ ! अर्यमा, पूषा, इन्द्र, बृहस्पति तुम्हें उत्पन्न करें, फिर तुम अपने क्षीर, घृत आदि के द्वारा मुझ साधक को पुष्ट करो ॥२॥ हे गौओ ! इस गोष्ठ में तुम भय रहित तथा संतति से सम्पन्न रहती हुई उपलों से युक्त हो तथा रोग रहित मधुर दूध धारण में समर्थ स्थूल थन वाली होकर प्राप्त होओ ॥३॥ हे ! गौओ मक्खी जैसे क्षण भर में ही असंख्य हो जाती हैं वैसे ही तुम भी वृद्धि को प्राप्त हुई यहाँ आओ । इस गोष्ठ में पुत्र पौत्रादि से युक्त होओ और साधक में प्रीति रखो ॥४॥ हे गौओ ! तुम्हारा गोष्ठ सुखमय हो, तुम शारिशाक के समान असंख्य होने वाली होओ । तुम यहाँ रहती हुई पुत्र।पौत्रादि के रूप में प्रकट होओ ॥५॥ हे गौओ ! मैं तुम्हारा

स्वामी हूँ तुम मेरे गोष्ठ में आओ। चारे और धन सहित असंख्य होतीं हुई चिरकाल तक तक जीवित रहो और हम भी चिरआयुष्य हों ॥६॥

१५ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा (पण्यकामः) । देवता–इन्द्राग्नि, । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥२॥
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥
इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् ।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥४॥
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा निषेध ५
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥६॥
उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः ।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥७॥
विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥८॥

मैं इन्द्र की वाणिज्यकर्त्ता के से भाव स्तुति करता हूं। वह इन्द्र यहाँ आगमन करें और वाणिज्य की हिंसा करने वाले, शत्रु, मार्ग रोकने वाले दस्यु तथा व्याघ्र आदि को नष्ट करते हुए अग्रसर हों। वे इन्द्र मुझे व्यापार से होने वाले लाभ के रूप में धन प्रदान करें ॥१॥ जिन देशों में

हम व्यापार करते हैं, उन देशों के मार्ग घृत-दूध से हमारी सेवा करने वाले हों जिससे मैं क्रय-विक्रय द्वारा प्राप्त मूल धन को लाभ सहित घर में ले आऊँ ॥२॥ हे अग्ने ! मैं व्यापार में लाभ की कामना करता हुआ शीघ्र चलने की शक्ति पाने के निमित्त तुम्हारी स्तुति करता हुआ धन सम्पन्न होऊँ। इसलिए मैं तुम्हें हवि देता हूं ॥३॥ हे अग्ने ! दूर तक मार्ग चलने के कारण जो हमारे व्रत का लोप हो गया है, उस दोष को क्षमा करो। मुझे इस दूर देश में कष्ट सहने की शक्ति दो। क्रय-विक्रय दोनों लाभप्रद और सुखदायी हों। तुम मेरी हवि ग्रहण करो। हे देवगण ! मूलधन से बढ़ा हुआ लाभ का धन हमको सुखी बनावे ॥४॥ हे अग्ने ! लाभ को रोकने वाले देवताओं को इस हवि से सन्तुष्ट करके लौटा दो। हे देवगण ! जिस धन द्वारा मैं धन की वृद्धि करना चाहता हूँ, वह धन तुम्हारी कृपा से निरन्तर बढ़े ॥५॥ इन्द्र, सविता, सोम, प्रजापति और अग्नि मेरे मन को उस धन की ओर प्रेरित करें जिस धन से धन की इच्छा करता हुआ मैं व्यवहार करने की इच्छा करता हूँ ॥६॥ हे देवाह्वाक अग्ने ! हम हवि सहित तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। तुम हमारेपुत्र पौत्रादि प्रजा की रक्षार्थं सतर्क रहो।७। हे उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता अग्ने ! अपने घर में वर्तमान अश्व को प्रतिदिन तृणादि देने देने के समान हम तुम्हें हवि देते हैं। हम तुम्हारे सेवक धन और अन्न से परिपूर्ण रहें ॥८॥

१६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि अथर्वा । देवता—अग्नीन्द्रयो मंत्रोक्तः। छन्द—आर्षी, त्रिष्टुप्)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ।२।
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव सुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

हम प्रातःकाल के समय, फल प्राप्ति के निमित्त इन्द्र, मित्र, वरुण अश्विद्वय, पूषा, भग, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्र का आवाहन करते हैं ॥१॥ जो सूर्य सबके धारणकर्त्ता तथा पोषणकर्त्ता हैं, दरिद्र व्यक्ति उन्हें अपने काम्य फल का साधन मानता हुआ उसकी पूजा करता है। राजा भी उनकी पूजा करने की कामना करता है उन अदिति पुत्र सूर्य को प्रातःकाल हम भी आहूत करने की अभिलाषा करते हैं ॥२॥ हे सूर्य ! तुम्हारे धन का कभी नाश नहीं होता। हमको बुद्धि आदि देकर सुफल मनोरथ करो। हे भग ! हम गौ-अश्व से युक्त हों तथा पुत्र पौत्र भृत्य आदि से भी सम्पन्न हों ॥३॥ हम इस कर्म को करते हुए भग देवता की कृपा-बुद्धि में रहें। सायङ्काल, मध्याह्न और सूर्योदय के समय भी हे इन्द्र ! हम सूर्य और अग्नि आदि देवताओं की कृपा बुद्धि में ही रहें ॥४॥ हम धन वाले भग देवता की कृपा से धनवान् हों। हे भगदेव ! तुम हमारे कार्य में आगे रहो, हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥५॥ पुरुष के द्वारा आरोहण के पश्चात् अश्व चलने को तैयार होता है, वैसे ही उषा देवी धन दिलाने वाले भग देवता को मेरे पास लाने को तैयार हो, और अश्वों द्वारा रथ को ले आने के समान उन्हें मेरे समीप लावें ॥६॥ अश्व और गौओं से सम्पन्न होती हुई उषा देवी हमारे गृह में सदा उदय हों। हे उषा देवते ! अपने नष्ट न करने वाले कर्मों द्वारा हमारी सदा

रक्षा करती रहो। तुम सब गुणों से सम्पन्न एवं जल को प्रदान करने वाली हो ॥७॥

१७ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्र । देवता–सीता । छन्द–गायत्री, त्रिष्टुप्)

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१॥
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह वीजम् ।
विराजः श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ।२।
लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम ।३।
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरां मुत्तरां समाम् ॥४॥
शुनं सुफला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त मस्मै ॥५॥
शुनं वाहाः शुनं नरा शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥६॥
शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
यद् दिवि चक्रथुः पयस्ते नेमामुप सिञ्चतम् ॥७॥
सीते वन्दामहे त्वर्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥८॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥९॥

हलों को जोतने वाले जानकार व्यक्ति देवात्मक हवि रूप अन्न की प्राप्ति के निमित्त वृषभों के कन्धों पर जुओं को रखते हैं ॥१॥ हे कृषको ! हलों को जुओं में जोड़कर जुओं को वृषभ स्कंध पर स्थापित करो। इस जुते हुए खेत में व्रीहि, यवादि बो दो। यवादि रूप अन्न शीघ्र ही हमारे यहां

उत्पन्न हो । फिर वह धानादि पक कर शीघ्र दरेंती से स्पर्श करने योग्य हो ॥२॥ कृषि योग्य खेत को लोहे के शल्य वाला हल सुख देता है । यह धान्यादि का उत्पत्तिकारक होने से सोमयाग का कर्त्ता है । इसका अवयव भूमि में रहता हुआ गति करता । यह हल गवादि पशुओं की समृद्धि का कारण बने ॥३॥ खेत की रेखा को इन्द्र ग्रहण करें, पूषा उसकी रक्षा करने वाले हों । यह रेखा इच्छित फल से सम्पन्न होकर प्रति वर्ष सुख देने वाली हो ॥४॥ सुन्दर शल्य भूमि खोदते हुए बैलों के पीछे चलें । हे सूर्य और वायो ! हमारी हवियों से तृप्त हुए तुम अन्नादि को सुन्दर फल वाला बनाओ ॥५॥ कृषक सुख पूर्वक खेत जोतें वृषभ उन्हें सुख देने वाले हों, हल और रस्सियाँ अनुकूल हों । हे शुनःदेव ! तुम चाबुक में भी सुख भर दो ॥६॥ हे सूर्य और वायो ! मेरी हवि को ग्रहण करो । आकाशस्थ जल के देवता, इस जुती हुई भूमि को वृष्टि जल से भिगोवें ।७। हे सीते ! हम तुझे नमस्कार करते हैं, तू जिस प्रकार सुन्दर फल से युक्त हो, उसी प्रकार हमारे सामने आ ॥८॥ हे सीते ! मधुर रस में सिंचित तथा घृत युक्त अन्न को सींचने वाली, विश्वेदेवा और मरुद्गण द्वारा प्रेरित तू जल के सहित हमारे सामने आ ॥९॥

१८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता वनस्पतिः । छन्द–अनुष्टुप् उष्णिक्)

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥२॥
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥३॥
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥४॥

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥
अभि तेऽधां सहसमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥

जो ओषधि सौत को बाधा देने वाली है तथा जो ओषधि स्त्री को पति प्राप्त कराने वाली है, उस परम शक्तिशालिनी पाठा नाम की ओषधि को मैं खोद कर पाता हूं ॥१॥ हे ऊपर मुख वाले पत्तो से युक्त यह पाठा नामक ओषधे ! मेरी सौत को पति के समीप से दूर कर और मेरे पति को मेरे लिए ही असाधारण बल में स्थित कर ॥२॥ हे सौत ! तू मेरे पति से सहवास मत कर । मैं तेरा नाम भी नहीं लेना चाहती और तुझे बहुत दूर भेजती हूं ।३। हे पाठा ओषधे ! मेरी सौत नीच से भी नीच हो और मैं श्रेष्ठ से भी परम श्रेष्ठ होऊं ॥४॥ हे पाठे ! तू शत्रुओं का तिरस्कार करने में समर्थ है । मैं तेरे प्रभाव से सौत को वश में करूं । हम दोनों ही मिलकर सौत को वश में करें ॥५॥ हे सौत ! मैं तेरे पर्यङ्क के चारों ओर तथा पर्यङ्क पर इस शक्तिशाली ओषधि को रखती हूँ । ओषधि की शक्ति से वशीभूत किया हुआ तेरा मन, बछड़े के प्रति स्नेह से दौड़ती हुई गौ के समान मेरे पीछे दौड़े ॥६॥

१९ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–विश्वेदेवा, इन्द्र । छन्द बृहती, अनुष्टुप्)

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु र्येषामस्मि पुरोहितः ॥१॥
समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३॥

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४
एषामहमायुधा सं श्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५॥
उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलवः केतुमन्त उदीरताम् ।
देवा इन्द्र ज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥६॥
प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्त बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वानो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥७॥
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥८॥

जाति से भ्रंश करने वाले दोष के मिटाने से मेरा ब्राह्मणत्व तीक्ष्ण हो और यह मंत्र तीक्ष्ण होकर अमोघ फल युक्त हो। मंत्र शक्ति से शारीरिक बल बढ़े और मैं जिस क्षत्रिय का पुरोहित हूँ वह क्षत्रिय जाति क्षीणता-रहित हो ॥१॥ मैं जिसके राज्य में रहता हूं उस राजा के राज्य को समृद्ध करता हूं। शत्रुओं को हराने वाली शक्ति और सेना को भी मन्त्र के प्रभाव से दृढ़ करता हूं। मैं इसके शत्रुओं की भुजाओं को हवि द्वारा छिन्न-भिन्न करता हूं ॥२॥ हमारे कार्याकार्य के ज्ञाता, विजय के निमित्त सेना इकट्ठी करने की चेष्टा में हैं। उनके शत्रु अभिमुख होकर गिरें। और पांवों के नीचे कुचल जांय। इसके लिये मैं मन्त्र शक्ति द्वारा शत्रुओं को क्षीण करता हुआ अपने राजा को विजय लाभ कराता हूं।३। मैं जिस राजा का पुरोहित हूँ वह राजा शत्रु का विध्वंस करने के लिए लकड़ी काटने वाले कुठार से भी अधिक तेज हो जाय। सम्पूर्ण विश्व भस्म करने की शक्ति वाले अग्निदेव भी तीक्ष्ण होकर शत्रु सेना को भस्म करें ॥४॥ मैं अपने राजा के शस्त्रास्त्र को तीक्ष्ण करता हुआ इसे वीरों से युक्त करता हूँ। इस राजा का क्षत्रियत्व रूप बल विजय करने वाला हो,

देवगण इसके मन के रक्षक हों ।।५।। हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा से संग्राम में हमारे रथ अश्वादि हर्षित रहें । हमारे शूर सिंहनाद करते रहें । सब ओर हमारे विजयात्मक जयघोष फैल जांय ।।६।। हे सैनिको ! रणक्षेत्र की ओर बढ़ो । आयुधों से सम्पन्न तुम्हारी भुजाएँ शत्रु पर प्रहार करें और तुम बल-रहित शत्रुओं को नष्ट करडालो । जिन मरुतों में इन्द्र ज्येष्ठ हैं, वे मरुद्गण अपनी सेना के सहित आकर तुम्हारे सहायक हों ।।७।। हे वाण ! तू मंत्र से तीक्ष्ण किया हुआ और मारण कर्म में कुशल है । तू शत्रुओं की ओर जाकर उन पर विजय प्राप्त कर उनके श्रेष्ठ हाथी, पैदल, सवार आदि सेना को नष्ट कर,शत्रुओं मेंसेकोई बच कर न जा सके ।८।

२० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता— अग्निः प्रभृति । छन्द—अनुष्टुप् पंक्तिः)

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ।।१।।

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ।।२।।

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ।।३।।

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ।।४।।

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ।।५।।

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ६
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ।८।

दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९॥

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०

हे अग्ने ! यह यमराज यज्ञ के समय तेरा उत्पत्ति कारण रूप है । तुम इसे जानकर इसमें प्रविष्ट होते हुए हमारे धन की वृद्धि करने वाले होओ ॥१॥ हे अग्ने ! हमको प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में सामने होकर कहो । तुम वैश्वानर रूप से प्रजापालक हो । तुम धन देने वाले हो इसलिए हमको इच्छित धन प्रदान करो ॥२॥ अर्यमा, भग, बृहस्पति देवता हमको धन प्रदान करें । इन्द्राणी और वाणी रूपा सरस्वती भी हमको धन प्रदान करें ॥३॥ हम सोम और अग्नि को रक्षा के निमित्त आहूत करते हैं । अदिति के पुत्र तीन पैर में पृथिवी को नाप लेने वाले विष्णु को सर्व प्रेरक सूर्य तथा देवताओं के भी रचियता ब्रह्मा को आहूत करते है । देव-हितैषी बृहस्पति को भी प्रयोजन के पूर्ण करने के लिये बुलाते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! तुम अन्य सब अग्नियों सहित हमारे स्तोत्र और यज्ञ को फल से युक्त करो । हवि देने वाले यजमान को धन के लिए प्रेरित करो ॥५॥ इस कर्म में हम इन्द्र और वायु को आहूत करते हैं । हमारी संगित से सब मनुष्य श्रेष्ठ मन वाले हों और हमको दान देने की इच्छा करें इसीलिए हम तुम्हें बुलाते हैं ॥६॥ हे स्तोता ! तुम अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, सरस्वती, विष्णु और सूर्य को इच्छित फल देने के लिए स्तुति द्वारा प्रेरित करो ।७। अन्न उत्पत्ति रूप कर्म को हम शीघ्र प्राप्त करें । यह सभी दृश्य प्राणी वृष्टि से अन्न पैदा करने वाले "वाज प्रसव देवता" के बीच रहते हैं । वे दान न देने वाले को भी दान करने की प्रेरणा करें । हमारे धन को पुत्र,

पौत्रादि में चिरकाल तक स्थिर करें ॥८॥ पृथिवी, आकाश, दिन, रात्रि, जल और औषधि हमको इच्छित धन दें। पूर्वादि दिशाएँ भी हमको काम्य धन की प्राप्ति करावें। मैं हृदय से जिन संकल्पों को करूं उनके फलों को प्राप्त होऊं ॥९॥ सर्व प्रकार के धन देने वाली वाणी को मैं उच्चारण करता हूं। हे वाणी! तेज से मुझ में उदित होओ। वायु मेरे शरीर में प्राण भरें और त्वष्टा मुझे पुष्ट करें ॥१०॥

१७ सूक्त (पांचवां अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—अग्निः सवित्रादयो मंत्रोक्ताः। छन्द त्रिष्टुप्,जगती)

ये अग्नयो अप्स्वन्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु।
य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ।२।

यं इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥३॥

यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४॥

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पंच मानवाः।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥५॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
वैश्वानर ज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६॥

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम्।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥८॥

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्यन्स्तंक्रव्यादमशीशमम् ॥९॥
ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥१०॥

मेघों में जो विद्युत रूप अग्नि है तथा जलों में जो वड़वानल आदि अग्नि हैं, मनुष्य शरीर में वैश्वानर रूप से जो अग्नि वास करते हैं, सूर्यकान्त आदि मणियों में जो अग्नि है तथा अन्य सभी प्रकार के अग्नियों को यह हवि प्राप्त हो ॥१॥ जो अग्नि सोम में अमृतमय रस को पकाने के लिए रमे हैं, जो अग्नि गवादि पशुओं में दूधको परिपक्व करते हैं, तथा जो अग्नि पक्षी, मनुष्य, चौपाये आदि में है, यह हवि उन सबको प्राप्त हो ॥२॥ दानादि गुण वाले जो अग्नि इन्द्र के साथ रथगामी होते हैं, जो मनुष्य में वैश्वानर तथा दवाग्नि भी हैं और संग्रामों में शत्रुओं को दबाने वाले हैं, उन सबकी मैं स्तुति करता हूँ। यह आहुति उन सब को प्राप्त हों ॥३॥ विश्व के भ्रमण करने वाले अग्नि, इष्ट फलदाता, धीमान् सब कार्यों के बनाने वाले, शत्रु संहारक इन सब प्रकार के अग्नियों को यह आहुति प्राप्त हो ॥४॥ जिससे प्राणी सत्ताधारी होते हैं, उस संवत्सर के तेरह महीने और पांच ऋतुएँ देवाह्वान करने वाले जाने जाते हैं, उन सत्यवाणी वाले और उनकी विभूति रूप अग्नियों के लिए यह हवि प्राप्त हो ॥५॥ जिन अग्निदेव के वृषभ हवि रूप अन्न हैं, सोम जिन के पृष्ठ भाग पर रहता है, जो संसार के विधायक और वैश्वानर रूप से बड़े हैं, उन अग्नि के लिए यह हवि प्राप्त हो ॥६॥ प्रकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष में प्रविष्ट होकर विचरणशील अग्नि, मेघ में विद्युत रूप अग्नि तथा ज्योति चक्र में विचरने वाले अग्नि और समस्त दिशाओं में रहने वाले, संसार के आश्रय भूत अग्नि इन सबको यह हवि प्राप्त हो ॥७॥ स्तोताओं के दान के लिए जिनके हाथ में सुवर्ण विद्यमान रहता है उन सूर्य तथा इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि इन सब का हम अङ्गिरा ऋषि आह्वाहन करते हैं। वे इस क्रव्यादि अग्नि के शमन करने वाले हों ॥८॥ मांस भक्षक क्रव्यादि अग्नि सूर्यादि

देवताओं की कृपा से शान्त हों, पुरुषों के हिंसक अग्नि भी शान्त हों और सबको भस्म करने वाले दावानल को मैंने शान्त कर दिया है ॥९॥ सोम धारण करने वाले पर्वतों के ऊपर शयन करने वाले जल ने, मेघ और वायु ने इस क्रव्यादि अग्नि को शान्त कर दिया है ॥१०॥

२२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—विश्वेदेवा बृहस्पति; वर्चः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः सम्बभुव।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥१॥
मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्चव चेततु।
देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२॥
येन हस्तौ वर्चसा सम्बभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः।
येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वचसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ।३।
यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुस्करस्रजा ॥४॥
यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते।
तावत् समत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥५॥
हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् वभूव हि।
तस्य भगेन वर्चसाऽभि षिञ्चामि मामहम् ॥६॥

मुझे हाथी का सा अप्रधृष्य तेज प्राप्त हो। देवमाता अदिति के देह से उत्पन्न महान् तेज से सब देवता और अदिति भी मुझे तेज प्रदान करें ॥१॥ दिन के अभिमानी मित्र, रात्रि के अभिमानी वरुण और स्वर्ग के राजा इन्द्र मुझे अपनी कृपा का पात्र समझें। यह मित्र आदि देवता संसार के पोषक हैं, वे मुझे इच्छित तेज से सम्पन्न करें ॥२॥ जिस तेज से राजा तेजस्वी होता है, जलों में जीव वर्चस्वी होते हैं, हाथी विशालकाय होता है, अन्तरिक्ष में

यक्ष गंधर्व आदि यशस्वी होते हैं, इन्द्रादि देवताओं ने देवत्व प्राप्त किया है, उस तेज से हे अग्ने ! मुझे तेजस्वी करो ।।३।। हे उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता और हवियों द्वारा आहूत किये जाने वाले अग्निदेव ! तुममें जितना तेज है, सूर्य में जितना तेज है, उस तेज को पद्ममाल से सुशोभित अश्विद्वय तुझ में व्याप्त करें ।३। दर्शन-शक्ति वाला नेत्र नक्षत्र-मण्डल तक के जितने स्थान को देख पाता है, चारों दिशाऐं जितने स्थान को व्याप्त करती हैं, महान ऐश्वर्यशाली इन्द्र का उतना बड़ा चिन्ह मुझे प्राप्त हो और पूर्व कथित तेज भी मुझे प्राप्त हो ।।५।। हाथी अधिक बलवान् होने से वन में विचरणशील मृगादि पर शासन करने वाला होता है, उस हाथी के भाग्य रूप वर्चस्व से मैं अपने को सींचता हूँ ।।६।।

२३ सूक्त

(ऋषि ब्रह्मा । देवता—योनिः । छन्द—अनुष्टुप्; बृहती)

येन वेहद बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् ।
इद तद्न्यत्र त्वदह दूरे नि दध्मसि ।।१।।
आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान बाणइवेषुधिम ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ।।२।।
पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ।।३।।
यानि भद्राणि वीजन्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ।।४।।
कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते ।
विन्दस्व त्वं पुत्रंनारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ।।५।।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
तास्त्वा पुत्राविद्याय दैवी प्रावन्त्वोपधयः ।।६।।

हे स्त्री ! तू जिस पाप से उत्पन्न रोग से वन्ध्या हुई है, उस पाप रोग को हम तुझ से पृथक् करते हैं । यह रोग फिर प्रकट न हो इस प्रकार इसे

दूर करते हैं ॥१॥ हे नारि ! तरकस में वाण के स्वभावतः जाने के समान ही तेरे प्रजननांग में वीर्ययुक्त गर्भ प्राप्त हो । वह गर्भ पुत्र रूप में बदल कर दश मास तक प्रसवकाल में प्रकट हो ॥२॥ हे स्त्री ! तू पुरुष-पुत्र को उत्पन्न कर । पुत्र के पश्चात् पुत्र ही उत्पन्न हो, ऐसे अटूट नियम द्वारा तू पुत्रवती हो ॥३॥ हे स्त्री ! जिन अमोघ वीर्यों से बैल गौओं में बछड़े उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तू पुत्र-प्राप्ति कर ! इस प्रकार गौ के समान पुत्र उत्पन्न करती हुई तू वृद्धि को प्राप्त हो ॥४॥ हे स्त्री ! ब्रह्मा द्वारा बनाये हुए प्रजनन सम्बन्धी नियम के अनुसार मैं तेरे लिए यह विधान करता हूँ । तेरे गर्भ में सुख देने वाले पुत्र की प्राप्ति हो ॥५॥ ऊपर को बढ़ने वाली ओषधियों का पिता आकाश है और बीज धारण करने से पृथिवी माता है । वे ओषधियाँ जल से वृद्धि को प्राप्त होती हैं । वही ओषधियाँ तुझे पुत्र प्राप्त कराने के लिए गर्भ-रक्षक हों ॥६॥

२४ सूक्त

(ऋषि– भृगुः । देवता–वनस्पतिः प्रजापतिः । छन्द–अनुष्टुप् पंक्तिः)

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥१॥
वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु ।
सम्भृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे ॥२॥
इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥३॥
उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् ।
एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥४॥
शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥५॥
तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ॥६॥

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
ता विहा वहतां स्फातिं बहु भूमानमक्षितम् ॥७॥

धान्य, यवादि सारयुक्त हों मेरा वचन भी सारयुक्त हो । मैं उन सार-युक्त धान्यादि को प्राप्त करूँ ॥१॥ मैं उन सारयुक्त देवता का ज्ञाता हूँ, वे धान्यादि की वृद्धि करने वाले हैं । धान्यादि को एकत्र करने वाले देवता का हम आह्वान करते हैं । अयाज्ञिक धनवान का समस्त धन गवादि सहित संभृत्वा देव मुझे प्रदान करें ॥२॥ यह पाँचों दिशाऐं, पांच प्रकार के मनुष्य यह सब यजमान को धन-धान्य से हर प्रकार सम्पन्न करें, जैसे वर्षा होने पर नदी का प्रवाह जल में पड़े जीवों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाता है ॥३॥ सहस्रों धाराओं से सम्पन्न होने पर भी जल की उत्पत्ति का स्थान क्षीणता रहित होता है । इसी प्रकार यह संचित धान्य अनेक धाराओं को प्रदान करता हुआ भी क्षीण न हों ॥४॥ हे देव ! तुम्हारे सैकड़ों भुजा हैं । उन से धन लाकर हमें दो । हे सहस्र हाथ वाले ! अपने सभी हाथों से धन लाकर दो और मेरे द्वारा किए गये तथा किए जाने वाले कार्य की वृद्धि से मुझे सम्पन्न करो ॥५॥ गन्धर्वों की सम्पन्नता की कारण रूप तीन कलाऐं तथा अप्सराओं की सम्पन्नता का कारण रूप चार कलाऐं हैं, उन सब में अत्यन्त सम्पन्न जो कला है, उससे हम, हे धान्य ! तेरा स्पर्श करते हैं ॥६॥ हे प्रजापते ! धान्य को पास लाने वाले उपोह देव और प्राप्त धन की वृद्धि करने वाले समूह देव यह दोनों तुम्हारे सारथि रूप हैं । अनेक प्रकार के धन-धान्य को बढ़ाने के लिए तुम उन दोनों को लाओ ॥७॥

२५ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—कामेषु, मित्रा वरुणौ । छन्द—अनुष्टुप्)

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१॥
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं सङ्कल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसन्नतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥२॥

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसन्नता ।
प्राचीनपक्षा व्योपा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३॥
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा ।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्युनुव्रता ॥४॥
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥५॥
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् ।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥६॥

हे स्त्री ! उत्तुद नामक देवता अत्यन्त व्यथित करने वाले हैं, वे तुझे कामार्त करें । तू काम के वाणों से सुइयों के समान व्याकुल हुई पलंग पर सोना पसन्द न कर । मैं तुझ पर काम का भयप्रद वाण चलाता हूँ । (इसमें "विरुद्ध परिणामी" अलंकार है, जिससे यह आशय निकलता है कि कामवासना बड़ी भयंकर और हानिकारक प्रवृत्ति है और इससे स्त्री पुरुषों को यथा सम्भव बचना चाहिए । इस सूक्त के समस्त मंत्रों का अर्थ इसी प्रकार विपरीत है) ॥१॥ रमण करने की अभिलाषा जिसका फल और मन का संताप जिसका पर्ण है, भोगात्मक संकल्प काठ और फल को मिलाने वाले मसाले के समान है, उस वाण को चढ़ाकर ही कामदेव तेरे हृदय को बींधते हैं ॥२॥ कामदेव द्वारा भले प्रकार खेंचा गया वाण प्राण के आश्रय रूप प्लीहा को सुखावे । सरल फल वाले तथा अनेक प्रकार से संतप्त करने वाले बाण से तेरे हृदय को आक्रान्त करता हूँ ॥३॥ इस संतापमय वाण से तेरा कण्ठ शुष्क हो । तू अपनी इच्छा को व्यक्त करने में उत्ताप के कारण असमर्थ होती हुई मुझे प्राप्त हो । प्रणय कलह को त्याग कर मृदु भाषण कर और मेरे अनुकूल चल ॥४॥ कशा से ताड़न करता हुआ मैं तुझे अपने सामने करता हूँ । तुझे माता-पिता के पास से भी अपने सामने बुलाता हूँ, जिससे तू मेरे मतानुकूल होती हुई मुझे प्राप्त हो ॥५॥ हे मित्रावरुण ! इस स्त्री के हृदय को ज्ञान-शून्य करो । यह कार्याकार्य को भूल जाय और मेरे वशीभूत हो,

ऐसा करो। (इस सूक्त के सब मंत्र "विरुद्ध परिणाम" अलङ्कार युक्त हैं। जिससे इनका आशय जो कहा गया है उससे उल्टा समझना चाहिए) ॥६॥

२६ सूक्त (छठवां अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—साग्न यो हेतयः प्रभृति। छन्द—जगती)

येस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः।
ते नो मृडत नोऽधि ब्रूत तेभ्तो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥१॥
येस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्य विष्यवो नाम देवास्तेषां वः कामइषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहाः ॥२॥
येस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां वः आप इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥३॥
येस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥४॥
येस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधिरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहाः ॥५॥
येस्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥६॥

हे गन्धर्वो! तुम दानादि गुणों से युक्त हो। तुम हमारे पूर्व दिशा में निवास करते हो। तुम्हारे बाण अग्नि के समान तीक्ष्ण हैं। तुम हमारी रक्षा करने में समर्थ हो। अतः हमको सुख दो। हमारे शत्रु सर्प, वृश्चिक आदि को दूर रखो! तुम्हारे लिए प्रणाम है। यह आहुति तुम्हें प्राप्त हो ।१। हे गन्धर्वो! तुम हमारे दक्षिण में रहते हो। तुम्हारे बाण हमारी इच्छा को पूर्ण करने में समर्थ हैं। तुम हमको सुख दो। तुम्हारे लिये प्रणाम है। यह आहुति ग्रहण करो ॥२॥ हे देवताओ! तुम पश्चिम में वास करते हो

तुम वैराज नाम वाले हो। वृष्टि के जल तुम्हारे बाण हैं। तुम हमको सुखी करो। यह आहुति तुम्हें नमस्कार पूर्वकप्राप्त हो ॥३॥ हे दानादि गुण से सम्पन्न गंधर्वो ! तुम प्रविध्यन्त नाम वाले हमारे उत्तर में रहते हो। तुम्हारे वाण वायु के समान वेग वाले हैं। तुम हमको सुखी करो। तुम्हारे लिये यह आहुति नमस्कारपूर्वक हो ।४। हे देवताओ ! तुम निलिम्पा नाम के हो, नीचे की दिशा में रहते हो। धान्य, जो, पेड़, गुल्म आदि ही तुम्हारे वाण हैं। तुम हमको सुखी करो। नमस्कारपूर्वक यह घृतादि युक्त हवि तुम्हारे लिए अर्पित है ॥५॥ हे अवस्वंत नामक देवताओ ! तुम ऊपर की दिशा में वास करते हो। मन्त्रों के स्वामी वृहस्पति तुम्हारे वाण हैं। तुम हमको सुखी करो। नमस्कारयुक्त यह घृतादि से सम्पन्न हवि तुम्हारे लिए अर्पित है, इसे ग्रहण करो ॥६॥

२७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—प्राची प्रभृति। छन्द—अष्टि, पंचपदा)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो दध्म ॥२॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नभिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नाम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं जम्भे दध्मः ॥३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मतं वो जम्भे दध्म ॥४॥

ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मतं वो जम्भे दध्मः ॥५॥
ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

पूर्व दिशा हम पर कृपा करने वाली हो। उस दिशा के स्वामी इन्द्र और संसार की रक्षा के लिए उस दिशा में निवास करने वाले सर्प, धाता, अर्यमा आदि अदिति के पुत्र रूप बाण, अग्नि आदि, अदिति आदि सब को नमस्कार है। हमारा यह आनन्द नमस्कार इन सबको प्रसन्न करे। हे अग्नि आदि देवताओ! हमको पीड़ा देने वाले शत्रु तुम्हारे जंभ (दांतों) में भक्षणार्थ डालते हैं ॥१॥ दक्षिण दिशा हमारे लिए कल्याणमयी हो। उस दिशा के स्वामी इन्द्र, दिशा-रक्षक सर्प, दुष्ट नाशक बाण रूप पितृ-देव इन सब को नमस्कार है। यह नमस्कार इन सब को प्रसन्न करे। जो शत्रु हम से वैर करता है, और हम जिससे बैर करते हैं उसे हम तुम्हारे जंभ (दांतों) में भक्षणार्थ डालते हैं ॥२॥ पश्चिम दिशा हम पर अनुग्रह करने वाली हो। उस दिशा के स्वामी वरुण, रक्षक सर्प, धान यवादि रूप अन्न उसके बाण हैं। इन सब को नमस्कार है। यह नमस्कार इन्हें प्रसन्न करे। जो हम से वैर करते हैं और जिससे हम बैर करते हैं, उसे जंभ में भक्षणार्थ रखते हैं ॥३॥ उत्तर दिशा हमारे प्रति अनुग्रह करने वाली हो। उस दिशा के स्वामी सोम, रक्षक स्वज नामक सर्प और दुष्टों का शासन करने वाला अशनि ही बाण है। इन सबको नमस्कार है। इस नमस्कार से यह प्रसन्न हों। जो वैरी हमसे द्वेष करता है या हम जिससे द्वेष करते हैं, उसे भक्षणार्थ जंभ में रखते हैं ॥४॥ जो नीचे की दिशा ध्रुव है वह मुझ पर अनुग्रह करे। उसके स्वामी विष्णु हैं। रक्षक

कल्माषग्रीव सर्प, और ओषधि ही बाण है। इन सब को नमस्कार। यह नमस्कार इन सब को प्रसन्न करे। हम जिससे वैर करते हैं या जो हम से वैर करते हैं, उन्हें हम तुम्हारे जंभ (दांत) में रखते हैं ॥५॥ जो ऊपर स्थित दिशा है, वह इच्छापूर्ण करने वाली हो। उस दिशा के स्वामी वृहस्पति, रक्षक श्वेत वर्ण के सर्प और दुष्टों का निग्रह करने वाला वृष्टि जल ही बाण है। इनको नमस्कार है। यह नमस्कार इन सबको प्रसन्न करे। हम जिससे वैर करते हैं और जो हम से वैर करता है, उसे हम तुम्हारे जंभ में भक्षणार्थ डालते हैं ॥६॥

२८ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—यमिनी। छन्द—अनुष्टुप्; ककुपः त्रिष्टुप्)

एकैकयैषा सृष्टया सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥१॥
एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् ॥२॥
शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥३॥
इहि पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव।
पशून् यमिनि पोषय ॥४॥
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्व स्वायाः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ।५।
यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंच॥६॥

पृथिवी आदि के रचियता भूतकाल नामक ऋषियों ने अनेक वर्ण वाली गौ आदि की रचना की, यही सृष्टि विधाता की रची हुई है। इस सृष्टि में निकृष्ट बीज और रज से यदि कोई गौ जुड़वा सन्तान उत्पन्न करती है तो वह यजमान के गवादि पशुओं का नाश करने और चोर, सिंह आदि से

नष्ट कराने का कारण रूप होती है ।१। यह यमसू गौ (दो बच्चा एक साथ उत्पन्न करने वाली) वैसी ही नाशक होती है जैसे कि माँस खाने वाले जीव होते हैं। वह अभिचार आदि के संतापप्रद फल के कारण यजमान की गौओं की हिंसा का कारण बनती है। ऐसी गौ ब्राह्मण को दान करे तो वह पुत्र पौत्रादि से युक्त होकर सौभाग्यवती होती है ॥२॥ हे जुड़वा बच्चे उत्पन्न करने वाली गौ ! तू पुरुषों को सुखी करने वाली हो ॥३॥ इस गृह में गवादि धन पुष्ट हों, दूध, घी आदि बढ़ें। हे जुड़वा बच्चों की माता ! तू इस यजमान के पशुओं की वृद्धि कर और सहस्रों धन प्रदान कर ॥४॥ जिस लोक में सुन्दर हृदय और उत्तम कर्म वाले, पुरुष स्वस्थ और प्रसन्न होते हैं, वहाँ यदि जुड़वा बच्चों को उत्पन्न करने वाली गौ सामने आ जाय तो वह हमारे मनुष्यों और पशुओं की हिंसक न हो ।५। जिस लोक में सुन्दर हृदय, सुन्दर ज्ञान और कर्म वालों के यज्ञादि से श्रेष्ठ कर्म होते हैं, वहाँ जुड़वा बच्चों को उत्पन्न करने वाली गौ आ गई है तो वह हमारे मनुष्यों और पशुओं का नाश न करे ॥६॥

२९ सूक्त

(ऋषि—उद्दालकः। देवता—अविः कामः भूमिः। छन्द—पंक्ति, अनुष्टुप्)

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्त्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः।
अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा ॥१॥
सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन्।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥२॥
यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥३॥
पंचापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्रदातोप जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम् ॥४॥
पंचापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।

प्रदातोप जीवति सूर्यमासयोरक्षितम् ॥५॥
इरेव नोप दस्यति समुद्रइव पयो महत् ।
देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति ॥६॥
क इद कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥७॥
भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८॥

आकाश में दीखते हुए यम के सभासद् पापियों को दण्ड देने वाले तथा धर्मात्माओं पर कृपा करने वाले हैं। यह पूर्ति के कर्म के स्वामी हैं और यज्ञ आदि तथा निर्माण कार्यों में हो जाने वाले पाप को पुण्य से पृथक करते हैं ॥१॥ यह यज्ञ सब ओर से वृद्धि करने वाला और फल देने वाला समर्थ है। यह हमारी सब अभिलाषाओं को पूर्ण करता है। इस प्रदत्त "अवि" का क्षय नहीं होता ॥२॥ जो यजमान को फल देने वाली भेड़ का दान करता है, वह दु;ख रहित स्वर्ग का भागी होता है। उस लोक में निर्बल व्यक्ति को सबल का शासन नहीं मानना पड़ता ॥३॥ जिस पशु के चार पैरों और नाभि पर पाँच गुलगुले रखते हैं, उस पाँच अपूप श्वेत पाँव वाले भेड़ का दाता वसु आदि पितरलोकों में अक्षय फल भोगता है ॥४॥ जिस पशु के चार पैरों और नाभि पर पाँच गुलगुले रखते हैं, उन पांच अपूप श्वेत पाद भेड़ का दाता सूर्य-चन्द्र लोकों में स्थित हो अक्षय फल भोगता है ॥५॥ श्वेत पैर वाली यज्ञ में दान की गई भेड़ क्षीण नहीं होती। जैसे समुद्र का गहन जल और साथ रहने वाले अश्विद्वय क्षीण नहीं होते, वैसे ही यह भी अक्षय होती है ॥६॥ प्रजापति ही दाता, वही ग्रहण करने वाले हैं। पारलौकिक फल चाहने वाला दानदाता तथा इहलौकिक फल चाहने वाला प्रतिग्रहीता दोनों ही कामात्मा हैं। अतः काम ने काम को प्रदान किया। इस प्रकार आत्मा को पृथक रखने से प्रतिग्रह का दोष नहीं लगता ॥७॥ हे देने योग्य द्रव्य! पृथिवी और अन्त-

अन्तरिक्ष तुझे ग्रहण करें। मैं प्रतिग्रह के दोष द्वारा प्राणों को न खो बैठूं और पुत्र आदि से न बिछड़ूं ॥८॥

३० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सांमनस्यम्। छन्द—अनुष्टुप्, जगती, त्रिष्टुप्)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥५॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६॥
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवाइवामृत रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥

हे विवादी पुरुषों! तुम्हारे लिये मैं विद्वेष भाव को दूर करने वाला, प्रीतियुक्त सांमनस्य कर्म करता हूं। गौऐं जैसे अपने वत्स से स्नेह करती हैं, वैसे ही तुम परस्पर व्यवहार करो ॥१॥ पुत्र पिता का अनुगत हो, माता भी पुत्र के अनुकूल मन वाली हो, पत्नी पति से मधुर वाणी बोलने वाली हो ॥२॥ भाग बांटने के लिये भ्राता, भ्राता का बुरा न करे। बहिन भाई से वैर न करें। यह सब भाई समान कार्य और समान गति वाले होकर मंगलमय बातें करें ॥३॥ जिस मन्त्र के बल से

देवता विभिन्न मत वाले नहीं होते और न परस्पर बैरभाव रखते हैं, उस समानता के कारण रूप मन्त्र से सम्बन्धित सांमनस्य को हम तुम्हारे लिये करते हैं ॥४॥ तुम समान मन वाले, समान कार्य वाले रहकर छोटे-बड़े का ध्यान रखते हुये परस्पर सुन्दर बचन कहते हुये आओ। हे मनुष्यो! मैं तुम्हारे समान कार्यों में प्रवृत्त करता हूँ ॥५॥ समानता के इच्छुको! तुम्हारा अन्न-पानी का उपभोग एक सा हो। मैं तुम्हें प्रेम सूत्र में साथ-साथ बाँधता हूं। जैसे पहिए के अरे नाभि के आश्रित होते हैं, वैसे ही तुम सब एक अग्नि के आश्रय में रहते हुये उनकी सेवा करो ॥६॥ मैं तुम्हें समान मन वाले बनाकर एक से कार्य मे प्रवृत्त करता हूँ। इसी कर्म से मैं तुम्हें वशीभूत करता हूँ। स्वर्ग में, अमृत की एक मत से रक्षा करने वाले इन्द्र आदि सब देवताओं के मन जैसे श्रेष्ठ रहते हैं, वैसे प्रातः सायं हर समय तुम्हारा मन सुन्दर रहे ॥७॥

३१ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-अग्न्यादयः पाप्महनो मन्त्रोक्ताः। छन्द-अनुष्टुप्, पंक्तिः)

वि देवा जरासावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१॥
व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२॥
वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्यापस्तृष्णयासरन्।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥३॥
वीमे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम्।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४॥
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥५॥
अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चंद्रः प्राणेन संहितः।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥६॥

प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥७॥
आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥८॥
प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९॥
उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०॥
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११॥

हे अश्विद्वय ! तुम इस बालक को आयु हानि करने वाली वृद्धावस्था से दूर रखो । हे अग्ने ! तुम इसे अदानशीलता और पशुओं से दूर रखो । मैं इसे पाप से पृथक करता हुआ यक्ष्मा से मुक्त कर दीर्घ आयुष्य बनाता हूँ ॥१॥ इसे रोग के कारण उत्पन्न दुःख से वायु बचावें । इन्द्र इसे पाप से पृथक करें । मैं इसे रोग के कारण रूप पाप से पृथक कर, यक्ष्मा से दूर करता हुआ दीर्घ आयु वाला करता हूँ ॥२॥ सिंह आदि जङ्गली पशुओं से जैसे गांव के गवादि पशु स्वभावतः पृथक रहते हैं, जैसे प्यासे प्राणी से जल दूर रहते हैं, वैसे ही इस ब्रह्मचारी को मैं पाप से दूर रखता हूँ । क्षय रोग से मुक्त करते हुए इसे दीर्घ आयु से युक्त करता हूं ॥३॥ एक दिशा से दूसरी दिशा को जाने वाले मार्ग पृथक-पृथक होते हैं ,आकाश और पृथिवी भी स्वभावतः पृथक-पृथक होते हैं वैसे ही इसे स्वभावतः पाप से पृथक रहने वाला करता हूँ॥४॥ त्वष्टा ने अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर जो दहेज भेजा,उसे निकालने को स्थान देने के निमित्त यह पृथिवी और अन्तरिक्ष पृथक होगए । इसी प्रकार मैं इसे पाप से पृथक् कर क्षय-रहित करता हुआ दीर्घ जीवन से युक्त करता हूँ॥५॥ भोजन को पचाने वाला जठराग्नि नेत्र और प्राण को अन्न का रस प्राप्त कराता और उन्हें

अपने-अपने कार्य करने की सामर्थ्य देता है। वैसे ही चन्द्रमा प्राणवायु से युक्त हो अमृत रस से आत्मा को पोषित करता है। मैं इसे सब पापों से पृथक् कर क्षय रहित बना और दीर्घ आयु से युक्त करता हूँ ॥६॥ देवगण ने सूर्य को प्राण रूप से प्रकट किया। मैं ऐसे सूर्य को इस बालक में आयु बढ़ाने के लिए स्थापित करते हुए, पापों से इसे दूर करता और क्षय-रहित बना कर दीर्घ आयु वाला करता हूं ॥७॥ आयुवान् पुरुषों की दीर्घायु से और देवताओं के चिरस्थायी प्राणवायु से हे बालक ! तू अपने प्राणों को दीर्घकाल तक धारण कर। मैं तुझे सब पापो से मुक्त कर, क्षय से रहित करता हुआ दीर्घायुयुक्त बनाता हूं ॥८॥ हे बालक ! श्वास लेने वाले प्राणियों के श्वास से तू श्वास ले। तू मृत्यु को प्राप्त न होता हुआ इसी लोक में न रह। मैं तुझे पापों से मुक्त कर, यक्ष्मा से पृथक् करता और दीर्घ आयु से युक्त करता हूं ॥९॥ हम आयु की शक्ति से ही मृत्यु से बचते हैं और उसी के द्वारा इस लोक में वास करते हुए जो धान आदि के रस से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। मैं तुझे सब रोगों के जनक पाप से पृथक् कर, क्षय रहित करता और दीर्घायु से सम्पन्न बनाता हूं ।१०। हम पर्जन्यदेव के वर्षा के जल से अमृतत्व को पाकर उठ बैठते हैं। यह वर्षा जल संसार के प्राणभूत हैं। हे बालक ! मैं तुझे सब रोगों के उत्पत्ति जनक पाप से छुड़ाकर यक्ष्मा रोग से मुक्त करता हुआ, दीर्घ आयु संयुक्त करता हूँ ।११।

॥ इति तृतीय काण्डं समाप्तम् ॥

चतुर्थ काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

[ऋषि—वेनः। देवता—बृहस्पतिः, आदित्यः। छन्द—त्रिष्टुप्]

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥
इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।
तस्मा एतं सरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥२॥
प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३॥
स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभयत्।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥४॥
स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५॥
नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६॥
योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥७॥

सत्, चित् सुखात्मक, सब संसार का कारणभूत ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में हिरण्यगर्भ रूप सूर्य में प्रकट हुआ। जो पूर्व दिशा में उदय होने वाला सूर्यात्मक तेजवान है वही सत् और असत् के उत्पत्ति स्थान के ज्ञान का प्रकट करने वाला है ॥ १ ॥ अखिल विश्व के उत्पत्ति कर्ता

प्रजापति पिता कहलाते हैं। उन पिता से प्राप्त, नादरूप से व्याप्त होने वाली वाणी संसार के सब व्यवहारों की अधीश्वरी है। वह प्रथमा शब्दवाच्य सूर्यात्मक ब्रह्म के समक्ष स्तुति रूप से व्याप्त हो ॥२॥ इस प्रपंच को बांध कर बन्धु के समान इसका हित करने वाले, निरावरण ज्ञान से संसार के ज्ञाता जो देव प्रथम उत्पन्न हुए वे सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं की उत्पत्ति दूसरों को बनाते हैं। उन सूर्य ने वेद का ऊपर और मध्य भाग से उद्धार किया। इसके पश्चात हवि रूप अन्न देवताओं को मिला ॥३॥ वह परब्रह्म सूर्य रूप से प्रथम उत्पन्न हुए आकाश के कारणरूप तथा पृथिवी के सत्य रूप से स्थित हुए द्यावापृथिवी में विनाशहीनता स्थापित करते हैं ॥४॥ सूर्य रूप से उत्पन्न परब्रह्म रसातल आदि लोक में व्याप्त होते हैं। दानादि गुणयुक्त बृहस्पति इस लोक के स्वामी हैं। जब सूर्य के द्वारा दिन उत्पन्न हो, तब ऋत्विक् हविर्दान द्वारा देवताओं की पूजा करें ॥५॥ ऋत्विजों-सम्बन्धी यज्ञ सूर्य तेज मण्डल को उदयाचल पर प्रेरित करता है। पूर्व दिशा में स्थित देशों में यह सूर्य देवता हविरन्न का लक्ष्य रखते हुए शीघ्र ही प्रकट होते हैं ॥६॥ देवताओं के बन्धु बृहस्पति व प्रजापति अथर्वा को नमस्कार हो। जैसे तुम सब प्राणियों को उत्पन्न करने वाले हो और वैसे ही अन्न से युक्त हो। वे बृहस्पति हवि रूप अन्न से सम्पन्न होकर सब पर कृपा करते हैं ॥७॥

२ सूक्त

[ऋषि—वेन:। देवता—आत्मा। छन्द—त्रिष्टुप्)

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
योस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।२॥
यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम्।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥
यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम्।

यस्यासौ सूरो त्रिततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसयामि हुः ।
इमाश्च प्रदिशा यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।५॥
आपो अग्र विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवोऽध्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥
आपो वत्सं जनयन्तीगर्भमग्ने समैरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्व आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

प्रजापति सब चीजों को शक्ति देने वाले हैं, उनके शासन में रहते हुए देवगण भी उनकी पूजा करते हैं। वे देवता और मनुष्य सबके शासक हैं। हम उन प्रजापत्ति की हवि द्वारा पूजा करते हैं ॥१॥ श्वास-उच्छ्वास के कारण रूप सब प्राणियों के स्वामी, मृत्यु-नाश के साधन रूप, जिनके आधीन सब प्राणियों की मृत्यु है, हम उन प्रजापति देव को हवि द्वारा पूजा करते हैं ॥२॥ क्रन्दनशील प्राणियों के आश्रयभूत क्रन्दसी नाम वाले देवता हैं जिनके प्रभाव से द्यावापृथिवी नीचे नहीं गिरती। इनके नीचे गिरने के भय से प्रजापति के रुदन करने से इन्हें रोदसी कहते हैं। इन द्यावा-पृथिवी ने अपनी रक्षार्थ जिस प्रजापति को पुकारा, उनको हम हवि देते हैं ॥ ३ ॥ जिनकी महिमा से आकाश-पृथिवी और अन्तरिक्ष का विस्तार हुआ तथा यह सूर्य प्रत्यक्ष दर्शनीय हुए, उन प्रजापति को हम हवि द्वारा पूजते हैं ॥ ४ ॥ जिनकी महिमा से यह पवन उत्पन्न हुए, नदी समुद्र रूप में हुई, जिनकी भुजा रूप चार दिशाएँ हैं, हम उन प्रजापति को हवि देते हुए पूजा करते हैं ॥५॥ जलों ने सृष्टि के आदि में प्रकट होकर संसार की रक्षा की। हिरण्यगर्भ को इन्होंने धारण किया और संसार के कारणरूप ब्रह्म को जानते हुए इन्होंने संसार की रक्षा की। उन जलों के गर्भभूत प्रजापति देव को हम हविर्दान से सन्तुष्ट करते हैं ॥६॥ हिरण्यगर्भ सृष्टि से पहले

प्रकट हुए और प्रपंच के अधीश्वर बने। इन्होंने पृथिवी और आकाश को धारण किया। उन प्रजापति की हम हवि द्वारा पूजा करते हैं॥७॥ ईश्वर द्वारा प्रथम उत्पन्न किये हुए जलों से सृष्टि की रचना के निमित्त ईश्वर प्रदत्त वीर्य को गर्भाशय में स्थित किया, उन गर्भ रूप हिरण्यगर्भ का अण्डा भी स्वर्णिम था। उन प्रजापति की हम हवि द्वारा पूजा करते हैं॥८॥

३ सूक्त

[ऋषि—अथर्वा। देवता—व्याघ्रः। छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप् गायत्री]

उदितस्त्रयो आक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥ १ ॥
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥२॥
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि।
आत् सर्वान् विंशति नखान् ॥३॥
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥४॥
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥५॥
मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६॥
यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७॥

गूढ़ाशय वाली नदियाँ जैसे अन्तर्हित होकर प्रवाहित होती हैं, वैसे ही व्याघ्र आदि अंतर्हित हों। व्याघ्र, चोर, भेड़िया तीनों ही उठ कर चले जाँय। इनके शत्रु भी इन्हें अन्तर्धान होने को विवश करें॥१॥ जिस पथ में हम विचरण करते हैं उसमें जंगली कुत्ता भेड़िया न चलें और उससे भी

क्रूर चले। सर्प तथा दूसरे की हिंसा का इच्छुक शत्रु और अन्य हिंस्र प्राणी इस मार्ग पर न चलते हुए अन्य मार्गगामी हों ॥ २ ॥ हे व्याघ्र ! हम तेरे नेत्र और मुख को नष्ट कर तेरे चारों पैरों के बीस नाखूनों को भी उखाड़ते हैं ॥३। दंतयुक्त हिंसक पशुओं में व्याघ्र को हम प्रथम नष्ट करते हैं। फिर चोर, सर्प, राक्षस और भेड़िया आदि को मारते हैं ॥४॥ इस समय आने वाला चोर पिट कर भागे और जिस कष्टप्रद मार्ग से वह जावे उस पर इन्द्र उसे अपने वज्र से चूर्ण कर डालें ॥५॥ व्याघ्रादि के दांत कमजोर हों, सींग वालों के सींग नष्ट हों और हड्डी पसली भी व्यर्थ हो जांय। हे यात्रिन् ! गोधा नामक जीव तुझे न दिखाई दे और शयन के स्वभाव वाला हरिण भी अन्य मार्ग से चला जाय ॥६॥ इन्द्र से और सोम से उत्पन्न संयमन उलटा नहीं होता। हे क्रियाकलाप ! तू महर्षि अथर्वा द्वारा देखा हुआ है, निश्चय ही तू व्याघ्र आदि भयङ्कर प्राणियों को नष्ट कर देता है ॥७॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वनस्पति, प्रभृति। छन्द—अनुष्टुप्; उष्णिक्)

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे।
यां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥१॥
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥२॥
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥३॥
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम्।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४॥
अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम्।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥५॥
अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति।

अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥६॥
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्शइव रोहितमनवग्लायता सदा ॥७॥
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥८॥

वरुण का पौरुष नष्ट होने पर पुनः वीर्य-प्राप्ति के लिए जिसे गन्धर्व ने खोद कर प्राप्त किया था, हे कैंथ ! हम तुझ शक्तिवर्द्धक ओषधि को खोदते हैं ॥१॥ सूर्य श्रेष्ठ वीर्य सम्पन्न करें और उनकी पत्नी उषा वीर्य से उद्वृत्त करें। मेरा यह मन्त्र वीर्य से सम्पन्न करने वाला हो। प्रजापतिदेव वीर्य से युक्त कामेन्द्रिय को स्वस्थ करें ॥२॥ हे वीर्य के इच्छुक पुरुष ! तेरे पुत्र पौत्रादि का कारण रूप पुव्यंजक नाग के फन के समान चेष्टा कर सके, इसीलिये यह ओषधि तुझे अतुल वीर्य से सम्पन्न करे ॥३॥ यह ओषधि अत्यन्त वीर्य वाली है। यह वृषभों में भी सार रूप है। यह ओषधि इस पुरुष को वीर्य से युक्त करे। हे इन्द्र इस पुरुष से शरीर में वीर्य धारण कराने वाले होओ ॥४॥ हे कैंथ की जड़ ! तू जलों के मन्थन काल में उत्पन्न हुई अमृतमय है और सोम की सजातीय है। तू अंगिराओं के मन्त्र-बल से स्वयं वीर्य रूप हो गयी है ॥५॥ हे अग्ने ! इस वीर्याभिलाषी के शरीरांग को वीर्ययुक्त कर शक्ति प्रदान करो। हे सूर्य ! हे सरस्वते ! हे ब्रह्मणस्पते ! तुम इस वीर्य की कामना वाले के अंग को नीरोग करो ॥६॥ हे वीर्य की कामना करने वाले पुरुष ! मैं तेरे अंग को वीर्य से युक्त करता हूँ अतः तू वृषभ के समान नृत्य करते हुए मन से अपनी पत्नी को प्राप्त हो ॥७॥ हे ओषधे ! अश्व, अश्वगर्दभ, वृषभ, मेढ़ा आदि में जो वीर्य है वैसा ही वीर्य इस पुरुष के शरीर में स्थापित कर ॥८॥

सूक्त १८

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—वृषभः स्वापनम्। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।

तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥१॥
न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥२॥
प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥३॥
एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥४॥
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥५॥
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥६॥
स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् ।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ॥७॥

कामनाओं और जल की वर्षा करने वाले, सहस्र रश्मि वाले सूर्य आकाश से उदय होते हैं, उन शत्रु को वश करने वाले सूर्य द्वारा ही हम उपस्थित व्यक्तियों को निद्रायुक्त करते हैं ॥१॥ वायु अधिक न चले, कोई मनुष्य देख न सके, हे वायो ! तुम इन्द्र के मित्र हो । सब स्त्रियों और कुत्तों को भी निद्रा के वशीभूत करो ॥२॥ जो स्त्रियां पलंग पर या आँगन में सो रहीं हैं, जो स्त्रियाँ पालकी आदि उठाने वाली हैं और जो स्त्रियाँ पुण्यगंधा कहलाती हैं ऐसी सब स्त्रियों को हम निन्द्रा के वश करते हैं ॥ ३ ॥ सभी जंगम प्राणियों को मैंने सुला दिया, उनकी देखने की शक्ति को मैंने ग्रहण कर लिया, घ्राणेन्द्रिय भी मेरे अधिकार में है। इनके हाथ पाँव आदि सब अङ्गों को अर्द्ध रात्रि में ही अपने वशीभूत कर लिया है ॥ ४ ॥ हमारे जाने के समय जो पुरुष घूमता है, इधर उधर देखता है, जैसे यह घर देखने की शक्ति से रहित है, उसी प्रकार हम उन सबके नेत्रों को बन्द करते हैं । ॥ ५ ॥ जिस स्त्री को हम

निद्रा से वशीभूत करने के इच्छुक हैं, उसकी माता, पिता, गृह रक्षक, श्वान, गृह स्वामी तथा कुटुम्बी सभी निद्रा-मग्न हों ॥ ६ ॥ हे स्वप्न के अभिमानी देव ! इन्हें सूर्योदय तक निद्रा-मग्न रखो। सबके सोने पर मैं हिंसित न होऊँ और उषा काल तक जाग सकूँ ॥७॥

६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—भृगुः। देवता—ब्राह्मणः प्रभृति। छन्द—अनुष्टुप्)

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥१॥
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२॥
सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत्।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥३॥
यस्त आस्यत् पञ्चांगुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥४॥
शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः।
अपाष्ठाच्छृंगात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥५॥
अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम्।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥६॥
ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन्।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥७॥
वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥८॥

तक्षक सर्प ब्राह्मण है, इनके दश फन और दश मुख हैं। इन्होंने क्षत्रियों से प्रथम होने के कारण आकाशस्थ सोम का पान किया। वे सोम

पीने वाले ब्राह्मण कन्द-मूल, फल से उत्पन्न इस विष को निष्प्रभाव करें ॥१॥ आकाश-पृथिवी जितने परिमाण में विस्तृत हैं, समुद्र जितने फैले हुये हैं, उन स्थानों के कन्दमूल, फल के विष को दूर करने वाली मंत्र-युक्त वाणी को प्रयुक्त करता हूँ ॥२॥ हे विष ! वैनतेय गरुड़ ने तुझे पहले खाया था, इससे तू इसके लिये अन्न समान हो । ३॥ पाँच उंगली वाले जिस हाथ ने तुझे मुखयन्त्र से शरीर में डाला है, उस विष और विष देने वाले हाथ को मैं सुपारी वृक्ष के टुकड़े द्वारा मन्त्र शक्ति से निःप्रभाव करता हूँ ॥४॥ बाण के फल से जो विष घुसा उसे मैं मन्त्र बल से दूर करता हूँ । प्रलप से, पत्ते से, सींग से तथा मल आदि द्वारा जो विष उत्पन्न हुआ उसे भी मन्त्रशक्ति से पृथक करता हूँ ॥५॥ हे बाण ! तेरा विषयुक्त फल निर्वीर्य हो, तेरा विष निष्फल हो । फिर तेरा धनुष भी व्यर्थ हो जाय ॥६॥ विषमयी औषधि को देने वाले, दूर से विष फेंकने वाले पास से अन्न, जल में विष मिलाने वाले, ऐसे सब विष दाताओं को तथा विष की उत्पत्ति के कारण रूप पर्वतादि को भी मैंने निर्वीर्य कर दिया ॥ ७ ॥ हे विषयुक्त औषधे ! तुझे खोदने वाले निर्वीर्य हों, तू मन्त्र बल से निष्प्रभाव हो, जिस पर्वत पर यह विषयुक्त कन्द, मूल फल आदि उत्पन्न होते हैं वह पर्वत भी निर्वीर्य हो जाय ॥८॥

७ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मन् । देवता—वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि ।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥१॥
अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥२॥
करम्भं कृत्वा तिर्यं पीवस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥३॥

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ।४॥
परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्षइव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ॥५॥
पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।
प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥६॥
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥७॥

वरण नामक वृक्ष उत्पन्न करने वाली वरणावती का जल हमारे विष को दूर हटावे। इसके जल में द्युलोक स्थित अमृत का स्वरूप विद्यमान है। उस अमृतमय जल के द्वारा कन्दादि से उत्पन्न तेरे विष को हटाता हूँ ॥१॥ पूर्व दिशा का विष निर्वीय हो, उत्तर, दक्षिण सब दिशाओं का विष मंत्रशक्ति से निर्वीर्य हो जाय ॥ २ ॥ हे विष ! तू शरीर को दूषित करने वाला है। तुझ अनजान में खाये हुए पीड़ा जनक को इस पुरुष ने अंन समझा था। तू इसे चेतना रहित न कर ॥३॥ हे चेतना-हीन करने वाली ओषधे ! तेरे विष को हम धनुष से छूटने वाले तीर के समान शरीर से दूर करते हैं। हे विष ! गुप्त रूप से जाने वाले दूत के समान तुझ गुप्त रूप से देह के अंग-प्रत्यङ्ग में व्याप्त हुए को मन्त्र शक्ति द्वारा निकाल कर दूर करते हैं ॥४॥ हे खोद कर निकाली गई ओषधे ! तू वृक्ष के समान अपने स्थान में अटल रह, इस पुरुष को मूच्छित न कर। हम तेरे विष को मन्त्ररूप वाणी से हटाकर दूर करते हैं ॥५॥ हे विषाक्त ओषधे। महर्षियों ने तुझे शुद्ध करने के लिए क्रय किया है। तू हरिण चर्मों के वदले में क्रय की गई है। अतः तू क्रय की हुई यहाँ से दूर हो और इस पुरुष को अचेत न कर ॥६॥ हे पुरुषो ! जिन शत्रुओं ने यज्ञादि मुख्य कर्मों को किया है, वे अपने मुख्य कर्मों के द्वारा हमारे पुत्र पौत्रादि के नाशक न हों। इससे रक्षित होने के लिए मैं चिकित्सा रूप कर्म को प्रस्तुत करता हूं ॥७॥

८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वाङ्गिराः। देवता–राज्याभिषेकः आपः। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥१॥
अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥
आ तिष्ठन्तं परि विश्व अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३॥
व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४॥
या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥५॥
अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याःपयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥६॥
एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ॥७॥

अभिषिक्त होने पर ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला और अनुजीवियों को अन्नदान करने वाला राजा ही प्राणधारियों का स्वामी होता है। यमराज प्राणियों पर शासन करने और दुष्टों को दण्ड दिलाने के निमित्त ही राजा से राजसूय यज्ञ कराते हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! तुम हाथी घोड़ा, रथ, राज्य सिंहासन आदि के प्रति उदासीन न होओ। तुम कार्याकार्य के विभाव के ज्ञाता और महाबली हो। इन्द्रादि देवता तुम्हें 'अपना' कहें ॥२॥ सिंहासनारूढ़ राजा सब सेवा करें और राजा भी प्रजा पालन में तत्पर हो। अभिषेक से उत्पन्न राज्य तेज दशों दिशाओं में व्याप्त हो और भय से त्रस्त हुए शत्रु भाग जाँय। यह राजा शत्रु, मित्र, स्त्री आदि से विविध प्रकार वर्तता हुआ दण्ड, युद्ध और अध्ययन आदि कार्यों का

करने वाला हो ।३।। हे राजन्! व्याघ्र चर्म पर बैठ कर पूर्वादि दिशाओं को विजय करो । तुम तेजस्वी हो । तुम्हें यह सब प्रजा अपना अधिपति स्वीकार करे । तुम्हारे देश में अनावृष्टिरूप अकाल न हो।।४।।हे राजन्! जो स्वर्गस्थ जल प्राणियों को तृप्तिकर है, जो जल पृथिवी और अन्तरिक्ष में है, उन लोकत्रय मे व्याप्त जलों के अपरिमित पराक्रम वाले रस से तुझे अभिषिक्त करता हूँ ।।५।। हे राजन् ! दिव्य जल अपने तेज से तुम्हें सींचे । तुम अपने मित्रों की जिस स्थिति में वृद्धिकर सको, सूर्य उसी प्रकार तुम्हें सामर्थ्यवान करें ।।६।। वीर राजा को जल माता के समान हर्षित करने वाले हैं और सौभाग्य प्राप्त कराने के लिये वीर्य से तृप्त करते हैं । नदी रूप जल जैसे समुद्र को सम्पन्न करते है, वैसे ही अभिषेक के समय राजा को तृप्त करते हैं । सेवकगण वस्त्र मुकुट अलङ्कार आदि से राजा को सुशोभित करते हैं ।।७।।

सूक्त ९

(ऋषि—भृगुः । देवता—त्रैककुदाञ्जनम । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ।।१।।
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ।।२।।
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्था थो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ।३।
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ।।४।।
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ।।५।।
असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।

दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६॥
इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८॥
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९॥
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

हे अंजन मणे। तू त्रिककुद नामक पर्वत की चक्षु रूप है। तू जीवधारी की रक्षा करती हुई प्राप्त हो। इन्द्र आदि सब देवताओं ने रोग-रहित रहने के निमित्त तुझे परिधि के रूप में प्रदान किया है ॥१॥ हे त्रिककुद के अञ्जन! तू मनुष्य, गौ, अश्व और अश्व मादा इन सब की रक्षार्थ स्थित रहने वाला है ॥२॥ जिससे नेत्र को स्वच्छ करते हैं जो राक्षसादि की पीड़ाओं का नष्ट करने वाला है, ऐसे हे अञ्जन! तू आकाश में स्थित अमृत का ज्ञाता है और जीवित जीवों के अनिष्ट को दूर करने वाला है। तू पांडु आदि रोगों की कलोंई को भी मिटाता है ॥३॥ हे अञ्जन ! तू जिसके शरीर में व्याप्त होता है, उसके शरीर को क्षय-रहित करने में वायु के समान प्रचण्ड वेग वाला है ॥४॥ हे अञ्जन ! जो पुरुष तुझे व्यवहृत करता है, उसे दूसरे का शाप प्राप्त नहीं होता। अन्य द्वारा की हुई अभिचार रूप कृत्या तथा शोक और विघ्न आदि प्राप्त नहीं होते ॥५॥ हे अञ्जन मणे! अभिचारात्मक असत्मन्त्रों से उन मन्त्रों के द्वारा प्राप्त दुःख से, दूषित मन और दूसरों के क्रूर नेत्रों से तुम मेरी रक्षा करो ॥६॥ हे अञ्जन ! मैं तेरी महिमा जानता हूं इसलिए यह बात मैंने मिथ्या नहीं कही। इसलिए मैं सेवक, गौ, अश्व और प्राणिमात्र की सेवा करूँ ॥७॥ कठिनता से जीवन चलाने वाला ज्वर, सन्निपात,

सर्प आदि का विष, यह प्राणों के हरण करने वाले विकार अञ्जन के प्रभाव से दूर होते हैं। हे अञ्जन! त्रिककुद पर्वत तुम्हारा जनक है ।८।। हिमालय के ऊपर त्रिककुद नामक पर्वत का अञ्जन राक्षसियों के नाश में तत्पर रहता है, इसलिए वह अञ्जन हमारे रोग आदि विकारों को नष्ट करे ।।९।। हे अञ्जन ! तू चाहे त्रिककुद का है या यमुना का तेरे त्रैककुद और यामुन दोनों ही नाम कल्याण के करने वाले हैं, तू अपने दोनों नामों से ही हमारी रक्षा कर ।।१०।।

१० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—शङ्खमणिः कृशनः। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खःकृशनः पात्वंहसः ।।१।।
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे ।।२।।
शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ।।३।।
दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ।।४।।
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ।।५।।
हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ।।६।।
देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभिरक्षतु ।।७।।

अन्तरिक्ष में उत्पन्न, वायु से उत्पन्न, ज्योतिर्मण्डल से भी उपर उत्पन्न तथा सुवर्ण से उत्पन्न शङ्ख शत्रुओं को निर्बल करने वाला है, वह पाप से हमारी रक्षा करे ।।१।। हे शङ्ख ! तू प्रकाशित नक्षत्र आदि के

सम्मुख समुद्र में उत्पन्न होने वाला है, तुझ दमकते हुए शङ्ख से हम राक्षसों और पिशाचों को वशीभूत करते हैं ॥२॥ मणि के रूप में प्राप्त होने वाले शङ्ख से रोग और अज्ञान को भी वश में करते और अलक्ष्मी का तिरस्कार करते हैं। यह सुवर्ण से उत्पन्न हुआ, संतापनाशक शङ्ख हमको पापों से बचावे ॥३॥ शङ्ख पहले वायु में, फिर समुद्र में उत्पन्न हुआ। नदी के उद्गम स्थान से लाया हुआ या सुवर्ण से उत्पन्न शङ्ख की विकार रूप मणि हमारी आयु को बढ़ावे ॥४॥ अन्तरिक्ष से या समुद्र से उत्पन्न हुआ शङ्ख मणि का उपादान रूप है। यह मेघ से उत्पन्न हुआ सूर्य के समान दमकता है। इस शङ्ख की विकार रूप मणि देवता और दैत्यों के उपद्रवों से हमें बचावे ॥५॥ हे शङ्ख! तू स्वर्ण चाँदी आदि में भी प्रमुख है, क्योंकि तेरी उत्पत्ति अमृतमय चन्द्र मण्डल से हुई है। तू युद्ध के समय रथों पर दिखाई देता है। ऐसे शङ्ख की मणि हमारी आयु की वृद्धि करे ॥६॥ शङ्ख का कारण रूप सुवर्ण शङ्ख रूप देह से युक्त हो जल में रहता है। हे यज्ञोपवीत वाले! ऐसे शंख को तेरी आयु देहकांति और बल के लिये तेरे बाँधता हूँ। यह मणि तुझे शतायुष्य करती हुयी रक्षक हो ॥७॥

सूक्त ११ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि--भृग्वङ्गिरा।देवता-अनड्वान् इन्द्ररूपः।छन्द-जगती त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान विश्वं भुवनमा विवेश ॥१
अनड्वानिन्द्रःस पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो वि मिमीते अध्वनः।
भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥२॥
इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥३॥
अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात्।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥४

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा धर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥
येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥६॥
इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत ।
सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥७॥
मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥८॥
यो वेदानडुहो दोहान्सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥९॥
पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥१०॥
द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनडुहो व्रतम् ॥११॥
दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यन्दिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः ॥१२॥

गाड़ी को खींचने वाला बैल जोतने और भार ढोने के कर्म द्वारा पृथिवी का पोषण करता है, वही चारु पुरडाश की उत्पत्ति में सहायक होने से आकाश का पोषक है। वही अन्तरिक्ष, और पूर्वादि महादिशाओं को धारण करता है। इस प्रकार वह अनड्वान् वृषभ सब भुवनों में उनकी रक्षार्थ प्रविष्ट होता है ॥१॥ यह वृषभ इन्द्र रूप में प्रतीत होता है। जैसे इन्द्र वृष्टि जल से इस चराचरात्मक संसार का पालन करता है वैसे ही यह अनड्वान वृषभ वीर्य सिंचन द्वारा पशुओं की उत्पत्ति करता हुआ दूध दही धान्य आदि प्राप्त कराता हुआ संसार का पोषण करता है। यह भूत, भविष्यत् वर्तमान् तीनों काल में वस्तुओं को उत्पन्न करता और कर्मानुष्ठानों को पूर्ण कराता है॥२॥ मनुष्यों में यह

हो
मि ई के समान है। यह अनड्वान् सूर्य रूप से इस जगत को प्रकाश
प्रा विचरता है। हमारे वृषभ की ऐसी महिमा को जानने वाला
क तंनयुक्त होता है और मरने पर फिर संसार में नहीं आता॥३॥
इ कर्म के पुण्य के रूप में यह वृषभ अक्षय फल का दाता है। सोम
इस्कृत सोम अपने रस से वृषभ को पूर्ण करता है। वर्षा करने
वता धारारूप और मरुत् इसके ऐन होते हैं। यह पूरा यज्ञ ही
ोग्य दुग्ध और दक्षिणा इसको दोहन किया है। अतः अनड्वान्
ोहन करना ही अक्षय फलमय हो जाता है॥४॥ यजमान इस
ान् का स्वामी नहीं है, यज्ञ क्रिया, दाता और प्रतिग्रहीता भी
स्वामी नहीं हैं। यह सम्पूर्ण विश्व को जीतने वाला, वायुरूप
का भरण पोषणकर्त्ता है। संसार के सभी कर्म इसके हैं, यह चार
ला हम को सूर्य की प्रेरणा देता है॥५॥ जिस अनड्वान् वृषभ के
ार्थिव देह को त्याग कर देवता मुक्ति द्वार पर स्वर्ग पर चढ़े हैं,
द्वारा हम सूर्य की उपासना करते हुए सुख की इच्छा से पुण्य
न प्राप्त करते हैं॥६॥ यह अनड्वान् इन्द्राकार, अग्निरूप-प्रजापति
ब्रह्मा के समान है। यह तीनों ही वैश्वानर अग्नि में तादात्म्य रूप से
ाविष्ट हो गए॥७॥ अखिल विश्व के हितैषी वैश्वानर अग्नि में ब्रह्मा
ाविष्ट हो गए और पूर्वोक्त वृषभ में विराट् तादात्म्य रूप से प्रवेश कर
गए अतः यह वृषभ विराट् के समान है॥८॥ वृषभ के सात अक्षय
ोहनों का ज्ञाता पुरुष पुत्र, पौत्रादि संतान एवं शुभ कर्मों के फल रूप
स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है। यह जो कुछ कहा है, उसे सत्य रूप
से आप ही जानते हैं॥९॥ यह अनड्वान अलक्ष्मी को अधोमुख गिरा
कर उस पर चढ़ना और अपनी जांघों से भूमि को उद्भिन्न करता हुआ
ापने सामने चलने वाले परिश्रमी किसान को अन्न प्रदान करता है॥१०॥
ान सम्बन्धी प्रजापति के व्रत के योग्य द्वादश रात्रियों को विद्वान बताते
हैं। उतने समय में आये हुए इस वृषभ रूप प्रजापति को जो जानता है,
वही इस अनुड्व्रत का अधिकार रखता है। यह ज्ञान ही प्रजापति-सम्बन्धी
अनडुह नामक अनुष्ठान है॥११॥ पूर्वोक्त लक्षण वाले वृषभ को मैं,

सायंकाल, प्रातःकाल और मध्याह्न में भी दुहता हूँ । सब अनुष्ठान करने वालों के फलों का भी दोहन करता हूँ । इस प्रकार इस दोहन-कर्म से जो युक्त होते हैं उन अक्षुण्ण दोहन-कर्मों का मैं ज्ञाता हूँ ॥११॥

१२ सूक्त

(ऋषि—ऋभुः। देवता—रोहिणी वनस्पतिः। छन्द-गायत्री; अनुष्टुप, बृहती)

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । रोहयेदमरुन्धति ॥१॥
यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ॥२॥
स ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३॥
मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४॥
लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ॥५॥
स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥६॥
यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥७॥

हे लाल रङ्ग वाली लाक्षा ! तू मांस के घाव को भरने में समर्थ है, इस लिये खंग आदि से कटने से प्रवाहित रुधिर को तू वहीं रोक । इस टपकते हुए रक्त को शरीर में ही व्याप्त कर ॥१॥ हे पुरुष ! तुझे शस्त्रादि से घायल किया गया है और उससे होने वाली वेदना के कारण तेरा शरीर प्रवाहित हो रहा है तथा तेरा शरीर मुद्गर से चूर्ण हो गया है, तेरे उन अंगों को विधाता जोड़ को जोड़ से मिलाकर लाख से जोड़ दे ॥ २ ॥ हे घायल पुरुष ! प्रहार के कारण तेरी मज्जा अलग हो गई है अथवा तेरी हड्डी टूट गई है, वह मज्जा और हड्डी मुखी

हो और मांस कट गया है वह भी पूर्ववत् हो ॥३॥ मज्जा-मज्जा से मिले, चर्म चर्म से मिले, हड्डी पर से टपकता हुआ रक्त पुनः हड्डी को प्राप्त हो ॥४॥ हे लाक्षे ! प्रहार से पृथक् हुए लोम को लोम से मिला-कर ठीक कर, खाल को खाल से मिला, हड्डियों पर खून दौड़ने लगे । इसी प्रकार जो भी अंग टूटा हो, उसी को ठीक व्यापार के योग्य बना ॥५॥ हे पुरुष! शस्त्रादि के प्रहार से यदि तेरा कोई अंग पृथक् हो गया है तो तू मंत्र और औषधि की शक्ति से ठीक होने पर उठ खड़ा हो । जैसे रथ दौड़ता हुआ कर्म रत रहता है, वैसे ही तू भी दृढ़ शरीर वाला हो और उठकर वेग से चल॥६॥ काटने वाला शस्त्र शरीर पर पड़ कर उसे काट रहा है या फेंके हुए पत्थर से देह में पीड़ा हो रही है तो उससे टूटी हुई हड्डी इस मंत्र बल से जुड़ जाय । जैसे ऋभु रथ के विभिन्न अंगों को मिलाकर एक करता है, वैसे ही यह अथर्व-मंत्र भी शरीर के टूटे अंगों को मिलाकर ठीक करता है ॥७॥

१३ सूक्त

(ऋषि—शंतातिः देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—अनुष्टुप्)

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः ॥२॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥
आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७

हे देवगण ! इस बालक को धर्म के विषय में प्रमाद हीन करो । अध्ययन और ज्ञानादि फल से इसे सम्पन्न करो । अज्ञानवश इसके द्वारा होने वाले पाप से भी इसे बचाओ । जिन अपराधों से आयु क्षीण होती है उनसे इसे दूर करते हुए शतायुष्य करो ॥१॥ यह प्राणापान रूप दोनों वायु शरीर में चलें, स्वेद के स्थानों और उससे भी दूर तक जाँय । हे उपनीत ! इन वायुओं में जो प्राण है वह तुझे बलयुक्त करे और अपान तुझे पाप से दूर करे ॥२॥ हे वायो ! सब रोग का नाश करने वाली ओषधि लाओ । रोग को उत्पन्न करने वाले पाप को हम से दूर करो । तुम सब रोगों को दूर करने में समर्थ हो । तुम देवताओं के दूत रूप से विश्व की रक्षार्थ विचरते हो और इन्द्रियों के दूत बन कर उनका पोषण कर्म करते हो ॥३॥ इस उपनीत बालक की सब देवता रक्षा करें । इन्द्रियों के अधिष्ठात्री देवता इन्द्रियों को कर्म-समर्थ करें । मरुतों के सात गण, प्राणापान के गण तथा अन्य सब प्राणी इस प्रकार इसकी रक्षा करें कि यह पाप में लिप्त न हो ॥४॥ हे उपनीत बालक ! मैं तुझे सुखदायक मंत्रों और कल्याणमय कर्मों द्वारा प्राप्त हुआ हूँ । मैंने तुझ में अतुल बल को प्राप्त कराया है । तेरे यक्ष्मादि रोग को भी मैं तेरे से पृथक करता हूँ ॥५। मेरा यह हाथ परम भाग्यशाली है, इसमें सब रोग-शोक को दूर करने वाली ओषधियों का प्रभाव वर्तमान है । मेरे इस प्रकार के गुण वाले हाथ के सुख देने वाले स्पर्श से यह पूर्ण हो ॥६॥ हे उपनीत ! जिन प्रजापति के हाथों से निर्मित वाणी रूप इन्द्रिय की आश्रय रूप जिह्वा पहले चलती है, उन प्रजापति के हाथों से तेरा स्पर्श करता हूँ ॥७॥

१४ सूक्त

[ऋषि—भृगुः देवता—अग्नि आज्यम् । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती]

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ॥१

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥२
पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥३
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥४
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम्।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥५
अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥६
पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम्।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥७
प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम्।
ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥८
शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः सम्भृतं विश्वरूपम्।
स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥९

अज पवित्र अग्नि के ताप से उत्पन्न हुआ है। वह सबसे पहले उत्पादक प्रजापति या अग्नि को देखने लगा। प्रथम रचे अज से इन्द्र आदि देवत्व प्राप्त कर सके और उसी साधन से अन्य ऋषिगण भी उच्च लोकों को प्राप्त हुए हैं। ऐसा अजात्मक यज्ञ देवत्व आदि फलों को सिद्ध करता है ॥१॥ हे मनुष्यो ! अग्नि द्वारा यज्ञ करके तुम श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होओ। फिर अन्तरिक्ष की पीठ के समान स्वर्ग में पहुँच कर देवताओं में स्थान पाते हुए उनके समान ही ऐश्वर्यशाली होओ ॥२॥ मैं पृथिवी से अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष से स्वर्गलोक में चढ़ता हूँ। उस

स्वर्ग में दुख नही है। उससे ऊपर सूर्य मण्डल की ज्योति में मैं लीन रहता हूँ ॥३॥ यज्ञ फल से स्वर्ग प्राप्त करने वाले सांसारिक सुखों की कामना नहीं करते। जो यजमान अभीष्ट फल पाने के साधनरूप यज्ञ को जानते और उसे करते हैं, वे लोकत्रय पर विजय प्राप्त करते हैं ॥४॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के मुख्य हो, इस आह्वान योग्य स्थान में आओ। यह अग्नि इन्द्रादि को हवि पहुँचाने वाले होने से उन्हें नेत्र के समान प्रिय हैं और मनुष्यों को श्रेष्ठ लोकों के दिखाने वाले होने से नेत्र के ही समान हैं। उनके प्रकाश से प्रथम पूजन, फिर यज्ञ करने वाले कर्म के फलरूप स्वर्ग को पावें ॥५॥ हविरूप अज को दूध के समान रस युक्त घृत से युक्त करता हूँ। यह अज यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराने वाला है। ऐसे अज द्वारा हम श्रेष्ठ स्वर्ग लोक को प्राप्त होकर फिर सूर्य रूप परम ज्योति में एकाकार होते हैं ॥६॥ पाँच प्रकार से विभक्त होने वाले इस "अज" को पांच भागों में बांटो। इसमे सिर को पूर्व दिशा में और पसली वाले भाग को दक्षिण दिशा में रख ॥७॥ कमर को पश्चिम में, उत्तर पार्श्व को उत्तर में, पृष्ठ भाग को ऊपर दिशा में, उदर को नीचे की दिशा मे और मध्यमान को मध्य दिशा में स्थापित कर ॥८॥ (यह "अज" अथवा जीवात्मा के "आत्म समर्पण" का मन्त्र हैं जिसमें अपने समस्त शरीर को विश्व-हित के लिये समर्पित करने की भावना व्यक्त की गई है। इसी तथ्य को प्रकट करने के लिये यह कहा गया है कि मेरा सिर पूर्व दिशा के लिये अर्पण किया है—"दक्षिण दिशा के लिये मेरी दक्षिण कक्षा अर्पण की है"—"पश्चिम दिशा के लिए मेरा पिछला भाग अर्पण किया है"—"उत्तर दिशा के लिये मेरी बायीं कक्षा अर्पण की है।" आदि। इस प्रकार मेरा सम्पूर्ण शरीर सब दिशाओं के लिये समर्पित है और मैं सब विश्व के लिये जीवित हूँ। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के लिये मेरा आत्म-समर्पण पूर्ण हो गया) इस प्रकार सब अंगों से विश्व रूप बने परिपूर्ण "अज" को परमात्मा के आच्छादन से आच्छादित कर। हे "अज" ! तू इस लोक से स्वर्ग की ओर चढ़ता हुआ चारों दिशाओं में व्याप्त हो ॥९॥

१५ सूक्त

[ऋषि—अथर्वा । देवता—दिशः प्रभृति । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, प्रभृति]

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥२

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥३॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥५

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्गिध ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥६

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥७

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८॥

आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१०

पूर्वादि दिशायें मेघों के सहित उदय हों। जल-वृष्टि वाले मेघ, वायु द्वारा प्रेरित हों और एकत्र होकर गर्जना पूर्वक भूमि को तृप्त करें

॥१॥ सुन्दर दान वाले मरुद्गण वृष्टि प्राप्त करावें। बोये हुए जो धान्यादि के बीजों में वृष्टि जल मिलें। वर्षा की धारायें पृथिवी का अभिषेक करें। उससे अनेक प्रकार के अनाज और ओषधि रूप में उत्पन्न हों।।२।। हे मरुतो! हमारी स्तुति से प्रेरित हुए तुम जल पूर्ण मेघों को दिखाओ। जलों के प्रवाह पृथक-२ चलते हुए पृथिवी को अभिषिक्त करें। फिर पृथिवी में अनेक प्रकार की वनस्पतियां उत्पन्न हों ।।३।। हे वर्षा के अभिमानी पर्जन्य ! गर्जनशील मरुद्गण तुम्हारे स्तोता हों। तुम जलों की बूंदों से पृथिवी को भिगो दो ।।४।। हे मरुद्गण ! वर्षा के जल को समुद्र से ऊपर की ओर प्रेरित करो। वृषभ के समान गर्जनशील जल के प्रवाह पृथिवी की तृप्ति करें ।।५।। हे पर्जन्य ! सब ओर से शब्द करो। मेघों में प्रविष्ट हो गर्जन करो। तुम्हारे द्वारा प्रेरित बादल जल-पूर्ण वृष्टि को लावें। सूर्य अपनी किरणों को सूक्ष्म करते हुए अदृश्य हो जांय ।।६।। हे मनुष्यो ! सुन्दर दान वाले मरुद्गण तुम्हें तृप्त करें। अजगर से मोटे जल प्रवाह उत्पन्न हों और प्रेरित मेघ पृथिवी पर वृष्टि करें। ।।७।। हर दिशा में मेघ को प्रेरित करने वाली वायु चले फिर हर दिशा में बिजली चमके और वायु की प्रेरणा से मेघ पृथिवी पर वृष्टि करने के उद्देश्य से इकट्ठे हों ।।८। हे शोभन दानशील मरुद्गण ! मेघों में व्याप्त जल विद्युत, जलयुक्त मेघ, वृष्टि जल तथा अजगर के समान मोटे तुम्हारे प्रवाह संसार को तृप्तिकर हों ।।९।। मरुतों से प्रकट विद्युत रूप अग्नि उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों के ईश्वर हैं। वे उत्पन्न होने वालों के ज्ञाता अग्नि इन प्राणियों को प्राणदायिनी और अमृत प्राप्त कराने वाली वृष्टि प्रदान करें ।।१०।।

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नु दधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ।।११
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव ।
नीचीरपः सृज । वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ।।१२
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ।।१३

उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि ।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१४॥
खण्वखा३ खैमखा३ मध्ये तदुरि ।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१५
महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥१६

हे सूर्य ! तुम प्रजा पालक हो. समुद्र ं. वृष्टि रूप जलों को प्रेरित करो। वे अश्व के समान वेग वाले, व्यापनशील वृष्टि रूप वीर्य वृद्धि को प्राप्त हों। हे पर्जन्य ! इस प्रवृद्ध वीर्य के साथ तुम हमारे सामने आओ ॥११॥ वृष्टि का जल देकर सूर्य, तिर्यक-वृष्टि करते हुए प्राणों को तृप्ति करें। फिर तृणहीन भूमि पर श्वेत भुजा वाले मेंढ़क सुन्दर शब्द करें ॥ १२ ॥ व्रत और धार. ए पूर्वक रहने वाले ब्राह्मणों के समान पूरे वर्ष भर वायु और धूप आदि के कष्ट सहते हुए सोने वाले मेंढक वर्षा के जल से जागकर मेघों के प्रति.सुखपूर्ण वाणी में बोलें ॥१३॥ हे मेंढ़क ! तू हर्षित हो, उत्तम शब्द कर। हे तादुरि ! वर्षा के जल से पूर्ण होने वाले सरोवर में तैरता हुआ वर्षा के समान ही घोष कर॥१४॥ हे खण्वखे ! हे खैमुखे ! हे तादुरि ! तुम तीनों प्रकार की मेंढ़की अपने घोष से वृष्टि प्रदान करो। हे मेढ़को ! तुम मरुद्गण के वृष्टि करने की कामना वाले मन में अपने घोष से.वृष्टि प्रेरणा करो ॥१५॥ हे पर्जन्य! तुम समुद्र से मेघ लाओ और पृथिवी को सब ओर से सींचो। वायु वृद्धि के अनुकूल हो, अन्तरिक्ष विद्युत से युक्त हो, जल अनेक प्रकार के यज्ञ-कर्मों की वृद्धि करें। वर्षा के जल से धान्य, यव आदि तथा ओष-धियाँ पुष्ट हों ॥१६॥

१६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वरुणः । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् जगती)

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।

य स्तायन्मन्यते चरंत्सर्वं देवा इदं विदुः ॥१
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥२
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३
उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४
सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५
ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा कोशइवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७
यः समाम्यो वरुणो यो व्याम्यो यः सन्देश्यो वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥९

जो वरुण सदा रहने वाली वस्तुओं के तथा नाशवान् पदार्थों के ज्ञाता हैं, जो महिमावान पापाचारी शत्रुओं पर नियंत्रण रखते हैं और उनके कर्मों को समीप से देखते हैं, वे अतीन्द्रिय ज्ञान वाले होने के कारण सब वृत्तान्तों के जानने वाले हैं ॥१॥ जो शत्रु छल से ठगने वाला, जो अदृश्य या दृश्य रूप से घूमने वाला तथा जो कठिनता से जीवन व्यतीत करने वाला है उसे राजा वरुण जानते हैं क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं, बुरे कार्य की इच्छा पर वरुण उन्हें दण्ड देने में समर्थ हैं॥२॥ यह पृथिवी वरुण के वश में रहती है, यह बृहद्द्युलोक भी वरुण के वश में है, पूर्व-पश्चिम के दोनों समुद्र भी वरुण के दक्षिण उत्तर में पार्श्व के समान वर्तमान हैं।

इस प्रकार वे वरुण संसार को व्याप्त करते हुए सरोवर के अल्प जल में भी वर्तमान हैं ॥३॥ पाप करने वाला शत्रु कुमार्ग पर चलता है तो वह वरुण के बंधन से मुक्त न हो पावे। वरुण के दूत इस पृथिवी पर विचरण करते हुए सब वृत्तों को सूक्ष्म रीति से देखने में समर्थ हैं ॥४॥ आकाश-पृथिवी के मध्य में रहने वाले और अपने सम्मुख रहने वाले प्राणियों को वरुण विशेष रूप से देखते हैं, इसलिए उनके सभी कर्म-अकर्मों के अनुसार पाप करने वालों को जुआरी द्वारा पासे को फेंकने के समान, उठाकर फेंकते हैं ॥ ५ ॥ हे वरुण ! तुम्हारे उत्तम, मध्यम और अधम सात-सात पाश पापियों को बांधने के लिए फैले हुए हैं, वे सत्य पाश मिथ्याभाषी पापी शत्रु को संताप देने वाले हों और पुण्यात्माओं को सुख दें ॥ ६ । हे वरुण ! इस मिथ्याभाषी शत्रु को बाँध कर दण्ड दो तुम मनुष्यों के सत्यासत्य कर्मों को अपने विवेक से देखते हो अतः मिथ्याभाषी तुमसे न बचे और उसका उदर जलोदर से नष्ट होता हुआ छिन्नता को प्राप्त हो ॥ ७ ॥ वरुण का समाम्य नामक पाश सामान्य रूप से रोगी बनाता है, व्याम्य नामक पाश अनेक रूप से रुग्ण करता है, संदेश्य नामक पाश समान देश में और विदेश्य विदेश में, दैव पाश देवताओं में तथा मनुषपाश मनुष्यों पर प्रभावशाली होता है ॥८॥ हे अमुक नाम, अमुक गोत्र, अमुक माता के पुत्र ! पूर्व ऋचा में वर्णित वरुण के सब पाशों से मैं तुझे बांधता हूँ और तुझ शत्रु को उन पाशों के वश में करता हूँ ॥९॥

१७ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः । देवता—अपामार्गो वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥१॥
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ॥२
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४
दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५
क्षुधामार तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥६
तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८

हे सहदेवी ! तू ओषधि रूप से ग्रहण की जाने वाली अन्य औषधियों की स्वामिनी है। शत्रु द्वारा किये अभिचार के दोष को नष्ट करने के लिये हम तेरा स्पर्श करते हैं और सब दोषों को दूर करने के लिए तुझे समर्थ बनाते हैं ॥ १ ॥ अभिचार-दोष को नष्ट करने वाली, सत्यजित्, अभिचारों को सहन करने वाली सहनामा, अन्य के आक्रोश को दूर करने वाली शपथ-यावनी और बारम्बार अनेक रोग-नाशिनी पुनःसरा, इन ओषधियों को अन्य औषधियाँ अभिचार दोष को दूर करने के उद्देश्य से प्राप्त होती हैं ॥२॥ क्रोधपूर्वक शाप देने वाली जो पिशाची, मूर्छित करने या शरीर के रक्त का हरण करने के लिए पुत्र को आलिंगन करें, वे सब पिशाची अभिचार करने वाले के ही पुत्र का भक्षण करें ।३॥ हे कृत्ये ! अभिचारिकों ने धुँए से नीली और ज्वाला से लाल तुझे अग्निस्थान में किया है, कच्चे मृत्पात्र में, कच्चे मांस या कुक्कुट आदि में किया है तो तू कृत्याकारी को ही नष्ट कर ॥४॥ व्याधि दर्शन रूप दुःस्वप्न को, राक्षसों को, अभिचार से उत्पन्न भीषण भय को, पिशाचियों को, असमृद्धिकर अलक्ष्मियों को हम इस अभिचार-ग्रस्त पुरुष से दूर करते हैं ॥५॥ भूख से मरते हुये, प्यास से मरते हुए या भूख प्यास के नष्ट होने के कारण मरते हुए, गौ और सन्तान से

हीन होने पर हे अपामार्ग ! तू उग्र रूप है तेरे द्वारा हम इन संतापों को दूर करते हैं ।।६।। प्यास या भूख से मरना, जुए में हारना आदि सब कारणों को हे अपामार्ग ! तेरे द्वारा दूर करते हैं ।।७।। हे अभिचार-ग्रस्त पुरुष ! कृत्या द्वारा व्याप्त व्याधियों को हम अपामार्ग से दूर करते हैं, फिर तू रोग-रहित होकर चिरकाल तक रह। यह अपामार्ग अन्य सब औषधियों को वशीभूत करता है ।।८।।

१८ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः। देवता—अपामार्गो वनस्पतिः। छन्द—अनुष्टुप्)

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ।।१

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ।।२

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ।।३

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ्छायया त्वम ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ।।४

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ।।५

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमंगुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ।।६

अपामार्गोऽप माष्टुं क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ।।७

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ।।८।।

आदित्य की आभा, उनसे पृथक् कभी नहीं होती। रात्रि भी समान आयाम वाली होती है। जैसे आभा आदित्य का और दिन तथा रात्रि का समानत्व सत्व है, वैसे ही मैं अभिचारग्रस्त पुरुष के रक्षार्थ सत्य कर्म को करता हूँ, जिससे हिंसात्मक कृत्यायें व्यर्थ हो जाँय ॥१॥ हे देवगण ! जो शत्रु संताप देने वाली कृत्या को गाढ़ने के लिये आता है, कृत्या लौट कर उस अभिचारी को ही इस प्रकार आलिंगन करे, जैसे दूध पीने वाला वत्स अपनी माता से चिपट जाता है ॥२॥ जो विश्वासघाती, साथ में रहता हुआ कृत्या गाड़ कर मारना चाहता है, उस शत्रु की कृत्या प्रतिकार-कर्म द्वारा असमर्थ हो जाय और मंत्र-बल से उत्पन्न अनेकों पत्थर से उस शत्रु को नष्ट कर डाले ॥३॥ हे सहदेवी ! तू अनेक स्थानों में उत्पन्न होती है। तू हमारे शत्रुओं को छिन्न ग्रीवा और कटे केश वाले करके नष्ट करदे। तू शत्रुओं का हित करने वाली कृत्या को कृत्याकारी पर ही लौटा दे ॥४॥ जो कृत्या बीज बोने के क्षेत्र में गाढ़ी गई है, जो कृत्या गौओं के गोष्ठ में गाढ़ी गई है, जो कृत्या वायु चलने के स्थान में रखी गई और जो कृत्या मार्ग में गाढ़ी गई है, वे सब कृत्यायें इस सहदेवी से निर्वीर्य हो जायें ॥५॥ जो दुष्ट कृत्या द्वारा एक पाँव व एक उङ्गली को नष्ट करना चाहता है, वह अपने उद्देश्य में सफल न हो और उसका अभिचार कर्म निष्फल करने वाली औषधियों और मन्त्रों की शक्ति से हमारे लिये मंगलमय होता हुआ उसी शत्रु को पीड़ित करे ॥६॥ हे अपामार्ग ! माता-पिता से प्राप्त कुष्ठ, क्षय आदि संक्रामक रोग को तथा शत्रु के आक्रोश को हमसे पृथक् कर। पिशाचियों और अलक्ष्मियों को बाँध कर हटा दे ॥७॥ हे अपमार्ग ! तू यक्ष राक्षस आदि को तथा सब अलक्ष्मियों और पाप देवताओं को हमसे पृथक् कर ॥८॥

१९ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः। देवता—अपामार्गो वनस्पतिः। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम् ॥१॥

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२॥
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥३॥
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥
विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्मां अभिदासति ॥५॥
असद् भूम्याः समभवत् तद् द्यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥६॥
प्रत्यङ् हि सम्बभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७॥
शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८॥

हे सहदेवी ! तू शत्रुओं का नाश करने वाली है। तू कृत्याकारी शत्रु के पुत्र पौत्रादि को वर्षा में उत्पन्न होने वाली नड (घास) के समान ही काट कर नष्ट करदे ॥ १ ॥ हे सहदेवी ! "नृषद-पुत्र कण्व" ऋषि ने तेरा विनियोग किया है। तू यजमान के रक्षार्थ सेना के समान गमन करती है। तू जहाँ जाती वहाँ अभिचार का भय नहीं होता ॥२॥ प्रकाश से तेजस्वी सूर्य जैसे जब ज्योतियों में श्रेष्ठ हैं, वैसे ही हे सहदेवी ! तू सब ओषधियों में श्रेष्ठ है। हे अपामार्ग ! तू अपनी शक्ति से कृत्या का निष्फलकर्ता, निर्बल का रक्षक और राक्षसों को मारने में समर्थ होता है ॥३॥ हे ओषधे ! पहिले इन्द्रादि देवों ने तेरे द्वारा ही राक्षसों को दबाया था। तू अन्य ओषधियों के ऊपर रहती हुई अपामार्ग से उत्पन्न होती है ॥४॥ हे अपामार्ग ! तू असंख्य शाखाओं वाली होकर विभिन्दती नाम वाली होती है तेरा उत्पादक विभिन्दन् है। इसलिये जो हमारा विनाश करना चाहे तू उन शत्रुओं के समक्ष जाकर उन्हें नष्ट

करदे ॥५॥ हे औपधे ! तेरा व्याप्त तेज जिस भूमि को प्राप्त होता है, उसमें गाढ़ी गई कृत्या निरर्थक होकर कार्य-समर्थ नहीं होती यह निष्फल हुई कृत्या यहाँ से निकलकर कृत्याकारी का ही नाश करे ॥६॥ हे अपामार्ग ! तू प्रत्यक्ष फल वाला है। तू शत्रु के आक्रोशों को मुझ से दूर कर और उसी के पास भेज दे। शत्रु के हिंसा साधन शस्त्र या कृत्या को हमसे दूर कर ॥७॥ हे सहदेवी ! तू रक्षा योग्य सभी उपायों से हमारी रक्षा कर और कृत्या के दोष से छुड़ा। महातेजस्वी इन्द्र मुझ में तेज स्थापित करें ॥८॥

२० सूक्त

(ऋषि—मातृनामा। देवता—ओषधिः। छन्द—अनुष्टुप्)

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥१॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक्।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२॥
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७
उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥८

यो अन्तरिक्षेण पतित दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमि यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्रदर्शय ॥६॥

हे सदम्पुष्पा नाम्नी औषधे ! यह पुरुष तेरी मणि को धारण कर आने वाले भय, वर्तमान भय तथा दूर स्थित भय को देखता है । स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथिवी इन तीनों में निवास करने वाले सब प्राणियों को त्रिसंध्यामणि के धारण करने वाला साधक देखता है ॥१॥ हे औषधे ! तीन स्वर्ग, तीन पृथिवी, तीन ऊपर की दिशा, तीन नीचे की दिशा और इनमें निवास करने वाले सब प्राणियों को भी मैं तेरी धारण की हुई मणि के प्रभाव से देखता हूँ ॥२॥ हे सदम्पुष्पे ! तू स्वर्ग के देवता रूप, सुन्दर पंख वाले गरुड़ के नेत्रों की कनीनिका रूप है । जैसे थकी हुई स्त्री पालकी पर चढ़ती है, वैसे ही तू गरुड़ के नेत्र से भूमि पर उत्पन्न हुई है ॥३॥ दान आदि गुणों से विभूषित इन्द्र ने सदम्पुष्पा को मेरे दाँये हाथ में धारण कराया । हे औषधे ! तेरे द्वारा मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र सब को वशीभूत करता हुआ राक्षस आदि को भी दबाने का यत्न करता हूँ ॥ ४ ॥ हे औषधे ! राक्षस आदि को दूर करने वाले अपने गुणों को प्रकट कर, अपने रूप को गुप्त मत रख । तू सहस्रों दर्शन-साधनों से देखने वाली है, तू इन गूढ़ राक्षसों पर दृष्टि रखती हुई हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥ हे सदम्पुष्पे ! तू राक्षसों को मुझे दिखा, जिससे वे गुप्त रूप से रह कर मुझे पीड़ा न दें और राक्षसियों को भी दिखा । इसीलिए मैं तुझे धारण करता हूँ ॥६॥ हे औषधे ! तू कश्यप ऋषि की नेत्र रूप है । तू देव-कुक्कुरी सरमा का भी नेत्र है । ग्रह-नक्षत्र आदि युक्त अन्तरिक्ष में सर्य के समान विचरण करने वाले पिशाच को न छिपा ॥ ७ ॥ मैंने रक्षण के उपाय द्वारा यातुधान को वशीभूत कर लिया है, उसके द्वारा शूद्र जाति युक्त नीच अथवा ब्राह्मण जाति युक्त उच्च सभी ग्रहों को देखने में समर्थ हूँ ॥८॥ जो पिशाच अन्तरिक्ष में विचरण करता हुआ पृथिवी को अपने वश में मानता है, उस तीनों लोकों में व्याप्त पिशाच को मुझे दिखा, मैं इसका यत्न करता हूँ ॥९॥

२१ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—गावः। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥
इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम ॥२
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३॥
न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४
गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम्। ५
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥६
प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥७॥

गौऐं हमारी ओर आवें, हमारा मंगल करें। वे गोष्ठ में बैठकर हमें दुग्धादि से प्रसन्न करें। संतानवती अनेक रंग वाली गौऐं यजमान के घर में बढ़ती रहें और अनेक उषाकालों में दुहाती हुई इन्द्र का आह्वान कराने वाली हों ॥१॥ स्तुति करने वाले को इन्द्र गौ प्राप्त करने का उपाय बताते हैं और वही बहुत-सी गौऐं प्रदान करते हैं। वे यजमान तथा स्तुति करने वाले किसी का भी धन नहीं छीनते। सूर्य उस यजमान और स्तोता को दुःख-रहित स्वर्ग में प्रतिष्ठित करते हैं। उस स्वर्ग में अयाज्ञिक नहीं जा पाते ॥२॥ इन्द्र प्रदत्त गौऐं नाश को प्राप्त न हों, चोर भी उन्हें नष्ट न करें शस्त्र इन्हें पीड़ित न कर पावें। यजमान जिन गौओं के दूध से देव पूजन करता और जिन गौओं को दक्षिणा रूप

में देता है, वह यजमान चिरकाल तक उन गौओं से सम्पन्न रहे ॥३॥ हिंसक व्याघ्रादि पशु इन गौओं के पास न आवे। गौऐं कटे हुये मांस पकाने वाले की ओर गमन न करें। इस यजमान के भय रहित स्थान की ओर विचरण करती हुई प्राप्त हों ॥४॥ इन्द्र ऐसा करें जिससे मेरे पास गोएँ हों। यह गौएँ ही पुरुष के लिये धन हैं। अभिषुत सोम गोरस में सिद्ध किया जाता हैं। हे मनुष्यो! यह गौएँ ही इन्द्र हैं। इनके दुग्ध-घृतादि से युक्त हवि द्वारा मैं हार्दिक भाव से इन्द्र का पूजन करता हूं ॥५॥ हे गौओं! तुम अपने दुग्धादि रस से निर्बल प्राणी को पुष्ट करो। असुन्दर अंग वाले पुरुष को सुन्दर बनाओ। तुम्हारा दुग्धादि परम प्रशंसित है ॥६॥ हे गौओं! सुन्दर घास वाली भूमि में चरती हुई स्वच्छ जल का पान करो। तुम संतानों से युक्त होओ। हिंसक व्याघ्र तुम्हें न पा सकें और चोर भी न चुरा सकें। ज्वर के अभिमानी देवता रुद्र का शस्त्र तुम पर न पड़े ॥७॥

२२ सूक्त

(ऋषि—वशिष्ठः अथर्वा वा। देवता—इन्द्रः क्षत्रियो राजा। छन्द—त्रिष्टुप्)

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥१॥
एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥२॥
अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥३॥
अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघेइव धेनू।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशुनाम् ॥४॥
युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्र येन जयन्ति न पराजयन्ते।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥५॥

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥६॥
सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥७॥

हे इन्द्र ! इस राजा को पुत्र, पौत्र, रथ, सम्पत्ति आदि से युक्त करो, वीर पुरुषों में इस राजा को किसी का मुखापेक्षी मत बनाओ। इसके सब शत्रुओं को निर्वीय कर इसके वशीभूत करो । मैं अपने मंत्र-बल से इसे श्रेष्ठ लोकपाल बनाता हूँ ॥१॥ हे इन्द्र ! इस राजा को जनता के साथ हेल-मेल वाला बनाओ । इस राजा के शत्रु को गाय, अश्व तथा मनुष्यों से शून्य करो । यह राजा सब क्षत्रियों में मुकुटरूप हो । सब राष्ट्रों और पशुओं को इसके वशीभूत करो । २॥ यह राजा सुवर्णादि धनो का और प्रजाओं का स्वामी हो । हे इन्द्र ! शत्रुओं को हराने वाले तेज को इस राजा में प्रतिष्ठित करो॥३॥हे आकाश-पृथिवी ! हमारे राजा को बहुत ऐश्वर्य दो । जैसे दुहने वाले को गौ बहुत-सा धन देती है, वैसा ही दो । धन बढ़ने पर यह यज्ञादि कर्म द्वारा इंद्र का स्नेहपात्र हो । इन्द्र का स्नेहपात्र होने से वृद्धि होने पर औषधियों और पशुओं को भी यह राजा प्रिय हो जाय ॥४॥ हे राजन ! परम श्रेष्ठ इन्द्र को तेरा मित्र बनाता हूँ । इन्द्र की प्रेरणा से तेरे मित्र शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त करें । जो इंद्र तुझे वीरों और राजाओं में मुख्य बनाते हैं और जो मनुवंशीय पुरूरवा आदि राजाओं को अत्यन्त वीर और गुण-युक्त बनाते हैं, मैं उन इंद्र को तेरा मित्र बनाता हूँ ॥५॥ हे राजन् तुम्हारे शत्रु तुमसे दबते रहें, तुम सर्वश्रेष्ठ होओ । इंद्र के मित्र होकर तुम वृषभ के समान पराक्रमी होकर शत्रुओं से भोग-साधन ऐश्वर्य को छीन लाओ ॥६॥ हे राजन ! अपनी आज्ञा से अपनी प्रजाओं पर शासन करो । तुम व्याघ्र के समान ही आक्रमण करके शत्रुओं को संताप-मय करो । इंद्र की मित्रता से वृषभ के समान अत्यंत पराक्रमी होकर शत्रुओं के ऐश्वर्य को नष्ट करो ॥७॥

२३ सूक्त

(ऋषि—मृगारः। देवता—अग्नि। छंद—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्तिः)

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पांचजन्यस्य बहुधा यमिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन्।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥
यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम्।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥
सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥
येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥
येन देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन्।
येन देवाः स्व राभरंत्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम्।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

जिन अग्नि को देवयाग, पितृयाग, भूतयाग, मनुष्ययाग और ब्रह्मयाग द्वारा आराधना की जाती है, जिन वर्णों में पाँचवां निषाद है, उन वर्णों से तथा गंधर्व, अप्सरा, देवता, राक्षस और असुर इनके द्वारा होने वाले यज्ञों में जिनकी आराधना की जाती है, उन अग्नि की महत्ता को मैं जानता हूँ। हम जिन अग्नि को प्रदीप्त करते हैं;जो सब प्राणियों में जठराग्नि रूप में रमे हैं, वे अग्नि पाप से हमारी रक्षा करें ॥१॥ हे अग्ने! तुम उत्पन्न हुओं के ज्ञाता हो। तुम पूजनीय देव के पास हवि को जैसे पहुँचाते हो, और यज्ञ के भेदों को जानते हुए उन्हें करते हो, वैसे ही हमको सुन्दर बुद्धि प्राप्त कराते हुए पाप से रक्षा करो ॥२॥ यज्ञ के

आधार, हविवाहक अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। वे राक्षसों के नाशक और यज्ञों के वृद्धि करने वाले हैं। उन अग्नि को घृताहुतियों से प्रदीप्त करते हैं, वे पाप से मेरी रक्षा करें ॥३॥ मंत्रों द्वारा सुन्दर जन्म वाले, उत्पन्न हुओं के ज्ञाता, सभी प्राणी जिन्हें जानते हैं, ऐसे मनुष्य हितैषी और हवि-वाहक अग्नि का हम आह्वान करते हैं,वे हमको पापों से बचावें ॥४॥ जिन अङ्गराओं ने अग्नि के साथ मित्रता कर आत्म-शक्ति को चैतन्य किया है, जिन देवताओं ने आसुरी माया को पृथक् किया है तथा पणि नामक असुरों पर विजय प्राप्त की है, वे अग्नि हमको पापों से मुक्त करें ॥५॥ इन्द्रादि ने जिन अग्नि की सहायता से अमृत को पाया और जिनके द्वारा, वृक्षादि ओषधियों को मधुर रस से सम्पन्न किया,जिन अग्नि के द्वारा यजमान या स्तोता स्वर्ग प्राप्त करते हैं,वे अग्नि हमें पाप से छुड़ावें ॥६॥ जिनके शासन में यह संसार है, जिनके तेज से यह ग्रह नक्षत्र आदि प्रकाशित होते हैं, पृथिवी में उत्पन्न प्राणी जिन अग्नि के वश में हैं, मैं उन अग्नि देव की स्तुति करता हुआ बारम्बार उनका आह्वान करता हूँ ॥७॥

२४ सूक्त

(ऋषि—मृगारः। देवता—इन्द्रः। छन्द—शक्वरी; त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगु।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥
य उग्रीणामुग्रबाहुर्युर्यो दानवानां बलमारुरोज।
येना जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥
यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदंति नृम्णम्।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३॥
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥
यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवंत इषुमन्तं गविष्टौ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यातायाहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥
यः सङ्ग्रामान् नयति संयुधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७॥

हम इन्द्र के ऐश्वर्ययुक्त महत्व को जानते हैं । वृत्र नाशक इन्द्र के समक्ष कहे जाने वाले स्तोत्र मेरे पास हैं । जो इन्द्र उत्तम मर्म वाले यजमान के आह्वान का निरादर नहीं करते, वे हमें पापों से मुक्त करें ॥१॥ वे इन्द्र शत्रु सेनाओं में फूट कराने वाले हैं, जिन्होंने मेघों को फाड़ कर जलों का जीता और दानवों की शक्ति को नष्ट कर दिया, जिन्होंने वृत्र का नाश कर नदियों और समुद्रों को उससे प्राप्त किया औरपणियों की गौओं को भी जीता, वह इन्द्र हमें पाप से छुड़ावें ॥२॥ जो इन्द्र फल प्रदान द्वारा मनुष्यों का इच्छित पूर्ण करते हैं, जो स्वर्ग प्राप्त कराने में समर्थ हैं जिनकी इच्छा के लिये सोम को सिद्ध किया जाता हैं, जिनका सोमयाग सात होताओं द्वारा हर्षकारी होता है, वे इन्द्र हमें पाप से मुक्त करें ॥३॥ जिन इन्द्र के निमित्त अवटों में यूप स्थापित किये जाते हैं, जिनके यज्ञ के लिये सेंचन समर्थ वृषभ और वंध्या गौ होते हैं, जिनके लिये सोम रस छन्ने से टपकता है, वे हमको पाप से मुक्त करें ॥४॥ जिन इंद्र की कृपा की कामना (सोमयुक्त यजमान) करता है, गौओं का पणियों द्वारा हरण करने पर जिन्हें बुलाया जाता है, जिनमें असाधारण पराक्रम है, वे इंद्र हमको पाप से मुक्त करें ॥५॥ जो इंद्र कर्म के लिये जाने जाते हैं; जिनका वृत्र हनन आदि कार्य प्रशंसात्मक है, जिनके वज्र ने वृत्र को मार डाला, वे इंद्र हमको पाप से बचावें ॥६॥ जो इंद्र युद्ध में भले प्रकार पहुँचाते हैं, जो इंद्र जोड़ों को ससृष्ट करते हैं, मैं स्तोता उन इंद्र को बारम्बार आहूत करता हूँ । वे पाप से मेरी रक्षा करें ॥७॥

२५ सूक्त

(ऋषि—मृगारः । देवता—वायुसवितारौ । छंद—त्रिस्टुप्; पंक्तिः बृहती)

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः ।

यो विश्वस्य परिभू वभूवथुस्तौ नो मुञ्चत मंहसः ॥१॥
ययोः सङ्ख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे।
ययोः प्रायं नांवानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
तव व्रते निर्विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्ररते चित्रभानो।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम्।
स ह्यूर्जया सृजथः सं वलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम्।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहशः ॥५॥
प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वंतं मत्सरं मादयाथः।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामिन्नस्थिरन्।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

हम वायु और सूर्य के कर्मों को जानने वाले हैं, हे वायो! हे सूर्य! तुम समस्त प्राणियों में व्याप्त रह कर संसार की रक्षा करते और उसे धारण करते हो। तुम हमें सब बुरे कर्मों की जड़ पाप से बचाओ ॥१॥ वायु और पृथिवी के श्रेष्ठ कर्म भले प्रकार प्रसिद्ध हैं। उनके द्वारा आकाश में जल धारण किया जाता है, कोई देवता उनके श्रेष्ठ ढंग पर नहीं चल सकता। वे वायु और इन्द्र मुझे पाप से बचावें ॥२॥ हे सूर्य! तुम्हारी सेवा करने के लिए मनुष्य नियम में रहते हैं। तुम्हारे उदय होने पर सब अपने-अपने कामों में लगते हैं। हे वायु और सूर्य! तुम दोनों ही सब प्राणियों के रक्षक हो, अतः पाप से हमारी रक्षा करो ॥३॥ हे वायो! तुम और सूर्य राक्षसों और तेजमयी कृत्या से हमको दूर रखो! अन्न-रस से उत्पन्न पुष्टि हमको प्राप्त हो। तुम हमारे पाप को पृथक करो ॥४॥ सविता मुझे ऐश्वर्य दें, शरीर में बल दें सुख से पूर्ण करें। वायु और सूर्य! इस यजमान को अत्यन्त तेज और आरोग्यता से युक्त

करो ।।५।। हे सविता, हे वायो ! इस हर्षकारी सोम से तृप्त होकर हमारी रक्षा के लिए सुबुद्धि दो और महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हुए पाप से हमारी रक्षा करो ।।६।। वायु और सूर्य के समक्ष हमारी उत्तम फल वाली स्तुतियाँ उपस्थित हैं । वे दानादि गुण वाले दोनों देवता मुझे अनर्थों की जड़ पाप से बचावें । उनकी स्तुति करता हूँ ।।७।।

२६ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

[ऋषि-मृगार : । देवता—द्यावापृथिवी । छन्द—जगती; त्रिष्टुप्]

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता ।
य जनानि प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ।।१।।
प्रतिष्ठे ह्यभवत वसूना प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ।।२।।
असन्तापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ।।३।।
ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ।।४।।
ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ।।५।।
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ।।६।।
यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ।।७।।

हे सुन्दर भोग-सम्पन्न, समान चित्त वाले आकाश-पृथिवी ! मैं तुम्हारी महिमा को जानता हुआ स्तुति करता हूँ । तुम दोनों अपरिमित मार्गों वाले एवं विस्तृत हो । तुम देवता और मनुष्य दोनों के ऐश्वर्य के निमित्त रूप हो । तुम पाप से हमारी रक्षा करो ।।१।। हे द्यावा पृथिवी!

तुम धनों को प्रतिष्ठित करने वाली हो, सब प्राणियों की अधिष्ठान रूप हो, दानादि गुणों से युक्त और सब प्रकार के मंगलों से युक्त हो, तुम मेरे सुख में निमित्त रूप, बनो और हमको पापो से छुड़ाओ ।।२।। सब प्राणियों के दु.ख दूर करने वाले, गम्भीर, विस्तृत, ऋषि द्वारा नमस्कार योग्य ऐसे द्यावा पृथिवी का आह्वान करता हूँ वे मुझे सुख देने वाले हों और पाप से बचावें ।।३।। हे आकाश पृथिवी ! तुम सब प्राणियों में अमृतत्व की स्थापना करते हो, चरु पुरोडाश आदि हवियों को धारण करते हो। तुम नदियों को धारण करने वाले हो। तुम मेरे लिए सुख के निमित्त बनो और हमको पाप से बचाओ ।।४।। हे आकाश पृथिवी ! तुम गौओं को पुष्ट करते हो, वनस्पतियों का पोषण करते हो। तुम्हारे मध्य जो प्राणी निवास करते हैं, वे तुम दोनों क सहित मेरे लिये सुख के हेतु हों और मुझे पाप से छुड़ावें ।।५।। हे आकाश पृथिवी ! तुम संसार का अन्न से पोषण करते हो और प्राणियों को जल से तृप्त करते हो। तुम्हारे बिना मनुष्य कोई काय नही कर सकता। तुम दोनों सुख के कारण होओ और मुझे पाप से मुक्त करो ।।६।। जिस मनुष्य कृत या दैवकृत पाप का फल मुझे जला रहा है, और जिस-जिस कारण से मैंने अन्य पाप किये हैं, उन सब पापों को उनके फल सहित पृथक् करने के लिये मैं आकाश पृथिवी की स्तुति करता हुआ आहुति देता हूँ। वे मुझे पाप से छुड़ावें ।।७।।

२७ सूक्त

(ऋषि—मृगारः। देवता—मरुतः। छन्द—त्रिष्टुप

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१।।
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातृंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।२।।
पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।३।।

अपः समुद्राद् दिवमुद् वहन्ति दिव स्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४॥
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५॥
यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसव स्तस्य निष्कृतेरते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६॥
तिग्ममनीकं विदित सहस्वन् मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७॥

मैं मरुद्गण की महिमा को जानता हूँ । वे मुझे अपना कहें और हमारे अन्न की रक्षा करें। वे हमें रणक्षेत्र कुशल रखें । मैं उन्हें रक्षार्थ आहूत करता हूँ, वे मुझे पाप से बचावें ॥१॥ जो मरुद्गण मेघ को अन्तरिक्ष में विस्तृत करते हैं और अन्न, वृक्ष, औषधि में वृष्टि जल को सींचते हैं । मैं उन मरुतों की आराधना करता हूँ । वे मुझे पाप से मुक्त करें ॥२॥ हे मरुतो ! तुम गौओं के दूध को सब शरीर में व्याप्त करते हो, औषधि के रस को भी देह में रमाते हो । ऐसे तुम मुझे सुख प्रदान करो और पाप से छुड़ाओ ॥३॥ जो मरुद्गण अन्तरिक्ष में मेघों को प्रेरित करते और समुद्र में जल पहुँचाते हैं, वे जलों के स्वामी मरुद्गण हमको पापों से छुड़ावें ॥४॥ जो मरुद्गण पक्षियों को मेद से रचते और मनुष्यों को अन्न से तृप्त करते हैं, जो मरुद्गण मेघ-स्थित जलों के स्वामी होते हुए सर्वत्र वृष्टि करते हैं, वे हम को पाप से बचावें ॥५॥ यह अनुभव प्राप्त पाप मरुतों के अपराध से मिला है,उस दुःख को दूर करने के लिए मरुद्गण सामर्थ्यवान् हैं । हे मरुतो ! तुम हम को पाप से मुक्त करो॥६॥ सात गण के रूप में सेना के समान,अत्यन्त विकराल, प्रसिद्ध मरुतात्मक इस रणक्षेत्र में दुःसह होता है । मैं इन मरुतों की स्तुति करता हुआ उन्हें बुलाता हूं । वे मुझे पाप से मुक्त करें ॥७॥

२८ सूक्त

(ऋषि—मृगारः । देवता—भावाशर्वौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदितावियुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

हे संसार के उत्पत्ति करने वाले. हे संसार का संहार करने वाले ! मैं तुम्हारी महिमा को जानता हूँ । तुम मनुष्यों के, पशु आदि सृष्टि के ईश्वर हो । सम्पूर्ण विश्व तुम्हारी आज्ञा में रहता है । हे शिव के रूप द्वय ! तुम हमको सब अनर्थों की जड़ पाप से मुक्त करो॥१॥ जिन भव शर्व देवताओं के पास या दूर के देश में जो कुछ है उस पर उनका ही अधिकार है, वे धनुष पर बाण चढ़ाने और चलाने में प्रसिद्ध हैं । वे दुपायों, चौपायों के स्वामी हमको पाप से मुक्त करें ॥२॥ सहस्राक्ष, वृत्र संहारक भव और शर्व से गोचर भूमि दूर रहती है । मैं इन शिव के दो रूपों का आह्वान करता हूँ ॥३॥ हे भव और शर्व ! तुम दोनों ने सृष्टि के आरम्भ में अनेक प्राणियों की रचना

की थी, उन मनुष्यों में शत्रु-भाव और उनके पापों के अनुसार अभिनीप्ति को तुम्हीं बनाते हो। तुम दुपायों और चौपायों के स्वामी हो। तुम हमको पाश से मुक्त करो ॥४॥ जिन भव-शर्व के हिंसामय शस्त्रों से कोई नहीं बच सकता, जो दुपायों चौपायों के एक मात्र स्वामी हैं वे हमको अनर्थों के जड़ पापों से छुड़ावें ॥५॥ जो शत्रु कृत्या कर्म से अनिष्ट करता है और जो हमारी संतान को नष्ट करता है, इन दोनों प्रकार के शत्रुओं पर भव और शर्व वज्र प्रहार करें और वे दुपायों-चौपायों के स्वामी हमको पाप से बचावें ॥६॥ हे भव और शर्व! तुम हमारे शत्रुओं का शस्त्रों से आलिंगन कराओ, हिंसक राक्षसों को भी ऐसा ही करो। हमारे पक्ष में बात कहो। मैं तुम्हारी स्तुति करता हुआ तुम्हें बुलाता हूँ। मुझे पाप से मुक्त करो ॥७॥

२९ सूक्त

(ऋषि–मृगारः। देवता –मित्रावरुणौ। छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम्।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम्।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥

ययो रथःसत्यवर्त्मर्जु रश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

हे मित्रावरुण ! तुम जल और यज्ञ की वृद्धि करने वाले हो । मैं तुम्हारी महिमा का गान करता हूँ । तुम शत्रुओं को स्थानच्युत करते और सत्य निष्ठा वालों की रक्षा करते हो तुम हमको बुराइयों की जड़ पाप से मुक्त करो ॥१॥ हे मित्रावरुण ! तुम समान ज्ञानी और समान प्रयोजन वाले हो । तुम वैरियों को स्थान-च्युत करते और सत्य-प्रतिज्ञ की रक्षा करते हो । तुम रात्रि और दिन के अभिमानी देवता हो अतः प्राणियों के सब कर्मों को जानते हो । तुम अभिषुत सोम को प्राप्त करने वाले हो । हमको पाप से छुड़ाओ ॥२॥ हे मित्रावरुण ! तुम "अङ्गिरा" ऋषि की रक्षा करते हो । "अगस्त्य" 'अत्रि' 'कश्यप' और 'वसिष्ठ' नामक ऋषियों के रक्षक हो । अतः पाप से मेरी भी रक्षा करो ॥३॥ हे मित्रावरुण ! 'श्यावाश्व' 'वध्र्यश्व', 'पुरुमीढ़' 'विमद' 'अत्रि' और सप्त ऋषियों के तुम रक्षक हो । तुम हमको पापों से बचाओ ॥४॥ हे मित्रावरुण ! तुमने 'भरद्वाज' 'गविष्ठिर','विश्वामित्र','कुत्स', 'कक्षीवन्' और 'कण्व' नामक ऋषियों की रक्षा की है : तुम हमको पापों से बचाइये ॥५॥ हे मित्रावरुण ! तुमने 'मेधा-तिथि', 'त्रिशोक' 'उशना', 'गोतम' और मुद्गल' नामक ऋषियों की रक्षा की है । अतः तुम मेरी पाप से रक्षा करो ॥६॥ मिथ्यामार्ग में भ्रमने वाले पुरुषों को बाधा रूप, जिन मित्र वरुण का सत्यमार्ग वाला रथ सामने आता है,मैं उनका स्तोत्र द्वारा आह्वान करता हूँ । वे मुझे पाप से बचावें ॥७॥

३० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वाक् । छन्द—त्रिष्टप्; जगती)

अहं रुद्रेभिर्व सुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।१॥
अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
ता मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भरिस्थात्रां भर्यावेशयन्तः ॥२॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३॥
मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धयं ते वदामि ॥४॥
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥५॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या यजमानाय सुन्वते ॥६॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥
अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवो पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥८॥

मैं ग्यारह रुद्र और आठ वसुओं के रूप से विचरती हूँ, धाता आदि द्वादश आदित्य और विश्वेदेवा रूप से भी विचरती हूँ। मैं ब्रह्मवादिनी परब्रह्मात्मिका हूँ। मैं मित्रावरुण का भरण करती, इन्द्राग्नि और अश्विद्वय को धारण करती हूँ ॥१॥ मैं ब्रह्मात्मिका दिखाई पड़ने वाले सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ, इसलिये आराधकों को ऐश्वर्य प्राप्त कराती हूँ। मैंने परब्रह्म से साक्षात् किया है, इसलिए यज्ञयोग्य देवताओं में प्रमुख हूँ। ऐसी मुझे, फलदाता देवता अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार देवगण जो कुछ करते हैं, वह सब मेरे निमित्त ही होता है ॥२॥ मैं स्वयं आत्मरूपा हूँ। मैं इन्द्रादि देव और मनुष्यों को भी प्रिय ब्रह्मात्मक वस्तु का उपदेश करती हूँ। मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ उसे प्रबल बनाती हूँ। मैं उसे ईश्वर, सृष्टा और ऋषि बना कर सुन्दर बुद्धि से सम्पन्न करती हूँ ॥३॥ अन्न भक्षण करने वाला भोक्ता मेरे द्वारा ही खाता है, देखना, सुनना, श्वास लेना आदि सभी कार्य मेरे द्वारा ही किये जाते है। मैं इस प्रकार अन्तर्यामी रूप

से व्याप्त हूँ। जो मुझे नहीं जानते, वह उपक्षीण हो जाते हैं। हे मित्र! यह भक्ति करने के योग्य जो कुछ मैंने कहा है, उसे ध्यान से सुन ॥४॥ त्रिपुरासुर को जीतने के लिये मैं ही धनुष उठाती और स्तुति करने वालों के लिये युद्ध करती हूँ। मैं स्वर्ग और आकाश को अदृश्य रूप से व्याप्त करती हूँ ॥५॥ शत्रुओं का जहाँ नाश हो जाता है, ऐसे स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं से सम्बन्धित सोम का मैं पोषण करती त्वष्टा, पूषा और भग देवता का भी मैं ही पोषण करती हूँ और मैं ही हविदाता यजमान को भी यज्ञ का फल रूप ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ ॥६॥ इस दीखते हुये लोक के शिर रूप सत्यलोक में निवास करने वाले विधाता को मैं ही उत्पन्न करती हूँ। इस संसार की मैं ही कारण रूप हूँ, ब्रह्म चैतन्य की निमित्त भी मैं हूँ। समुद्र में वडवानल और विद्युत रूप तेज भी मेरा है। मैं सब प्राणियों को प्रकट करती स्वर्ग और ब्रह्म में अव्यस्त विकारों को मायात्मक देह से स्पर्श करती, पृथिवी के ऊपर पिता रूप द्युलोक को प्रेरित करती और अंतरिक्ष में जल के विकार रूप देवताओं में जो ब्रह्म व्याप्त है, उसके द्वारा मैं सब छूती हूँ ॥७॥ मैं किसी अन्य की सहायता के लिये बिना सब प्राणियों का उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हूँ द्युलोक, पृथिवी और सम्पूर्ण विकारों से रहित ब्रह्मचैतन्य रूप वाली मैं अपनी ही महत्ता से से ऐसी शक्तिशालिनी हो गई हूँ ॥८॥

३१ सूक्त (सातवां अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मास्कन्दः। देवता—मन्युः। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन्।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥१॥
अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व। २
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून्।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥३॥

एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि ।
अकृतरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४॥
विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।
क्त्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥
संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७॥

हे मन्युदेव ! तुम उत्साह के अभिमानी देवता और मरुद्गण के समान वेगवान हो । तुम्हारे साधन द्वारा रथयुक्त शत्रु को पीड़ित करते हुए हमारे शूर अग्नि के समान दुर्धर्ष होकर अपने हथियारों को तेज कर शत्रु के सामने पहुँचे ॥१॥ हे मन्यो ! तुम अग्नि के समान तेजस्वी होकर शत्रु को वशीभूत करो । तुम हमारी सेना के सेनापति होकर युद्ध में आमंत्रित होओ । तुम शत्रुओं को नष्ट कर उनका धन बाँट कर हमको दो ॥२॥ हे मन्यो ! तुम्हारा बल किसी के रोकने से नहीं रुकता। तुम सभी मनुष्यों का वशीभूत कर लेते हो । अतः इस राजा के शत्रुओं के हाथी, अश्वादि को मारते हुए, उनके सैनिकों का तिरस्कार करते हुए उन्हें नष्ट कर डालो ॥३॥ हे मन्यो ! स्तुति करने पर तुम शत्रुओं को वशीभूत करने में अत्यन्त समर्थ होते हो । तुम हमारे प्रजाजनों में प्रविष्ट होकर उन्हें युद्ध में कुशल बनाओ । हम तुम्हारी सहायता से इस विजय घोष को करते हैं ॥४॥ हे मन्यो ! हम तुम्हारे स्थान की स्तुति करते हैं, तुम जिस स्थान से प्रकट होते हो, हम उसे जानते हैं। तुम इन्द्र के समान प्राचीन यत्नों को कहते हो, इस युद्ध में हमारे रक्षक बनो ॥५॥ हे मन्यो! तुम प्रचण्ड बल वाले हो । तुम शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हो । तुम अनेक यजमानों द्वारा आहूत किये जाते हो । तुम महान् ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले कर्म के रूप में हम को प्राप्त होओ ॥६॥ मन्युदेव और

वरुण दोनों ही अपने लाये हुये धन को एकत्रकर हमें प्रदान करें; हमारे शत्रु भयभीत होकर हार जांय और भाग कर छिप जांय ॥७॥

३२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मास्कन्दः। देवता—मन्युः। छंद—जगती, त्रिष्टुप्)

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥
अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३॥
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४॥
अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥५॥
अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन्।
मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूंरुत बोध्यापेः ॥६॥
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ॥७॥

हे मन्यो! तुम्हारी सेवा करने वाले पुरुष, शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले बल को पुष्ट करते हैं। तुम्हारी सहायता से वे क्षीण करने वाले शत्रु को वशीभूत करते हैं ॥१॥ मन्यु ही इन्द्र हैं। सब देवता मन्यु ही हैं। देवाह्वाक अग्नि भी मन्यु हैं। वरुण भी मन्यु हैं। सब मनुष्य मन्यु की ही स्तुति करते हैं, क्योंकि वही मन्यु रूप में वर्तमान हैं। हे मन्यो! तुम हमारे दुःख हटाते हुए रक्षा करो ॥२॥ हे मन्यो! तुम अमित्रों के घातक तथा शत्रु के

मारने वाले हो। तुम हमारे सामने आकर हमारे शत्रुओं का नाश करो और उनका सब धन हमको प्राप्त कराओ ॥३॥ हे मन्यो! तुम स्वयं अपनी आत्मा में उदित होते हो। सबके दृष्टा और शत्रुओं को वश में करने वाले हो। सब मनुष्य तुम्हारे वश में रहते हैं। तुम युद्ध-काल में हमारे शरीरों में बल स्थापित करो ॥४॥ हे मन्यो! तुम उत्तम ज्ञानी हो। तुम स्तुति न किये जाने के कारण युद्ध से पृथक रहते हो। मैंने तुम्हें सन्तुष्ट करने वाले कर्म को न कर तुम्हें रुष्ट कर दिया है। तुम हमको बल देते हुए आओ ॥५॥ हे मन्यो! मैं तुम्हारी स्तुति करने में प्रवृत्त हूँ, तुम मेरे सामने होते हुए शत्रुओं की ओर प्रस्थान करो। हम और तुम दोनों शत्रुओं को मारें। ॥६॥ हे मन्यो! तुम हमारे सामने आओ। हमारा मंत्रित्व करने के लिये हमारे दक्षिण में प्रतिष्ठित होओ। फिर हम शत्रुओं को खूब मारें। मैं तुम्हें सोमरस की आहुति देता हूँ, तुम और हम दोनों गोपनीय रूप से सोम पीलें ॥७॥

सूक्त ३३

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् ॥१
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥२
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ।४
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम् ।५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ।६
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ॥७
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥८

हे अग्ने! तुम्हारी कृपा से हमारा पाप दूर हो। तुम हमको सब ओर से धन से सम्पन्न बनाओ। तुम्हारी कृपा से हमारा पाप दूर हो ॥१॥ हे अग्ने! इस सुन्दर स्थान पाने, सुन्दर मार्ग मिलने और धन प्राप्त

कराने की कामना करते हुए तुम्हें हवियों से तृप्त करते हैं। तुम्हारी कृपा से हमारा पाप दूर हो ॥२॥ हे अग्ने ! मैं सब स्तोताओं से अधिक आपकी स्तुति करने वाला हूँ। मेरे पुत्रादि भी आपके अनन्य स्तोता हैं। अतः तुम्हारी कृपा से हमारा पाप दूर हो॥॥३॥ हे अग्ने ! तुम्हारे स्तोता पुत्र-पौत्रादि संतति से युक्त होते हैं अतः तुम्हारी महिमा को जानने वाले हम भी पुत्र-पौत्रादि से युक्त हों और तुम्हारी कृपा से हमारा पाप भी दूर हो॥४॥पराक्रमी अग्नि की दीप्तियां सब ओर से हमारा मंगल करने में लगती हैं.अतः अग्नि के तेज से हमारा पाप दूर हो॥५॥हे अग्ने!तुम सर्वत्र व्यापक हो,ससार तुम्हारे वश में है, तुम्हारी कृपा से हमारा पाप दूर हो ॥६॥हे अग्ने!जैसे नौका समुद्र से पार करती है,वैसे ही तुम हमको शत्रुओं के पार करो। तुम्हारी कृपा से हमारा पाप दूर हो ॥७॥ हे अग्ने ! जैसे नौका द्वारा समुद्र से पार पहुँचते हैं वैसे तुम हमारी रक्षा के लिये पाप से पार करो। तुम्हारी कृपा से हमारा पाप दूर हो जाय ॥८।

३४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—ब्रह्मौदनम्। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, शक्वरी)

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठ वामदेव्यमुदरमोदनस्य।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥१
अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥२॥
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥३॥
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥४॥
एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली।

एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना ।
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥५॥
घृतह्लदा मधुकूलाः सुरादकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना ।
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥६॥
चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना ।
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥७॥
इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनु कामदुघा मे अस्तु ॥८॥

रथन्तर सोम इस अन्न का शिर है, बृहत्साम इसका पृष्ठ, वामदेव का देखा हुआ भाग इसका उदर, गायत्र्यादि छंद इसके पंख हैं और इसका मुख सत्य नाम वाला है। इस प्रकार विकसित अवयवों वाला यह सब यज्ञ ब्रह्म से भी उच्च रूप में प्रकट हुआ ॥१॥ जो शरीर हड्डी से युक्त षट् कोष वाला नहीं हैं, वे सब यज्ञ के कर्त्ता वायु द्वारा पवित्र हुए उज्ज्वल लोक में जाते हैं। इनके भोग-साधन इन्द्रिय को अग्नि भस्म नहीं करते। वहाँ पुण्य फल के भोग रूप अनेक भोगों का समूह इन्हें प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जो यजमान उपर्युक्त रीति वाले ओदन को पका कर ब्राह्मणों को देता है, उसे दरिद्रता नहीं रहती। वह सब यज्ञ करने वाला मृत्यु के पश्चात् यम के लोक में सुखपूर्वक वास करता है और उनकी अनुमति से देवताओं का सामीप्य प्राप्त करता हुआ सोम पान द्वारा प्रसन्न होता है ॥३॥ जो यजमान, उपरोक्त प्रकार ओदन बनाकर ब्राह्मणों को देते हैं, यमराज उस सर्वयज्ञ वाले को वीर्य-हीन नहीं करते। वह पृथिवी में रथ पर चढ़ा घूमता और अंतरिक्ष में पंखयुक्त होकर उच्च लोकों को भी प्राप्त होकर भोगों को भी प्राप्त करता है ॥४॥ पूर्वोक्त रीति से यजमान ओदन को बनाकर उसके फलरूप स्वर्ग में जाता है, अण्डाकार कन्द से उत्पन्न श्वेत कमल को सरोवर में स्थित करे और पद्मकंद उत्पलकंद तथा खुर की आकृति

वाले जलोत्पन्न पदार्थ को भी सरोवर में स्थिति करे। दही, मधु और घृतादि की यह धारायें मधुर भाव को पुष्ट करती हुई स्वर्ग में तुझे प्राप्त हों और जल से सम्पन्न पुष्करिणी भी तेरे समीप आवे ।।५।। हे सर्वयज्ञ कर्त्ता ! घृत-युक्त सरोवर वाली, मधु से भरे किनारे वाली, दुग्ध, दही और जल से पूर्ण धारायें मधुमय पदार्थों को पुष्ट करती हुई तुझे स्वर्गलोक में प्राप्त हों, ।।६।। दुग्धादि से पूर्ण चार कलशों को मैं चार दिशाओं में स्थापित करता हूँ। यह दुग्धादि की धारायें मधुर रस को पुष्ट करती हुई तथा जल से पूर्ण पुष्करिणी नदियाँ तुझे प्राप्त हों ।।७।। यह पका हुआ ओदन विस्तारयुक्त एवं स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त कराने वाला है। मैं इसे ब्राह्मणों में स्थापित करता हूँ। यह क्षीण न हो और इच्छित फल देने वाली गौओं के रूप में हो जाय ।।८।।

सूक्त ३५

(ऋषि—प्रजापति। देवता—अतिमृत्यु। छंद—त्रिष्टुप्)

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।१
येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।२।।
यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।३
यस्मिन्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः।
अहोरात्रा यं परियंतो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।४।।
यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणिमृत्युम् ।।५
यस्मात् पक्वादमृतं सम्बभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।६

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवा: ॥७॥

जिस ओदन को हिरण्यगर्भ नामक प्रजापति ने अपने कारण बनाया था, जैसे नाभि प्राणियों को धारण करने वाली है, वैसे ही जो ओदन पृथिवी आदि को धारण करने में समर्थ है, उस ओदन को देता हुआ मैं मृत्यु से तरता हूँ ॥१॥ जिस ओदन को तप द्वारा देवताओं ने प्राप्त किया है, जिस ओदन के द्वारा वे मृत्यु को लांघ गये हैं जिस ओदन को हिरण्यगर्भ ने अपने लिये बनाया था उसके द्वारा मैं मृत्यु और उसके कारण रूप देवता के पार होता हूँ ॥२॥ जो ओदन पृथिवी को धारण कर चुका है, जो अपने रस से अन्तरिक्ष का पूर्ण करता और द्युलोक को अपनी महिमा से स्तंभित करता है, उसके द्वारा मैं मृत्यु के पार होता हूँ ॥३॥ जिस ओदन से बारह महीने और रथ-चक्र के अरे रूप तीस दिन उत्पन्न हुए हैं, जिस ओदन द्वारा संवत्सर उत्पन्न हुए हैं, जिस ओदन द्वारा संवत्सर उत्पन किया गया है, उस ओदन द्वारा मैं मृत्यु को लाँघता हूँ ॥४॥ जिस ओदन के लिये सब लोक घृत-धारों को सींचते हैं, जिस ओदन के तेज से दिशायें तेज सम्पन्न होती हैं, जो ओदन मुमुर्षुओं को प्राणदायक है, उस ओदन के द्वारा मैं मृत्यु को लाँघता हूँ ॥५॥ पाक-युक्त जिस ओदन से आकाश में अमृत उत्पन्न हुआ, गायत्री छन्द का अधिपति देवता जिस ओदन द्वारा होता है तथा ऋक्, यजु, साम आदि वेद जिस ओदन में व्याप्त हैं, मैं उस ओदन के द्वारा मृत्यु को लाँघता हूँ ॥६॥ मैं वैर करने वाले शत्रुओं और देवताओं के हिंसकों के कार्य में विघ्न डालता हूँ। मेरे शत्रु नष्ट हों, इसीलिये ब्रह्म रूप ओदन को संस्कृत करता हूँ। पूज्य देवता मेरी स्तुति को सुनें ॥७॥

३६ सूक्त (आठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—चातन:। देवता—सत्यौजा अग्नि:। छन्द—अनुष्टुप्)

तान्त्सत्यौजा: प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथ यो नो अरातियात्। १।

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२॥

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वां स्तान्त्सहसा सहे ॥३॥

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४॥
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५॥
तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दते न्यञ्चनम् ॥६॥
न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७॥
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुपं जानते ॥८॥
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हिताञ्जने अल्पशयूनिव ॥९॥
अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०॥

जो शत्रु हमारी हिंसा करना चाहते हैं, जो अवगुण हममें नहीं हैं उनका मिथ्या दोष हम पर लगाते हैं, उन शत्रुओं को मनुष्यों का उपकार करने वाले अग्निदेव प्रचण्ड रूप से भस्म कर डालें॥१॥ जो शत्रु हमको दुःख दे और जो हमको मारना चाहे, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को हम सबके हितैषी अग्नि की दाढ़ों में डालते हैं ॥२॥ जिस युद्ध में मांस और रक्त नष्ट किया जाता है, उनमें पिशाचादि हमें मारकर खाने की ताक में रहते हैं तथा शत्रुओं द्वारा प्रेरित करने पर जो पिशाचादि अमावस की

आधी रात के समय मारना चाहते हैं,उन सबको हम अपनी मंत्र-शक्ति से वशीभूत करते हैं ।।३।। मैं इन राक्षसों के बल को जानता हूँ और इन्हें मंत्र-शक्ति से क्षीण करता हूँ। दुष्टता करने वाले अपने शत्रुओं को भी मैं नष्ट करता हूँ। हमारा इच्छित सङ्कल्प सुखमय एवं समृद्धि से युक्त हो ।।४।। जो पिशाच अपने माया रूप विकार से, हंसाते और सूर्य के समान दमकते हैं; जो पिशाच पर्वत नदी आदि के स्थानों में घूमते हैं, मैं उन सबसे बचता हुआ गवादि पशुओं से युक्त होऊँ ।।५।। जैसे सिंह गौओं के स्वामियों को चिंता का कारण रहता है, वैसे ही मैं अपने मंत्र बल से राक्षसों को दुःख देने वाला होऊं। जैसे सिंह से भयभीत श्वान छुप जाते हैं वैसे ही यह पिशाचादि हमारे मंत्र-बल से पतित हो जांय ।।६।। मैं चोर डाकुओं से नहीं मिलता, पिशाच मुझमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। मैं जिस गाँव मे जाता हूँ उस गाँव के पिशाच नाश को प्राप्त होते हैं ।७।। मेरा मंत्र-बल जिस गाँव में रहता है, वहाँ के पिशाच नष्ट हो जाते हैं। इस लिए वहाँ रहने वाले मनुष्य उनके हिंसा युक्त कार्यों को कभी जानते ही नहीं ।।८।। जैसे छोटे कीड़े जन समूह के चलने से पिच जाते हैं, जैसे हाथी के शरीर पर लगे हुए मच्छर हाथी के क्रोध को बढ़ाते हैं, वैसे ही मैं अपने शरीर पर लगे पिशाचों को अपने मंत्र-रूप क्रोध से नष्ट हुआ मानता हूँ ।।९।। जैसे दुष्ट अश्व को रस्सी से बाँधते हैं, वैसे ही पाप देवता निर्ऋति उस वैरी को बांध लें जो मुझ पर क्रोध करता है, वह उसके बंधन से न छूट पावे ।।१०।।

३७ सूक्त

(ऋषि— बादरायणि। देवता—ओषधि; प्रभृति। छंद—अनुष्टुप् प्रभृति)

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ।।१।।
त्वया वयमप्सरसो गंधर्वांश्चातयामहे।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ।।२।।

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौक्षगन्धिः प्रमंदनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४॥

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदंति ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजश्रृङ्ग्य् राटकी तीक्ष्णश्रृङ्गी व्यृषतु ॥६॥

आनृत्यतः शिखण्डिनो गंधर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७॥

भीमा इंद्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गंधर्वानवकादान व्यृषतु ॥८॥

भीमा इंद्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गंधर्वानवकादान् व्यृषतु ॥९॥

अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०॥

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृशइव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ।
ब्रह्मणा वीर्यावता ॥११॥

जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥१२॥

हे ओषधे ! 'अथर्वा', 'कश्यप' 'कण्व' और 'अगस्त्य' आदि ऋषियों ने तुझे साधन बना कर राक्षसों को नष्ट किया था वैसा ही मैं

करता हूँ ॥१॥ हे अजशृङ्गि ! हे औषधे । तेरे द्वारा हम, उपद्रवी गंधर्वों और अप्सराओं का नाश करते हैं । तेरी उग्र गंध से हम राक्षस, पिशाचादि को भगाते हैं ।२॥ जैसे पार उतारने में कुशल नौका चालक के पास पहुँचते हैं, वैसे ही गूगल, पीला नलदी, औक्षगंधी, प्रमदंनी, इन पाँच हवन द्रव्यों से डर कर गंधर्व स्त्रियाँ अपने स्थान को लौट जाँय ॥३॥ हे अप्सराओ ! तुम पीपल, वड़ पिलखन, मयूर आदि से युक्त अपने स्थान पर लौट जाओ और वहाँ गतिहीन हुई पड़ी रहो ॥४॥ हे अप-सराओ ! जहाँ श्यामल और अर्जुन वृक्ष है, जहाँ तुम्हारे आमोद और नृत्य के लिये झूले पड़े हैं तथा वाद्य बज रहे हैं, तुम अपने स्थान को लौटो और वहीं चेष्टाहीन होकर पड़ी रहो ॥५॥ यह अत्यन्त बलवती अजशृङ्गी हिंसकों का उच्चाटन करने में समर्थ है । उग्र गंध और शृंगाकार वाली यह औषधि राक्षस और पिशाचों का नाश करे ॥६॥ मोर के समान नाचते हुए गीतिमय वाणियों वाले, हमको मारने की इच्छा करते हुए गंधर्व के अण्डकोषों को मैं चूर्ण करता हूँ और उसके उपस्थ को निर्वीर्य करता हूँ ॥७॥ इंद्र के जिन लोहायुधों से प्राणी भयभीत होते हैं, जिनमें सैकड़ों धार हैं, उनके द्वारा इंद्र जलाशय पर आकर सिवार का भक्षण करने वाले गंधर्वों का संहार करे॥८॥इंद्र अपने सहस्रधार वाले स्वर्णायुधों से सिवार को खाने वाले गंधर्वों को नष्ट करें ।।९॥ हे अजशृङ्गि ! सब ओर दमकते हुए शोकप्रद, सिवार को खाने वाले गंधर्वों को जलों में दिखा और उपद्रव करने वाले पिशाचों को सब ओर से मार कर वशीभूत कर ॥१०॥ गंधर्व अपनी माया से श्वानाकृति वाला, बंदर की आकृति वाला, सब ओर बाल-युक्त बालक की आकृति वाला बन जाता है । सुन्दर दिखाई देने वाला गंधर्व घर की स्त्रियों को प्राप्त होता है, हम मंत्र-बल से उस गंधर्व को इस स्त्री के पास से भगाते हैं ।।११॥ हे गंधर्वो ! तुम्हारे उपभोग के योग्य अप्सरायें ही हैं, वही तुम्हारी पत्नी हैं । इसलिये उन्हीं से मिलो । तुम अमरणशील हो अतः मरणशील व्यक्तियों से संगति मत करो (इस सूक्त में रोग के कीटाणुओं का वर्णन किया है और औषधियों द्वारा उनको नष्ट करने की विधि बताई गई है) ॥१२॥

३८ सूक्त

(ऋषि– बादरायणिः। देवता–अप्सराः ऋषभः। छन्द–अनुष्टुप्, प्रभृति)

उद्भिन्दतीं सञ्जयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ।।१।।
विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ।। २ ।।
यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ।।३।।
या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।
आनन्दिनी प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ।।४।।
सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्येति रक्षन् ।
स न ऐतु होममिमं जुषाणोन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ।।५।।
अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ।।६।।
अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः ।
यथानाम व ईश्महे स्वाहा ।।७।।

द्यूत क्रिया की अधिदेवता, विजय कराती हुई, अक्षशलाका आदि से सुन्दर क्रीड़ा करने वाली अप्सरा को मैं इस द्यूत विजय के कर्म में बुलाता हूँ ।।१।। पाशों को एकत्रित कर उन्हें बहुत से कोष्ठों में विजय हेतु डालती हुई, अक्षशलाका आदि से सुन्दरतापूर्वक, खेलने वाली द्यूत क्रिया की अधिदेवता अप्सरा को मैं इस द्यूत-विजय वाले कर्म में बुलाता हूँ ।।२। जो अप्सरा कृतादि शब्दों से कथित अक्ष अयों से विजय प्राप्त होने के कारण नाचती है, वह ग्रहण योग्य पासों में कृत नामक चार

संरक्षक अयों को बचाती हुई, फेंकने योग्य पासों पर अपनी माया सहित प्रतिष्ठित हो और हम को विजित गवादि धन सहित प्राप्त हो। दांव पर रखे हुए हमारे धन को अन्य द्यूत खेलने वाले न जीत पावें ॥३॥ जो अप्सरा इच्छित जय के अभाव में शोक को उत्पन्न करती और पुनः विजय करने के अभिप्राय के क्रोध को उत्पन्न करती हैं, वह अप्सरा द्यूत-साधन अक्ष से प्रसन्न होती हैं, मैं उसका आह्वान करता हूँ ॥४॥ जिन अप्सराओं का स्वामी दूरस्थ अन्तरिक्ष में विचरण करता है और उषायुक्त है, वह सूर्य सब लोकों के रक्षक रूप से सब दिशाओं में विचरता है। वह सूर्य अप्सराओं सहित हमारे पास आते हुए इस हव्य को ग्रहण करें॥५॥ हे सूर्य तुम अप्सराओ से युक्त एवं उषावान् हो। इस गौ के श्वेत बछड़ों की रक्षा करते हुए उनका पोषण करो। तुम्हारे दूध आदि की बूंदे समृद्ध होकर हमें प्राप्त हों। यह श्वेत वर्ण वाली तुम्हारी गाय इस गोष्ठ में है। तुम हमारा नमस्कार स्वीकार करो और हमारे सामने आओ ॥६॥ हे अप्सराओं से युक्त, उषावान् सूर्य ! यहाँ के श्वेत रंग वाले बछड़ों की रक्षा करो, उनको पोषण कर बढ़ाओ। यह घास पौष्टिक हो। यह गोष्ठ गौओं से सम्पन्न हो। इस गोष्ठ में हम बछड़ों को बांधते हैं। जिस प्रकार तुम्हारे स्वामी रहें उसी प्रकार तुम्हें बांधते रहें ॥७।

सूक्त ३९

(ऋषि-अंगिरा ब्रह्मा। देवता-पृथिव्यग्नी:प्रभृति। छंद-बृहती; पंक्ति, त्रिष्टुप्)

पृथिव्या मग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥१॥
पथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः। सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं
कामं दुहाम्। आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥२॥
अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥३॥
अतरिक्ष धेनुस्तस्यां वायुर्वत्सः। सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं

कामं दुह्राम् । आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४॥
दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥५॥
द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः । सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं ।
काम दुहाम् । आयुः प्रथमं प्रजां पोष रयिं स्वाहा ॥६॥
दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं सनमः सं नमन्तु ॥७॥
दिशो धेनवस्तासां चन्द्रा वत्सः ।
ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥८॥
अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥६
हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥१०॥

अग्निदेव भूतों से युक्त हैं । उन अग्नि को सब प्राणी प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार मुझे इच्छित फल प्राप्त हो ॥१॥ पृथिवी गौ है, अग्नि उसके बछड़े हैं । वह पृथिवी अग्नि रूप बछड़े के द्वारा अन्न, पशु आदि और सौ वर्ष वाली आयु आदि सभी काम्य वस्तुयें प्रदान करें ॥ २ ॥ अंतरिक्ष में स्वामी रूप से रहने वाले वायु के पास वहाँ के यक्ष गन्धर्व आदि निवासी एकत्र होते हैं और उनके द्वारा वायु भी समृद्धि को प्राप्त होते हैं, वैसे ही समृद्धि मुझे प्राप्त हो॥ ३॥ अन्तरिक्ष इच्छित फलदायक होने के कारण पयस्विनी धेनु के समान है और उसका वायु रूप बछड़ा है । वह अन्तरिक्ष अपने वायु रूप बछड़े द्वारा अन्न, अन्न-रस पुत्र पशु, धन-धान्य, प्रजा आदि की पुष्टि द्वारा इच्छित वस्तुयें प्रदान करें ॥४॥ जैसे सब नक्षत्र के निवासी सूर्य के सामने झुकते हैं और वह सूर्य उन

आकाश में वास करने वालों से ही प्रवृद्ध होते हैं, उसी भाँति इच्छित फल मेरी ओर झुकने वाले हों ॥ ५ ॥ इच्छित फल देने के कारण आकाश धेनु है और सूर्य उसके बछड़े हैं। वह आकाश अपने सूर्य रूप बछड़े द्वारा अन्न, बल, पुत्र, पशु सौ वर्ष की आयु आदि सभी इच्छित वस्तुये प्रदान करें ॥६॥ पूर्वादि दिशाओं के प्राणी स्वामी रूप से स्थित चन्द्रमा से प्रसन्न होते हैं, और चन्द्रमा उनके द्वारा सम्पन्नता को प्राप्त करते है। मैं भी उसी प्रकार सम्पन्नता को प्राप्त होऊं ॥७॥ दिशायें गौ हैं, चन्द्रमा उनका वत्स है। वे दिशा रूप गौ अपने चन्द्र-रूप वत्स द्वारा अन्न, अन्न-रस, पुत्र, पशु, सौ वर्ष की आयु आदि देते हुए मुझे बढ़ावें ॥८॥ मंत्र की शक्ति से अग्निदेव अगारो के रूप में स्थित अग्नि में वास करते हैं। वे चक्षु, अथर्वा, अंगिरा आदि के पुत्र हैं। वे मिथ्या-पवाद से रक्षा करते हैं। ऐसे अग्नि को हम हविरन्न प्रदान करते हैं। हम देव-भाग को मिथ्या नहीं करते ॥९॥ हे अग्ने! तुम सभी उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो, दानादि गुणों से युक्त हो, तुम्हारे मुख में सात जिह्वायें हैं। मैं उस मुख को खोलने के लिये शुद्ध हृदय से घृताहुति प्रदान करता हूँ ॥१०॥

सूक्त ४०

(ऋषि—शुक्रः। देवता—जातवेदः प्रभृति। छंद—त्रिष्टुप्, जगती)

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१॥
ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२॥
ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३
य उत्तरतो जुह्वति जातवेदः उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥
येऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।

भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥५
येऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥६॥
य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥७॥
ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदा-
सन्त्यस्मान् ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण
हन्मि ॥८॥

हे अग्ने ! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो। जो शत्रु हमको अभिचार कर्म द्वारा पूर्व दिशा से नष्ट करने की इच्छा करते हैं, वे शत्रु अग्नि के पास जाकर भस्म हों। मैं इन अभिचार कर्म वाले शत्रुओं का इस प्रतिसर कर्म द्वारा नाश करता हूँ ॥१॥ हे अग्ने ! जो शत्रु हमको दक्षिण दिशा से क्षीण करना चाहते हैं, वे शत्रु उस दिशा के स्वामी यम के पास जाकर संतापित हों। मैं इन अभिचारियों को प्रतिसर कर्म द्वारा नाश करता हूं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न हुओं के जानने वाले हो। जो शत्रु पश्चिम दिशा से अभिचार कर्म द्वारा हमको मारने का यत्न करते हैं, वह उस दिशा के अधिपति वरुण के पास जाकर घोर व्यथा को प्राप्त हों। उन-अभिचार-कर्म करने वालों को मैं प्रतिसर कर्म द्वारा नष्ट करता हूँ ॥३॥ हे अग्ने ! जो शत्रु उत्तर दिशा में अभिचार कर्म करता हुआ हमारा नाश करना चाहता है, वह उस दिशा के स्वामी सोम के पास जाकर व्यथा को प्राप्त हो, और हमारे पास से लौट जाय। मैं इन अभिचार करने वाले शत्रुओं को प्रतिसर कर्म द्वारा नष्ट करता हूँ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न हुओं के जानने वाले हो। जो शत्रु नीचे की दिशा से अभिचार कर्म कर हमको मारना चाहता है, वह उस दिशा के स्वामी पृथिवी के पास पहुँच कर व्यथा को प्राप्त हो। मैं उन शत्रुओं को प्रतिसर कर्म द्वारा निर्वीर्य करता हूँ ॥५॥ हे अग्ने ! आकाश-पृथिवी के मध्य स्थित अन्तरिक्ष लोक में जो शत्रु अभिचार कर्म कर हम को नष्ट करना चाहें, वे शत्रु उस दिशा के स्वामी वायुदेव के पास पहुँच कर

व्यथा को प्राप्त हों और हमसे दूर जाँय। मैं उन शत्रुओं का प्रतिसर कर्म द्वारा नाश करता हूँ ॥६॥ हे अग्ने! जो शत्रु ऊपर की दिशा में अभिचार कर्म द्वारा हमको मारना चाहें, वे शत्रु उस दिशा के स्वामी सूर्य के पास जाकर यंत्रणा प्राप्त करें और हमसे दूर हो जाँय। मैं उन शत्रुओं को प्रतिसर कर्म के द्वारा नष्ट करता हूँ ॥७॥ हे अग्ने! जो शत्रु पूर्व आदि दिशाओं के कोणों से अभिचार कर्म करते हुए हमको क्षीण करते हैं, वे सब शक्तिहीन हों और हमसे विमुख होकर सबको वशीभूत करने वाले परब्रह्म के पास जाकर व्यथित हों। मैं उन शत्रुओं को प्रतिसर कर्म द्वारा नष्ट करता हूँ ॥८॥

॥ इति चतुर्थ काण्डम् समाप्तम् ॥

पञ्चम काण्ड

---

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि-बृहद्दिवोऽथर्वा। देवता—वरुणः। छन्द—त्रिष्टुप्, अष्टि)

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आ बभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा।
अदब्धासुर्भ्राजमानोहेव त्रितो धर्त्ता दाधार त्रीणि ॥१॥
आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥२॥
यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥३॥
प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम्।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥४॥

तद् पु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत् सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते । ५
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात् ।
आयोह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६।
उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्वस्तत् सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्न दधात्यूर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ॥७॥
उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आववर्ततः कृणवो वपूंषि ॥८
अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे असुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥९॥

दिन के समान प्रकाशित, तीनों लोकों का पालक, रक्षक ए धारक वह अहिंसित और अमर, सुन्दर जन्म लेकर बढ़ने वाला योनि द्वारा उत्पन्न हुआ है॥१॥ प्रथम जीवात्मा धर्म-कर्म को करने से शरीर को धारण करता है । संज्ञाओं द्वारा अस्पष्ट वाणी का कर्त्ता, अन्न की इच्छा से योनि को पाता है ॥२॥ जो धर्म-पालन द्वारा कष्ट सहता हुआ सुवर्ण-समान अपनी धर्म-कांति को फैलाने के लिए तेरे शरीर में आय है उसे अमर नाम द्यावा-पृथिवी देते हैं, और प्रजाएं वस्त्र देती हैं ॥३॥ जो हर स्थान में बैठ कर ब्राह्मण-हितैषी परमात्मा का चिन्तन करते हुए उन्हें प्राप्त हो गए हैं, उनके समान ही परमात्मा की उपासना कर प्रजा रूप भगिनी का भार वहन करने वाले इस राजा को ईश्वर की प्राप्ति करावें ॥४॥ क्योंकि पृथ्वी को सुस्थिर रखने वाले दो राजा चक्र के समान गति से बढ़ रहे हैं । अतः हे पृथिव्याभिमानी देव ! मैं अथर्व-पारंगत व्यक्ति तुम्हारे निमित्त अन्नादि हव्य भेंट करता हूँ ॥५॥ मनु आदि ऋषियों ने चोरी, गुरु पत्नी-गमन, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, मद्य-पान मिथ्या भाषण एवं पाप कर्मों का करना इनके निषेध रूप में जो मर्यादा निश्चित की है उसे न मानने वाला पापी है। मर्यादा पालन करने वाला

पुरुष मृत्यु काल में सूर्य-मण्डल स्थित आदित्य के स्थान को महाप्रलय पर्यन्त प्राप्त होता है॥६॥ देह से सम्बन्धित स्वयं-प्रकाश अमरात्मायुक्त अती, मैं बल सहित आ रहा हूँ। जो बल सहित हवि दान करता है उसे इन्द्र रत्नादि प्रदान करते हैं ॥७॥ पुत्र अपने क्षत्रिय पिता को पूजे, ज्येष्ठ कल्याण के निमित्त धर्म में लगे। हे वरुण ! तुम अपने अनेक स्थानों को दिखाते हुए सांसारिक जीवों की देह-रचना करते हो ॥८॥ अदिति पुत्र मित्र-वरुण को हम बढ़ाते हैं। हे वरुण! तुम इस सेना दल की दुग्धादि से वृद्धि करते और आवे से स्वयं बढ़ते हो। हे आकाश-पृथिवी के देवो ! विद्वान् ऋषियों के द्वारा प्रशंसित देवों का हम इनसे वर्णन करते हैं॥९॥

२ सूक्त

(ऋषि—बृहद्दिवोऽथर्वा। देवता—वरुणः। छन्द—त्रिष्टुप्)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून् नु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥१
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ।४
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५
नि तद् दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥६॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम्।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥७॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ।८
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥६

यह इन्द्र धनवान् एवं बली होने से श्रेष्ठ माने जाते हैं। यह प्रकट होते ही शत्रु का संहार करने लगते हैं। इसीलिए इनके रक्षक सैनिक हर्ष में निमग्न रहते हैं ॥१॥ अत्यन्त बली वृद्धि प्राप्त शत्रु,दासों को त्रास देता है। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म में लीन हो जाता है। वैतनिक वीर युद्धादि में परमात्मा की प्रार्थना करते हैं ॥२॥ जन्म, संस्कार और युद्ध-दीक्षा यह तीन जन्म से उत्पन्न हुए, विशाल यज्ञ को तुम से मिलाते हैं। तुम पदार्थों को सुस्वादु बनाने वाले, इन्हें स्वादयुक्त पदार्थ वाले बनाओ। हे इन्द्र ! सुन्दर रीति से युक्त करो ॥३॥ सब युद्धों में तुम धन विजेता को ब्राह्मण यदि स्तुति करें तो हे बली ! तुम उन्हें स्थिर बल दो। सुख में दुःख का वातावरण फैलाने अथवा बुरी गति वाले मनुष्य आपको न मिलें ॥४॥ तुम्हारे द्वारा हम सभी विपक्षियों को समाप्त कराये देते हैं। मैं तपस्या से सिद्ध अपनी वाणी से तुम्हारे शस्त्रों को प्रेरित करता हुआ तुम्हारे गतियुक्त बाणों को तीक्ष्ण किये देता हूँ ॥५॥ जिस घर में श्रेष्ठ साधारण प्राणियों का पालन हुआ, जिस घर में वे अन्न से रक्षित हुए उसमें गतिमान कालिका माता की शक्ति को स्थापित करो और फिर अद्भुत पदार्थों से पूर्ण करो ॥६॥ हे देह-धारी पुरुष ! विचरणशील, तेजस्वी, स्वामी एवं आप्त जनों के गुणों से युक्त राजा की स्तुति कर। यह पृथिवी का प्रतिरूप, युद्ध में जुट रहा है ॥७॥ स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा करता हुआ यह राजा, महान् स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करता है और स्वर्ग का राजा इन्द्र, मेघ वृष्टि द्वारा संसार को जल से पूर्ण करता है॥८॥अपने देह को इन्द्र मानते हुए महर्षि अथर्वा ने कहा था कि पाप-रहित भगिनियाँ इसे बल से बढ़ाती हुई प्रसन्न करती हैं ॥६॥

३ सूक्त

(ऋषि—बृहद्दिवोऽथर्वा । देवता—अग्निःप्रभृति । छन्द-त्रिष्टुप्;जगती)

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्त्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥२॥
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥३॥
मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥४॥
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैवा होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥५॥
दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥६॥
तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥७॥
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥
धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सवितामिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥९॥
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥१०॥
अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥११॥

हे अग्ने ! युद्धों में मैं तेजस्वी होऊँ । हम तुम्हें प्रकट करते हुए अपने देह को बलवान बनावें । सब दिशाऐं मेरे सामने झुकें । तुम्हारे संरक्षण में हम इस सेना पर विजय प्राप्त करें ॥१॥ हे अग्ने ! शत्रुओं के क्रोध का शमन करते हुए सब ओर से हमारी रक्षा करो । हमको दुःख देने वाले, नम्र होकर हमारे पास से हट जावें । इन युद्धाकांक्षियों के चित्तों पर अंधकार छा जावे ॥२॥ इन्द्र सहित मरुत्, विष्णु और अग्नि आदि देवगण समरभूमि में मेरे अनुकूल हों, अन्तरिक्ष में मेरा यश-गान हो और वायु मेरे लिए अनुकूल गति वाला हो ॥३॥ मेरे इच्छित संकल्प सत्य हों, मैं किसी प्रकार के पाप को प्राप्त न होऊँ, विश्वेदेवा मेरे रक्षक हों ॥४॥ मैं देवताओं का आह्वान करता हूँ, वे मुझे धन युक्त करें । देवताओं के होता हमारे पास बैठें । हम निरोग एवं बलवान बनें ॥५॥ पृथिवी, आकाश, जल, ओषधि, दिन, रात इन छैं उर्वियों को हमारे लिए बढ़ाइये । हे देवगण ! प्रसन्न होओ । हमको तिरस्कृत, निन्दा और पाप की प्राप्ति न हो ॥६॥ भारती, पृथिवी और सरस्वती तीनों हमारे लिये कल्याणकारी हों । पुष्ट पदार्थ हमारी प्रजाओं और शरीरों को प्राप्त हों । हम सन्तान एवं पशुओं से रहित न हों । हे सोम ! शत्रुओं से हमें दुःख न मिले ॥७॥ नदी के समान गतिशील, गुणवान्, धनवान्, इन्द्र ! हमको इस यज्ञ में सुख दो । हमारी सन्तान का नाश न करें और हमें न त्यागें ॥८॥ धाता, विधाता, शत्रु-हंता सूर्य, आदित्य, रुद्र और अश्विद्वय यजमान की पाप से रक्षा करें ॥९॥ हमारे शत्रु नष्ट हों, इन्द्राग्नि द्वारा हम इनको बाँधते हैं । आदित्य और रुद्रों ने हमें सावधान करने वाला राजा प्रदान किया है ॥१०॥ भूमि-विजेता, धन एवं अश्वों के विजेता शत्रुओं से सामना करने वाले इन्द्र का आह्वान करते हैं । वे हमारी स्तुति को सुनें । हे इन्द्र ! तुम हमसे स्नेह करने वाले बनो ॥११॥"

४ सूक्त

(ऋषि – भृग्वङ्गिराः। देवता—कुष्ठतक्मनाशनः। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री)

ॐ गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।

कुष्ठे ह तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥१॥
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥२॥
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥३॥
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥४॥
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५॥
इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु। तमु मे अगदं कृधि ॥६॥
देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥७॥
उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम्।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥८॥
उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥९॥
शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वोरपः।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥१०॥

पर्वतों में उत्पन्न बलवान् औषधि कूट! तू कठिन रोगों की नाशक है। हमारे कष्टकारक रोग का नाश करती हुई तू यहाँ आ ॥१॥ गरुड़ के प्राकट्य स्थान हिमालय में उत्पन्न इस औषधि को लोगों ने सुना और वहाँ धनों के साथ जाकर उसे प्राप्त किया ॥२॥ तीसरे आकाश में देव-स्थान अश्वत्थ है वहाँ देवगण ने अमृत के गुण वाले कूट को जाना ॥३॥ सुवर्ण-बन्धन वाली स्वर्ग की नौका द्वारा अमृत के पुष्परूप कूट को देवगण ने पाया ॥४॥ सुवर्णमय मार्ग, स्वर्ण नौकाओं और स्वर्ण के डांडों द्वारा ही कूट लाया गया ॥५॥ हे कूट! मेरे इस

पुरुष को यहाँ ले आ और इसे रोग से मुक्त करके आरोग्य प्रदान करो ॥६॥ हे कूट ! तुम देवताओं के संरक्षण में उत्पन्न एवं सोम के हितैषी मित्र हो। तुम मेरे इस पुरुष के प्राण-व्यान एवं नेत्र को सुख देने वाले होओ ॥७॥ हिमालय के उत्तर में कूट उत्पन्न हुआ, पूर्व मे मनुष्यों के पास आया। तब उसके श्रेष्ठ नामों का विभाग हुआ ।८॥ भौतिक शरीर मे विद्यमान जीवात्मा और परम आत्मा दोनों उत्तम है वे परमात्मा राग द्वेष और मोह आदि महा रोगों को नष्ट करें। सूर्य इस शरीर का पालन कर्त्ता तथा राजयक्ष्मा और कुष्ठ रोग को दूर करता हैं॥९॥ शिर रोग, नेत्र-व्याधि और रोगोत्पत्ति का निमित्त पाप इन सबको कूट ने दैव-बल प्राप्त कर नष्ट कर दिया ॥१०॥

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—लाक्षा। छन्द—अनुष्टुप्)

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥१॥
यस्त्वा पिवति जीवति त्रायसे पुरुष त्वम्।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥२॥
वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥३॥
यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम्।
तस्य त्यवमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥४॥
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद् धवात्।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५॥
हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतेनामि वा असि ॥६॥
हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ॥७॥
सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥८॥

अश्वस्यास्नः सम्पतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९॥

हे लाख ! चन्द्रमा की किरणों द्वारा पुष्ट होने से रात्रि तेरी माता और वर्षा द्वारा उत्पन्न होने से आकाश तेरा पिता है । आकाश में मेघ लाने से सूर्य पितामह है । तू देवताओं की सिलाची नाम्नी भगिनी है ॥१॥ तुझे पीने वाला जीवित रहता है । तू रक्षा करने वाली, भरण करने वाली एवं 'न्यञ्चनी' है ॥२। तू वृषयन्ती कन्यला के समान हरेक वृक्ष पर चढ़ जाती है । तू जीतती, खड़ी होती है इसीलिए तेरा नाम स्परणी है ॥३॥हे लाख ! तू घावों के लिए उपाय रूप है, इसलिए इस पुरुष को क्षत-रहित कर ॥४॥ तू कदम्ब, पाकड़, पीपल, खर, धो भद्र, न्यग्रोध एवं पर्ण से उत्पन्न होती है । हे व्रण शोधक एवं पूरक ओषधे ! हमको प्राप्त हो ॥५॥ हे सुवर्ण एवं सूर्य के समान वर्ण और कान्ति वाली ओषधे ! तू घाव पर पहुँचती है, सौभाग्यवती, जलों की भगिनी के समान है । हे लाख ! वायु तेरी आत्मा के समान है ॥६-७॥ सिलाची और कानीन तेरे नाम हैं । बकरियों का पालक तेरा पिता है । यम के पीले रग के अश्व के रक्त से तेरा सिंचन हुआ है ॥८॥ हे व्रण पूरक ! तू अश्व रक्त के वर्ण वाली है, वृक्षों को सींचती है । तू सरकने वाली है अतः पतत्रिणी-सी होती हुई हमको प्राप्त हो ॥९॥

६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—ब्रह्म, आदित्य । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् वः एतत् पुरो दधे ॥२॥
सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ।३

पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य-
गृहः ॥४॥
न्वेतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मडत नः ॥५॥
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेतो सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥६॥
अपतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥७
मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८॥
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु येस्माँ अभ्यघायन्ति ॥९॥
योस्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः
सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ।।११॥
इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः
सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१२॥
इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः
सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१३॥
इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्य तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः
सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४॥

अखिल विश्व का कारण रूप परब्रह्म सृष्टि के आदि में सूर्य रूप से प्रकट हुआ । उनका तेज 'वेग' है, जो सब दिशाओं और लोकों को व्याप्त करता है ॥१॥ हे पुरुषो! तुम्हारे प्रतिगामी शत्रुओं ने जिन उत्तम कर्मों

को किया है, उन कर्मों से वे हमारी सन्तान रूप वीरों को नष्ट न करें इस निमित्त मैं इस अभिचार कर्म को प्रस्तुत करता हूँ ॥२॥ आकाश स्थित अनेक मार्ग-युक्त स्वर्ग के वासी यह घोषित कर चुके हैं कि युद्ध में जाने से आनाकानी करने वालों को बांधने के लिए यमदूत पाश लिए सदा तत्पर रहते हैं, वे अपने नेत्रों को कभी नहीं मूँदते ॥३॥ (हे सूर्य) अन्न से निमित्त मेघों के पास जाने वाले तुम उन्हें ताड़ना देकर समुद्र रूप में प्राप्त कराते हो अतः तुम्हारा नाम सनिस्रस है। तेरहवाँ महीना भी इन्द्र का गृह है उसमें भी वर्षा कराने को तत्पर रहो ॥४॥ इस अभिचार कर्म द्वारा ही इसने सिद्धि पाई थी, यह स्वाहुत हो। हे सोम और रुद्र ! तुम तीक्ष्णास्त्र युक्त हो। इस युद्ध मे हमको सुखी करो ॥५॥ इस अभिचार-कर्म द्वारा ही इस राजा ने शत्रु नाश कर सिद्धि प्राप्त की थी, यह हवि स्वाहुत हो। हे सोम, रुद्र ! तुम तीक्ष्णायुध वाले हो, इस युद्ध मे हमें सुख दो ॥६॥ इस अभिचार-कर्म द्वारा ही प्रतिलोम रूप से शत्रु दमन करते हुए इस राजा ने सिद्धि प्राप्त की थी यह हवि स्वाहुत हो। अत्यन्त सुख एवं तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रयुक्त सोम और रुद्र ! हमको इस युद्ध में सुखी करो ॥७॥ हे सोम-रुद्र देवो ! अकथनीय पाप से हमको बचाओ। इस यज्ञ को प्राप्त होते हुए इसमें अमृतत्व की स्थापना करो ॥८॥ हे नेत्र, मन एवं मन्त्र सम्बन्धी सहारक शक्ति ! तुम आयुधों में भी श्रेष्ठ आयुध हो। जो हमें नष्ट करना चाहते हैं वे आयुधहीन हों ॥९॥ हमारी हत्या रूप पाप करने की इच्छा वाला जो अघायु हमको वक्र दृष्टि मन एवं चित्त-वृत्ति से क्षीण करने की इच्छा करता है उसे हे अग्ने ! अपने आयुध द्वारा आयुध-हीन कीजिए। यह आहुति स्वाहुत हो ॥१०॥ हे अग्ने ! तुम इन्द्र के गृहरूप, सर्वगामी, सब की आत्मा, सब के शरीर एवं सर्वपुरुष रूप हो। मैं अपने सब साथियों सहित आपका शरणागत होता हुआ आप में प्रविष्ट होता हूँ ॥११॥ हे अग्ने ! तुम इन्द्र के सुख रूप हो। तुम सर्वगामी, सर्वात्मा, सर्वदेह और सर्वपुरुष रूप हो। मैं अपने समस्त वैभव कुटुम्ब सहित तुम्हारी शरण को प्राप्त होता हूँ ॥१२॥ हे अग्ने ! तुम इन्द्र के कवच रूप, सर्वगामी, सर्वात्मा आदि हो। मैं अपनी समस्त निधि सहित आपकी शरण को प्राप्त होता

हूँ ।१३।। हे अग्ने ! तुम इन्द्र के वरूथ, सर्वगामी, सर्वतनू और सर्व॰ पुरुष रूप हो,मैं तुम्हारी शरण लेता हुआ,तुम में प्रविष्ट होता हूँ।।१४।।

७ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा।देवता –अरातयःसरस्वती। छन्द–पंक्तिः, अनुष्टुप्,बृहती)

आ नो भर मा परिष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम्।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ।।१।।
यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ।।२।।
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ।।३।।
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ।।४।।
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ।।५।।
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ।।६।।
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ।।७।।
उत नग्ना वोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ।।८।
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ।।९।।
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्महो ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ।।१०।।

हे अराते (अदानी) ! हम को धनयुक्त कर। हमारे चारों ओर स्थित न हो। हमारी लाई हुई दक्षिणा को प्रभावित न कर। अदान की अधिष्ठात्री देवी की अवृद्धि की इच्छा के लिए यह हव्यान्न प्राप्त हो ॥१॥ हे अराते ! केवल बोलने वाला जो पुरुष तेरे सम्मुख रहता है, उसे हम दूर से प्रणाम करते हैं। तू हमारी इस इच्छा को मत टालना ॥२॥ देवताओं की भक्ति दिन-रात बढ़े। हम अराति की शरण ग्रहण करते हैं, यह हवि उसे प्राप्त हो ॥३॥ देव-आह्वाक यज्ञों में, उन्हें प्रसन्न करने वाली वाणी का मैं उच्चारण कर चुका हूँ। हम सब अनुमति, और भग देवता की शरण प्राप्त करते हुए उन्हें बुलाते हैं ॥४॥ मनोद्भूत सरस्वती की वाणी से मैं जिस वस्तु की प्रार्थना करता हूँ, उसे सोम देवता द्वारा दी हुई श्रद्धा प्राप्त हो ॥५॥ हे अराते ! तू हमारी वाणी और भक्ति को अवरुद्ध न कर। इन्द्राग्नि हम को सर्व धन दें। हमारे शत्रुओं के लिये वे अनुकूल न हों ॥६॥ हे अराते। मैं तुझे दुर्बलताकारक और पीड़ाप्रद जानता हूँ। इस लिए हम से दूर हो। तेरी विनाशक शक्ति को हम दूर करते हैं ॥७॥ हे अराते ! मनुष्य की कामनाओं को असफल करती हुई तू सदा प्रमाद रूप में मनुष्य को प्राप्त होती है ॥८॥ जो असमृद्धि हमारी आशाओं को असमृद्ध कर रही है, उस हिरण्यकेशी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥९॥ जिसकी व्याप्ति से हिरण्यवर्णा पृथिवी हिरण्यकशिपु के वशीभूत हो असमृद्ध हो गई थी, उस रमणीयता की नाशक असमृद्धि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

८ सूक्त

[ऋषि—अथर्वा देवता—अग्निः प्रभृति। छन्द—अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति]

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह।
अग्ने तां इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥१॥
इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे।
तेभिः शकेम वीर्यं जातवेदस्तनूवशिन् ॥२॥

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुममैव हवमेतन ॥३
अतिधावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अवि वृकइव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥ ४ ॥
यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पद तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥५॥
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥६।
यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।
त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ॥७
यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम ।
कृण्वेहमधरांस्तथामून्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥
अत्रनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनानभि तिष्ठे द्र ।
मेद्यह तव अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥६॥

हे अग्ने! तुम बलवती ओषधि के ईंधन से देवगण को घृत प्राप्त कराओ। इस कर्म से उन्हें प्रसन्न करो इस यज्ञ में सब देवता मेरे आह्वान पर आगमन करें ॥१॥ हे इन्द्र ! मेरे यज्ञ में आओ। मेरी स्तुति को सुनो। वह ऋत्विज मेरे इच्छानुकूल रहें। हे उत्पन्न हुओं के ज्ञाता इन्द्र ! पूर्वोक्त ऋत्विजों के प्रयत्न से हम वीर्यवान बनें ॥२॥ हे देवगण ! भक्ति न करने वाले पुरुष के हव्य को अग्नि न पहुँचावें। देवगण उसके यज्ञ में न जाकर, मेरे यज्ञ को प्राप्त हों ॥३॥ तुम इंद्र के वचनों से बढ़ो और शत्रुओं का नाश करो। भेड़िया द्वारा भेड़ को मथने के समान शत्रु को मथो। वह जीवित न रहे, उसे नष्ट कर डालो ॥४॥ हे इंद्र ! हमारी दुर्गति के लिये इन शत्रुओं ने जिसे अपना पुरोहित बनाया है, उसका अधःपतन हो। मैं उसे मरने के निमित्त फेंकता हूँ ॥५॥ हे देव ! उन्होंने तनूनपान और परिपाण

कर्म के समय अपने मंत्रमय कवच सिद्ध कर लिये हों तो उस समय के उनके मन्त्र को असफल करिये ।।६।। हे वृत्रनाशक इन्द्र ! हमारे शत्रु ने जिन योद्धाओं को आगे किया है, उन्हें तुम पीछे कर दो, जिससे मैं शत्रु की सेना का संहार कर सकूँ ।।७।। जैसे इन्द्र ने स्तुति रूप श्रेष्ठ वचन से शत्रु को रौंद डाला,वैसे ही मैं इन शत्रुओंका तिरस्कार करता हूँ ।।८।। हे वृत्रनाशक इन्द्र! तुम इस युद्ध में उग्रहोकर शत्रु के मर्मों को छेद डालो। मैं तुम्हारा स्नेही हूँ, इसलिये इन शत्रुओं का सामना करो । हम तुम्हारे अनुगत तुम्हारी सुन्दर मति के अनुसार रहें ।।९।।

९ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वास्तोष्पतिः । छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्, जगती)

दिवे स्वाहा ।।१।। पृथिव्यै स्वाहा ।।२।। अन्तरिक्षाय स्वाहा ।।३।।
अन्तरिक्षाय स्वाहा ।।४।। दिवे स्वाहा ।।५।। पृथिव्यै स्वाहा ।।६।।
सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ।।७।।

उदायुरुद् बलमुत कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम ।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गापा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ।।८।।

आकाश के अधिष्ठात्र देव के लिये स्वाहा ।।१।। पृथिवी के अधिष्ठात्र देव के लिये स्वाहा ।। २ ।। अन्तरिक्ष के अधिष्ठात्र देवता के लिये स्वाहा ।।३।। अन्तरिक्ष के देवता के निमित्त स्वाहा ।।४।। स्वाहा के लिये स्वाहा ।।५।। पृथिवी के लिए स्वाहा ।।६।। सूर्य मेरे चक्षु वायु प्राण, अन्तरिक्ष आत्मा और पृथिवी देह है । अनाच्छादित नाम वाला मैं द्यावा-पृथिवी से रक्षा प्राप्त करने के निमित्त उनकी शरण में जाता हूँ ।।७।। तुम मेरी आयु, बल, कृत्या, बुद्धि और इन्द्रियों को बढ़ाओ । हे आयुकारक एवं रक्षक द्यावा-पृथिवी ! तुम स्वधायुक्त मेरे रक्षक हो । नष्ट होने से मेरी रक्षा करो ।।८।।

१० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता–वास्तोष्पतिः । छन्द–गायत्री, ककुप्, जगती)

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥१॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥२॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥३॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥४॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥५॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥६॥
अश्मवर्म मेऽसि मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥७॥
बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥८॥

हे पत्थर के घर ! तू मेरा है । जो हत्या रूप पाप वाला पूर्व दिशा से हम को नष्ट करना चहता है, वह नाश को प्राप्त हो ॥१॥ हे पत्थर के घर ! तू मेरा है । जो दक्षिण से हम को नष्ट करने की इच्छा करता है, वह यहाँ आते ही नष्ट हो ॥२॥ हे घर ! तू मेरा है । जो पश्चिम दिसा से हमारी हत्या करना चाहता है, वह तेरे पास आते ही नष्ट हो ॥३॥ हे घर ! तू मेरा है ।

जो पापी मुझे उत्तर दिशा से नष्ट करने की इच्छा करता है, वह यहाँ आकर नाश को प्राप्त हो ॥४॥ हे घर ! तू मेरा है। जो पापी ध्रुव दिशा से मुझे नष्ट करना चाहता है, वह तुझे प्राप्त होकर नाश को प्राप्त हो ॥५॥ हे पत्थर के घर ! तू मेरा है। जो दुष्ट मुझे ऊपर से नष्ट करना चाहता है, वह यहाँ आकर नाश को प्राप्त हो ॥६॥ हे पत्थर के घर ! तू मेरा है। जो पापी अन्तर्दिशाओं से हमारी हत्या करना चाहता है, वह इस घर को पाकर नाश को प्राप्त हो जाय ॥७॥ चन्द्रमा से मन का आह्वान करता हूँ। वायु से प्राणापान, सूर्य से चक्षु, अंतरिक्ष से श्रोत्र, पृथिवी से देह और सरस्वती से वाणी की प्रार्थना करता हूं ॥८॥

११ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वरुण । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, अष्टि)

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ॥
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥१॥
न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥२॥
सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३॥
न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥४॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥५॥
एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥६॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।

मो षु पणींरभ्येतावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥७॥
मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्नि जरितर्ददामि ।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥८॥
आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९॥
समा नो बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥१०॥
देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धु ॥११॥

हे बली वरुण ! तुम ने पालनकर्ता सूर्य से क्या कहा था ? हे धनदाता ! तुम सूर्य को दक्षिणा देते और मन से चिकित्सा करते हो ॥१॥ मैं इच्छा मात्र से ही धनवान नहीं बनता, किन्तु सूर्य से प्रार्थना करने पर यह सुख प्राप्त करता हूँ । हे ऋत्विज ! तुम किस चातुर्य द्वारा ज्ञानी के समान हो गए हो ? ॥२॥ मैं अथर्व से प्राप्त चातुर्य द्वारा ज्ञानी हो गया हूँ और अग्नि के समान सब के लिए मार्गदर्शक बना हूँ । मैं जिस व्रत को धारण करूँगा उसे कोई तोड़ नहीं सकता ॥३॥ हे स्वधायुक्त वरुण ! तुम्हारे सिवाय, विचारपूर्वक धैर्य रखने वाला अन्य कोई नहीं । तुम सब भूतों के ज्ञाता हो, इस लिए प्रपंची मनुष्य तुम से भय मानते हैं ॥४॥ हे स्वधापात्र, नीतिवान वरुण! तुम प्राणियों के सब जन्मों के ज्ञाता और मोह में न पड़ने वाले हो । इस रजोगुणयुक्त धन से श्रेष्ठ अन्य क्या है ? ॥५॥ इस रजोगुण से श्रेष्ठ सत्वगुणयुक्त धन से श्रेष्ठ ब्रह्म है । हे वरुण! मैं इस विषय के ज्ञाता तुम से कहता हूँ कि मेरे समक्ष दुष्ट व्यवहार वाले व्यक्ति निकृष्ट वाणी से युक्त हों और दास झुक कर चलने वाले हों ॥६॥ हे वरुण ! तुम बारम्बार धन प्राप्ति के अवसरों के निमित्त वचनों को कहते हो । तुम इन व्यवहारियों के प्रति उपेक्षा न करो, जिससे यह

तुम्हें धनहीन न समझ लें ॥७॥ अन्य मनुष्य तुम्हें भी धनहीन या कंजूस न कहें, मैं तुम्हें यह स्वल्प भेंट देता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह तुम्हारा स्तोत्र समस्त जगत में फैले ॥८॥ हे वरुण! मनुष्यों से युक्त सब दिशाओं में तुम्हारे स्तोत्र व्याप्त हों। तुमने मुझे जो न दिया हो, वह दो। तुम मेरे सप्तपदा मित्र हो ॥९॥ हे वरुण! हम दोनों एक से हैं। हमारी सन्तान भी एक-सी है, इस बात को मैं जानता हूँ। जो तुम्हें नहीं दिया गया, वह देता हूँ। मैं तुम्हारा सप्तपदा मित्र हूँ। १०॥ अन्नधारक देव, देवताओं के स्तोता हैं, बुद्धिमान ब्राह्मण विप्र की स्तुति करने वाला है। हे वरुण! तुमने देव-बन्धु एवं हमारे पिता के समान अथर्व के जानने वाले को उत्पन्न किया है। तुम हमको श्रेष्ठ धन में स्थापित करो। तुम हमारे बन्धु और मित्र हो ॥११॥

१२ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५॥
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।

प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥८॥
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देव त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९॥
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥

हे अग्ने ! तुम मनुष्य के यज्ञ में प्रदीप्त होकर देवताओं से मिल रहे हो। तुम मित्रों के पूजक और ज्ञाता हो। देवताओं का आह्वान करो। तुम देवदूत, क्रांतदर्शी और महान् ज्ञानी हो ॥१॥ हे देहरक्षक सुजिह्व अग्ने ! सत्यलोक के प्रापक मार्गों को मधुमय कर उनका आस्वादन करो। तुम यज्ञ को बढ़ाते हुए इसे देवताओं को प्राप्त कराओ ॥२॥ हे अग्ने ! तुम पूज्य और वन्दनीय हो। हमारे इस कर्म में वसुओं सहित आओ। तुम देवाह्वाक हो। हमारे प्रेरणा करने पर देवताओं की पूजा करो। तुम मनुष्य द्वारा यजन करने योग्य हो ॥३॥ वेदीरूप भूमि को आच्छादित करने वाला आह्वानीय अग्नि पूर्वाह्न में विस्तृत होता है। यह अन्य ज्योतियों में श्रेष्ठ और यजमान तथा पृथिवी को सुखदाता है ॥४॥ अग्नि की ज्वाला हवि-वाहक एवं व्याधियों को रोकने वाली होने से द्वार के समान है। जैसे स्त्रियाँ पति को आदर देती हैं, वैसे ही हवि को व्याप्त करने वाली प्रकाशमान लपटो ! तुम देवगण के लिये सुख देने वाली बनो ॥५॥ अग्नि की दीप्ति उषा और आहुति की दीप्ति तथा यज्ञ का सम्पादन करती और देवगण से संयुक्त होती हैं। यह दिव्य, परस्पर मिलने वाली, सुदीप्त, यजमान के लिये लक्ष्मी की स्थापना करें ॥६॥ वायु और अग्नि दिव्य हैं, मनुष्य होताओं में मुख्य हैं, सुन्दर वाणी वाले, यज्ञ प्रेरक एवं यज्ञ निर्माता हैं। होताओं पर अनुग्रह

करते और आह्वानीय अग्नि की सेवा का आदेश देते हैं। अतः यह यज्ञोपकारक मुझ पर भी उपकार करें ॥७॥ सब भूतों को जल से संतुष्ट करने वाले अग्नि की कांति, पृथिवी और सरस्वती आह्वान करने पर सचेत होकर आवें। यह सुन्दर कर्म वाली त्रिदेवियाँ कुशा पर विराजमान हों ॥८॥ जो त्वष्टा देवता द्यावा-पृथिवी और सब भूतों को अनेक रूप देता है, हे होता अग्ने! हमारी प्रेरणा से उस त्वष्टा का आज पूजन करो ॥९॥ हे देव! देवताओं के भाग इस पशु-रूप अन्न और हवियों को हर ऋतु में दो। वनस्पति, शमिता और अग्नि इस हव्य को जल और घृतयुक्त कर सुस्वादु बनादें ॥१०॥ यह अग्नि प्रकट होते ही यज्ञारम्भ करते हैं, यह प्रकट होते ही देवताओं के अग्रगण्य होते हैं। इस देवाह्वाक अग्नि के मुख में स्वाहाकारयुक्त हवि को देवगण ग्रहण करें ॥११॥

१३ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान् । देवता—सर्पविषनाशनम् छन्द—जगती, पंक्ति, अनुष्टुप्)

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम्।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥१॥
यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम्।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥२॥
वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥३॥
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥४॥
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥५॥
असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ॥६॥

आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ।७।
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्नी ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥८॥
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ॥६॥
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम्
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् ।
ताबुवेनारसं विषम् ॥१०॥
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् ।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥११॥

स्वर्ग के देवता वरुण ने मुझे उपदेश दिया। उनके वचनों से मैं तेरे विष को हटाता हूँ। जो विष मांस में, अथवा उससे ऊपर है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ। रेत में जल के नष्ट होने के समान तेरा विष नष्ट हो गया ॥१॥ जल को शोषण करने वाले तेरे विष को मैंने भीतर ही रोक लिया। तेरे उत्तम, मध्यम, अधम विष को मैं ग्रहण करता हूँ, वह मेरे डर से नाश को प्राप्त हो ॥२॥ मेरा वचन वर्षा करने वाला और मेघ के समान गर्जनशील है, मैं अपने उग्र वचनों से तुझ सर्प को बांधता हूँ। अन्धकार में सूर्योदय के समान यह पुरुष विष-मुक्त होकर जीवित हो जाय ॥३॥ हे सर्प ! अपनी नेत्र शक्ति से मैं तेरी नेत्र शक्ति का नाश करता हूँ। विष से विष को नष्ट करता हूँ। तू मृत्यु को प्राप्त हो, तेरा विष तुझे ही प्राप्त हो ॥४॥ हे काले और निन्दनीय सर्पो ! मेरे मित्र के स्थान के पास न रहो। मेरी इस बात को औरों को सुनाते हुए अपने विष से स्वयं ही व्याप्त होओ ॥५॥ कृष्ण वर्ण वाले, गीले स्थान पर रहने वाले, बभ्रु वर्ण वाले, शुष्क स्थानवासी और सात्रासाह सर्प के क्रोध को, धनुष से रोदे उतारने के समान तथा मरुभूमि में रथों को उतारने के समान उतार देता हूँ ॥६॥ हे सर्पो ! तुम्हारे माता पिता आलिगी प्राण में और विलगी द्रुतगति वाले हैं। तुम्हारे बंधुओं को हम जानते हैं। तुम निर्वीय हमारा कुछ नहीं कर सकते ॥७॥ विशाल

मूला वृक्ष से प्रकट, उसकी पुत्री सर्पिणी, काली सर्पिणी की सेविका है। दाँत से क्रोध करने वाली इन सब सर्पिणियों का दुख देने वाला विष प्रभावहीन हो ॥८॥ पर्वत के समीप घूमने वाली से ही ने कहा कि खुदे हुए स्थानों में रहने वाली सर्पिणियों का विष प्रभावहीन हो ॥९॥ तू ताबुव नहीं है, क्योंकि ताबुव के प्रभाव से विष प्रभावहीन हो जाता है ॥१०॥ तू तस्तुव नहीं है, क्योंकि तस्तुव से विष निष्प्रभाव हो जाता है ॥११॥

१४ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः। देवता—वनस्पतिः। छन्द—अनुष्टुप्, बृहती, त्रिष्टुप्)

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥१॥
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृत जहि।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तम त्वं जह्योषधे ॥२॥
रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३॥
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय।
समक्षमस्मा आ धेहि कृत्याकृतं हनत् ॥४॥
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते।
सुखो रथइव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५॥
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६॥
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७॥
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८॥
कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि।

न त्वामचक्रुपे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९॥
पुत्रइव पितरं गच्छ स्वजइवाभिष्ठितो दश
बन्धमिवावक्रमी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१०॥
उदेणीव वारण्य भिस्कन्दं मृगोव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥११॥
इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्याकृतं पुनः ॥१२॥
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथइव वर्ततां कृत्या कृत्याकृत पनः ॥१३॥

हे ओषधे ! सुन्दर पंख वाले गरुड़ ने तुझे पाया, आदि वाराह ने तुझे नाक से खोदा । कृत्या कर्म से हमारे वध की इच्छा वाले को तू नष्ट कर दे ॥१॥ तू उत्पीड़क राक्षसों को मार कृत्या का प्रयोग करने वालों को मार, जो हमको मारने की इच्छा करे उसे भी मार डाल ॥२॥ हे देवताओ! हिंसक के अस्त्र को काट डालो, कृत्या को कृत्या करने वाले पर छोड़ दो । स्वर्ण को मोह से ग्रहण करने के समान कृत्या करने वाला भी कृत्या को स्वयं प्राप्त करे ॥३॥ हे ओषधे ! तू कृत्या करने वाले के पास ही कृत्या को ले जा और उसे उसी के सामने रखदे जिससे वह उसी को नष्ट कर डाले ॥४॥ कृत्या करने वाले को ही कृत्या प्राप्त हो, शाप देने वाले को ही शाप लगे । जैसे सुन्दर पथ में रथ घूमता है, वैसे ही कृत्या प्रेरक के ऊपर कृत्या घूमे ॥५॥ यदि स्त्री या पुरुष ने तुझे पाप कृत्य के लिये प्रेरित किया है तो घोड़े पर रस्सी पटकने के समान कृत्या प्रेरक पर ही हम कृत्या पटकते हैं ॥६॥ हे कृत्ये ! तुझे देवताओं या पुरुषों ने किया है तो भी हम इन्द्र के सखा तुझे पुनः लौटाते हैं ॥७॥ हे राक्षस-सैन्य का सामना करने वाले इन्द्र ! इन कृत्याओं का सामना करो । हम इस कृत्या लौटाने के कर्म द्वारा कृत्या प्रेरक के लिये कृत्या को लौटाते हैं ॥८॥ हे संहार-साधनयुक्त कृत्ये ! जिसने तुझे किया है, उसे ही छेद कर मार डाल । जिसने तुझे नहीं किया उसे मारने के लिए हम तुझे तीक्ष्ण नहीं करते ॥९॥ हे कृत्ये! पुत्र के पिता के पास जाने के समान तू अपने उत्पत्तिकर्ता के पास जा।

और दबने पर सर्प द्वारा काट लेने के समान कृत्याकारी को डस। बंधन के बीच में टूटने पर अपने ही शरीर पर लगने के समान तू कृत्याकारी के पास लौट जा ॥१०॥ जैसे हथिनी, मृगी एवं एणीमृगी झपटती है, वैसे ही कृत्याकारी पर कृत्या झपट पड़े ॥११॥ हे द्यावा पृथिवी! कृत्याकारी को कृत्या बाण के समान बींधे। वह उसे मृग के समान पकड़ ले ॥१२॥ वह कृत्या, कृत्याकारी से प्रतिकूल आचरण करती हुई मिले। जैसे जल किनारे को ढाता हुआ मिलता है, वैसे ही मिले। वह कृत्याकारी पर रथ के समान घूमे ॥१३॥

१५ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—मधुला ओषधिः छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधुला करः ॥१॥
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥२॥
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥३॥
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥४॥
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५॥
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥६॥
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥७॥
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥८॥
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥९॥
दश च मे शतं मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१०॥
शतं मे च सहस्रं चापवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥११॥

यज्ञ के निमित्त उत्पन्न ओषधि, मेरी निन्दा करने वाले एक, दश या ग्यारह हों, तू मधुर है, अतः मेरे शब्द को भी मधुर कर।।१।। हे ऋतु अनुसार उत्पन्न होने वाली ओषधि ! मेरी निन्दा वाले दो हों या बीस, तू मधुर है। इसलिये मेरे शब्दों को भी मधुर बना ।।२।। जलोत्पन्न ओषधे! मेरे निन्दक तीन हों या तीस, तू मेरे वचनों को मधुर कर ।।३।। हे ऋतु अनुसार उत्पन्न ओषधे ! मेरे निन्दक चार हों या चालीस, तू मेरे वचनों को मधुर कर ।।४।। हे ऋतु-अनुसार उत्पन्न ओषधे ! मेरे निन्दक पांच हों या पचास, तू मधुर है, मुझे भी मिष्ठभाषी बना ।।५।। हे ऋतु-अनुसार उत्पन्न ओषधे ! मेरे निन्दक छः हों या साठ हों, तू मधुर है, अतः मुझे मिष्ठभाषी बना ।।६।। हे ऋतु-अनुसार उत्पन्न ओषधे ! तू मधुर है। मेरे निन्दक सात हों या सत्तर, मुझे मिष्ठभाषी बना ।।७।। हे ऋतुजात ओषधि, मेरे निन्दक आठ हों या अस्सी, तू मधुर है, मुझे मिष्ठभाषी कर ।।८।। हे ऋतुजात ओषधे ! मेरे निन्दक नौ हों या नव्वे, तू मधुर है, अतः मुझे मिष्ठभाषी बना ।।९।। हे ऋतावरे ! मेरे निन्दक दश हों या सौ, तू मधुर है, अतः मुझे मिष्ठभाषी बना ।।१०।। हे ऋतावरि ओषधे ! मेरे सौ हों या हजार, तू मधुर है, मुझे मिष्ठभाषी बना (अर्थात् यदि कोई शत्रु हमारी निन्दा करता है तो उसे मधुर भाषण अथवा सत्य वचन द्वारा ही सुधारना श्रेष्ठ है। मधुर भाषी का कोई विरोधी नहीं हो सकता) ।।११।।

१६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि–विश्वामित्रः। देवता–एकवृषः। छन्द–उष्णिक्, अनुष्टुप्, गायत्री)

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१॥ यदि द्विवृषोऽषि सृजारसोऽसि ।२
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ।३। यदि चतुर्वृषोसि सृजारसोऽसि ।४
यदि पञ्चवृषोऽसि मृजारसोऽसि ॥५॥
यदि षडवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥६॥
यदि सप्त वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥७॥
यदि अष्ट वृषाऽसि सृजारसोऽसि ॥८॥
यदि नव वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥९॥
यदि दस वृषोऽषि सृजारसोऽसि ॥१०॥
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥११॥

लवण ! यदि तू एक वृषभ समान शक्तिशाली है तो इस गौ के संतान उत्पन्न कर, वरन् तू प्रभावहीन समझा जायगा ॥१॥ हे लवण ! यदि तुझमें दो बैलों की शक्ति है तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर, नहीं तो तू प्रभावहीन समझा जायगा ॥२॥ हे लवण ! यदि तू तीन वृषभ के समान शक्ति से युक्त है तो इस गौ को संतानशालिनी बना- अन्यथा तू निष्प्रभाव माना जायगा ॥३॥ हे लवण ! यदि तू चार वृषभ के समान बलशाली है तो इस गौ को संतान से युक्त कर, अन्यथा तू प्रभाव-रहित माना जायगा ॥४॥ हे लवण ! यदि तू पाँच बैलों के समान बल वाला है तो इस गौ को संतानशालिनी बना नहीं तो तू प्रभावहीन माना जायगा ॥५॥ हे लवण ! यदि तू छै बैलों के समान बल वाला है तो इस गौ को संतानवती बना, अन्यथा तू निष्प्रभाव माना जायगा ॥६॥ हे लवण ! यदि तू सात बैलों के समान बलशाली है तो इस गौ के संतान उत्पन्न कर अन्यथा तू निष्प्रभाव माना जायगा ॥७॥ हे लवण ! यदि तू आठ बैलों की शक्ति से सम्पन्न है तो इस गौ के संतान उत्पन्न कर, अन्यथा तू प्रभावहीन समझा जायगा ॥८॥ हे लवण ! यदि तू नौ बैलों की शक्ति वाला है तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर अन्यथा तू निष्फल समझा जायगा॥९॥यदि तुझ में दश बैलों का बल है तो इस गौ के संतान उत्पन्न कर,नहीं तो तू प्रभावहीन माना जायगा ॥१०। हे लवण! यदि तू

एकादश शक्ति वाला है तो भी प्रभावहीन है । (मनुष्य के दस इन्द्रियां होती हैं, जो प्रत्येक बड़ी शक्ति रखने वाली होती है, शरीरस्थ आत्मा को इनके द्वारा अपनी कल्याण-साधना करनी चाहिये) ।।११।।

१७ सूक्त

[ऋषि—मयोभूः । देवता—ब्रह्मजाया । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्]

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्विषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ।।१।।
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ।।२।।
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ।।३।।
यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ।।४।।
ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ।।५।।
देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ।।६।।
ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ।।७।।
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ।।८।।
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ।।९।।

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१०॥

सूर्य, वरुण, वायु, चन्द्र, आपोदेवी इन ब्रह्मा से पूर्वोत्पन्न देवताओं ने ब्राह्मण का अपराध करने के विषय में कहा है, ॥१॥ प्रथम सोम ने ब्रह्म को उत्पन्न करने वाली गौ को दे दिया, उस समय वरुण और सूर्य उनके सहगामी एवं अग्नि होता थे ॥ २ ॥ 'यह ब्रह्म का उत्पन्न करने वाला है' ऐसा कहने वाले का संकल्प हाथ में ले। इसे दूत के द्वारा न दे। इससे क्षत्रिय के राज्य की रक्षा होती है ॥३॥ जिसे ग्राम की ओर बढ़ती हुई उल्का कहते हैं, उस उल्का का 'अंश' जहाँ गिरता है, उस राज्य का नाश होता है। इस प्रकार ब्रह्मजाया राज्य का नाश कर देती है ॥४॥ ब्रह्मचारी देवताओं का अंग रूप है, वह ब्रह्मचर्य में रमता हुआ प्रजा में विचरता है। जैसे सोम के चमस को देवताओं ने पाया, वैसे बृहस्पति ने ब्रह्मचारी द्वारा जाया को प्राप्त किया ॥५॥ स्वर्ग में स्थित सप्त ऋषियों और देवताओं ने ब्रह्मजाया की चर्चा की थी—"ब्राह्मण की अपहृत स्त्री स्वर्ग में भयंकर बन कर बुरी गति में डालती है" ॥६॥ संसार की उथल-पुथल, परस्पर वीरों की कटा-मरी, गर्भों का गिरना यह सब कर्म ब्रह्मजाया ही करती है ॥७॥ ब्रह्मजाया के ब्राह्मण पालक चाहे दश हों, परन्तु जो ब्राह्मण उसका पाणिग्रहण करता है, वही उसका स्वामी होता है ॥८॥ इस गौ का पति ब्राह्मण है, क्षत्रिय और वैश्य नहीं। भगवान् पांच मनुष्यों से इसी बात को कहते हुये गमन करते हैं ॥९॥ राजा, मनुष्य और देवताओं ने सत्य को ग्रहण कर बारम्बार गौ को प्रदान किया ॥१०॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥११॥
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्त्या ॥१२॥
न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१३॥

नास्या क्षत्ता निष्कग्रीव सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१४॥
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१५॥
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१६॥
नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१७॥
नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानियत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥१८॥

देवताओं द्वारा स्वच्छ किए हुए बलकारक अन्न का विभाग कर ब्रह्मजाया को देते हुए महान् कीर्तिशाली परमात्मा की उपासना करते हैं ॥११॥ जिस राज्य में ब्राह्मण की स्त्री और गो रोकी जाती हों, वहाँ विविध कल्याणों को करने वाली नारी पलंग पर सुख से सो सके ॥१२॥ जिस राज्य में ब्राह्मण की स्त्री रोक ली जाती है, वह राज्य विशाल मस्तक वाले पुरुष से हीन होता है ॥ १३ ॥ जहाँ ब्राह्मण-नारी अचेत कर रोकी जाती है, उस राजा का छत्ता निष्क धारण करने पर 'सूना" के आगे नहीं पहुँचता ॥१४॥ जिस राज्य में ब्राह्मण-स्त्री मोह में रोकी जाती है, उस राजा का श्वेत अश्व जुत कर भी प्रशंसित नहीं होता ॥१५॥ ब्राह्मण-स्त्री जिस राज्य में मोहवश रोकी जाती है, उसमें पुष्करिणी नहीं रहती और वहाँ कमल तथा पद्मकन्द भी पैदा नहीं होता ॥१६॥ गो मोहवश जिस राज्य में रोक ली जाती है, वहाँ दुहने वाले, किंचित् भी नहीं दुह पाते ॥१७॥ स्त्री से रहित एवं पाप बुद्धि से जो ब्राह्मण रात्रिवास करता है, उसके स्वामी के यहाँ गौ कल्याण-कारिणी नहीं होती तथा वृषभ भी भार वहन नहीं करता (इस सूक्त में स्त्री के चरित्र और पवित्रता की रक्षा का महत्व बतलाया गया है कि

जहां के पुरुष स्त्रियों के चरित्र की रक्षा में तत्पर रहते हैं, उस देश और जाति की उन्नति होती है, और जहां इसके विपरीत आचरण किया जाता है, वहां का समाज पतन की ओर अग्रसर होने लगता है ॥१८॥

१८ सूक्त

(ऋषि—मयोभूः। देवता—ब्रह्मगवी। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप)

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥१॥
अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजित।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥२॥
आविष्ठिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥३॥
निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम्।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥४॥
य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥५॥
न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥६॥
शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन्।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥७॥
जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥८॥
तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥९॥
ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥१०॥

हे राजन् ! यह गो तुझे भक्षण के निमित्त देवताओं ने नहीं दी। तू इस अखाद्य गो को खाने की इच्छा मत कर (यहाँ गो का अर्थ वाणी अथवा भूमि से भी है अर्थात् राजा को हर प्रकार से ज्ञान प्रचारक ब्राह्मण की रक्षा करनी चाहिये) ॥ १ ॥ आत्म पराजित, इन्द्रिय-द्रोही राजा ब्राह्मण की गो का भक्षण करे तो वह पापी कल तक जीवित न रहे ॥२॥ ब्राह्मण की गो केंचुली से घिरी प्यासी सर्पिणी के समान है। हे राजन् ! यह भक्ष्य योग्य नहीं है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण के पदार्थ को भक्ष्य समझने वाला विष को पीता और अपने क्षात्र तेज को गँवाता है। वह क्रोध में भरे अग्नि के समान अपने सर्वस्व को नष्ट कर डालता है ॥४॥ ब्राह्मण को मृदु समझने वाला जो अज्ञानी ब्राह्मण को नष्ट करने की इच्छा करता है, वह देव-हिंसक है। इन्द्र उस पापी के हृदय में अग्नि प्रज्ज्वलित करते और आकाश पृथिवी उसके प्रति वैर रखते हैं ॥ ५ ॥ अपने शरीर को कोई नष्ट नहीं करना चाहता, वैसे ही अग्नि रूप ब्राह्मण का नाश नहीं करना चाहिये। सोम ब्राह्मण का दायाद है। इन्द्र ब्राह्मण के शाप को पूर्ण करने वाले हैं ॥ ६ ॥ ब्राह्मण के अन्न को स्वादिष्ट वस्तु समझ कर भक्षण करने वाला पापी अनेकों विपत्तियों को निगलता है और उन्हें मिटाने का यत्न करके भी नहीं मिटा पाता ॥७॥ ब्राह्मण की जीभ प्रत्यंचा के समान है, वाणी कुल्मल के समान और तपयुक्त दाँत तीर के सदृश होते हैं। देवताओं से प्रेरित ब्राह्मण इन्हीं धनुषों से देव-हिंसकों को बींधता है ॥८॥ ब्राह्मण अपने तप और क्रोध के तीक्ष्ण बाणों को चलाते हैं तो वे दूर से ही शत्रु को बींध देते हैं ॥९॥ वीतहव्य वंशज जो सहस्रों राजा पृथिवी पर राज्य करते थे, वे ब्राह्मण की गो का अपहरण करने के कारण भ्रष्ट हो गए ॥१०॥

गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत्।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥११॥
एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥१२॥
देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्।

यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥१३
अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायद उच्यते ।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ॥१४
इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥१५

जिन्होंने 'केसरप्रावंधा' चर्म अजा का पाक किया, उन हव्यों को मार खाती हुई गौ ने ही छिन्न-भिन्न कर दिया ॥११॥ सैकड़ों लोग जो पृथिवी को कम्पायमान करते थे, वह ब्राह्मण की सन्तान को मारने के कारण हार गये ॥१२॥ ब्राह्मण-हिंसक विष से जीर्ण हुआ अस्थिमात्र रूप से रहता है । जो देव-बन्धु ब्राह्मण को मारता है, वह पितृयान द्वारा मिलने वाले लोक को प्राप्त नहीं होता ॥१३॥ हमारे पदों को पहुँचाने वाला अग्नि है, हमारा दायाद सोम है, हमारी ओर से मार-काट करने वाले इन्द्र हैं, इसे ज्ञानीजन जानते हैं ॥१४॥ हे राजन् ! ब्राह्मण का वाणी रूप बाण विष में बुझे बाण या सर्पिणी के समान भयंकर होता है । कष्ट देने वाले पापियों को ब्राह्मण उसके द्वारा नष्ट करता है॥१५॥

सूक्त १९

[ऋषि—मयोभूः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती।]

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् ।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥१
ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः ।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥२
ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे ।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥३॥
ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥४॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्विषम् ।५।
उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ।६।
अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ।७।
तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ।८।
तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोप गा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ।।९
विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् ।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ।१०।

मृञ्जय वृद्धि को प्राप्त हुए, परन्तु उन्होंने ब्राह्मण भृगुओं को मार डाला। इसलिए वे हार गए और स्वर्ग को प्राप्त न कर सके।।१।। बृहत् साम वाले अङ्गिराओं को जिन मनुष्यों ने आपत्तियों से छा दिया, घृत ने उन्हें नष्ट करने वाला पुत्र दिया और देवताओं ने उसकी संतान को दूर फेंक दिया ।।२।। ब्राह्मणों से कर चाहने वाले और उन पर थूकने वाले रक्त की नदी में बालों को खाते हुए अब तक पड़े हुए हैं ।।३।। जिस राष्ट्र में ब्राह्मण की गौ तड़पती है, वह उसके तेज का नाश कर देती है। वहाँ वीर्य को सींचने वाले वीर पैदा नहीं होते ।। ४ ।। इसे काटना क्रूर कर्म है। इसका माँस तृषा को उत्पन्न करता है। मारने की इच्छा से रखी हुई गौ का पिया जाने वाला दूध पितरों में पाप को उत्पन्न करने वाला होता है ।।५।। जो राजा ब्राह्मण को नष्ट करता है, जहाँ ब्राह्मण दुःखी रहता है, वह राज्य और राजा नष्ट हो जाते हैं ।६।। ब्राह्मण पर डाली हुई विपत्ति, उस पापी के राज्य को चार नेत्र, चार

कान, चार ठोड़ी, आठ पैर, दो मुख और दो जीभ वाली होती हुई नष्ट कर देती है ॥७॥ छेद वाली नौका को जल द्वारा डुबाने के समान, पाप ही उस राष्ट्र को डुबाता है। जिस राष्ट्र में ब्राह्मणों की हिंसा होती है, उसे ब्राह्मण पर डाली गई आपत्ति ही मिटा देती है ॥८॥ हे नारद ! जो ब्राह्मण के धन को अपना समझता है, उसे वृक्ष भी अपनी छाया में नहीं आने देना चाहते ॥९॥ वरुण कहते हैं कि ब्राह्मण का धन छीनना विष के समान है। ब्राह्मण की सम्पत्ति लेकर कोई जीवित नहीं रहता ॥१०॥

नवव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥११॥
यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥१२॥
अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥१३॥
येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥१४॥
न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥१५॥

जिन आठ सौ दश पुरुषों से भूमि काँपती थी, वे ब्राह्मण की संतान को नष्ट करने के पाप से पराजित हुए ॥११॥ जिस रस्सी को मृत पुरुष के शव में बाँधते हैं, उसी को, हे ब्राह्मण को हानि पहुँचाने वाले ! देवताओं ने तेरा बिछौना बताया है। ॥१२॥ कृपा के पात्र ब्राह्मण के आंसुओं का जो जल है, तेरे लिये वही जल भाग देवताओं ने निश्चित किया है ॥१३॥ जो जल मृतक के स्नान और मूंछें भिगोने के लिये है, वही जल-भाग तेरे लिये निश्चित है ॥१४॥ ब्राह्मण को दुःख देने वाले के राज्य की ओर सूर्य और वरुण द्वारा होने वाली वर्षा नहीं होती। उसकी सभा में सामर्थ्य नहीं होती और उसकी सेना मित्रों को भी वश में नहीं रख सकती ॥१५॥

२० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वानस्पत्यो दुन्दभिः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

उच्चैर्घोपो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंहइव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥१

सिंहइवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वाशितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ।.२॥

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३

संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५॥

पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥६

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ।.७

धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्रां अव जङ्घनीहि ॥८

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्ति बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥९

श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥१०

शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥११॥

अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥१२

हे दुन्दभि । तू वनस्पतियों से बनी हुई एवं उच्च स्वर वाली है, अतः बलवानों के समान आचरण कर । उच्च घोष से तू शत्रुओं का मर्दन कर और जीतने की कामना से सिंह के समान गर्जन कर ॥१॥ हे वृक्ष के समान आयु वाली दुन्दुभे ! तू गौ पर रंभाते हुए वृषभ के समान गर्जन करने वाली विशेष प्रकार से बँधी है। तू वीर्यवर्षक है. इससे तेरे शत्रु निर्वीय होते हैं । इन्द्र के समान तेरा बल वीरों के सहन करने योग्य है ॥२॥ गौ की कामना वाला वृषभ झुंड में ही पहिचान लिया जाता है वैसे ही तू धन जीतने की इच्छा से शब्द कर और शत्रु-हृदयों को संताप से बींध डाल,वे पराजित हो गांवों को छोड़ कर चले जावें॥३॥ तू सेनाओंकाग्रहण करती हुई अनेक प्रकार के शब्द कर और युद्धों को जीत। वेधा है, अतः दिव्य वाणी को बोल और शत्रु के धनों को मुझे प्राप्त करा ॥४॥ दुन्दुभि की गर्जना से सचेत हुई शत्रु की स्त्री युद्ध स्थल में हुई हत्याएं देखकर डरी हुई अपने पुत्र का हाथ पकड़ कर याचना करती हुई भाग जाय ॥५॥ हे दुन्दुभि ! तेरी ध्वनि पहले निकलती है इसलिए शत्रु की सेना को नष्ट कर और पृथिवी की पीठ पर अपने सत्य वचनों का प्रसार कर ॥६॥ तेरी ध्वनियां द्यावा पृथिवी के मध्य अनेक रूप से प्रसारित हों तू शब्द से समृद्ध हो उच्च होती हुई मित्रों में वेग भरने के लिये उच्च स्वर कर ॥७॥ हे दुन्दुभे ! तू बुद्धिपूर्वक बजाने से सुन्दर शब्द निकालती है, तू बलवान पुरुषों के हाथों को ऊँचा कर उन्हें हर्षित कर । तू वीरों का आह्वान करती हुई हमारे मित्रों द्वारा शत्रुओं का नाश करा। तू इन्द्र की स्नेहपात्री है ॥८॥ हे दुन्दुभि !तू गर्जनशील, गांवों को गुञ्जाने वाली, धनदात्री एवं सेना को साहसी बनाने वाली है। तू कल्याण वाली, उत्तम पुरुषों के जानने वाली है । इन दो राजाओं के मध्य अनेक वीरों को यश दे ॥९॥ हे युद्ध जीतने वाली दुन्दुभे ! तू कल्याणी, धन जीतने वाली, मन्त्र से तीक्ष्ण की हुई एवं बलवती है। जैसे अधिपवण काल में पर्वत अपने लघु खण्डों को दबाता हुआ नाचता

है वैसे ही तू शत्रुओं के धन पर अधिकार करती हुई नृत्य कर ॥१०॥ तू शत्रुओं की टक्कर सहने वाली वाणी को ऊपर निकलने वाली, गवेषणा करने वाली वाग्मी पुरुष के समान युद्ध जीतने के निमित्त शब्द को भरती हुई गूंज ॥११॥ हे दुंदुभे ! तू हर्ष में भरी हुई नहीं डिगती। तू आगे जाकर योद्धाओं को चलाने वाली और युद्ध को जीतने वाली है। तू इन्द्र द्वारा रक्षित है अतः शत्रुओं के हृदय को जलाती हुई उन्हें प्राप्त हो ॥१२॥

२१ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः। देवता-वानस्पत्यो दुन्दुभि। छन्द-पंक्तिः, अनुष्टुप्, प्रभृति)

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥१॥
उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥२॥
वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥३॥
यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥४
यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय॥५
यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥६
परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥७॥
यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥८॥

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥६॥
आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत ।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥१०॥
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥११॥
एता देवेसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥१२॥

हे दुन्दुभे ! तू शत्रुओं में परस्पर विद्वेष का प्रसार कर। हम उनमें वैर भाव फैलाना चाहते हैं, तू उनका तिरस्कार करती हुई नष्ट कर दे ॥१॥ हमारे शत्रु घृताहुति से कम्पित हों और मन, नेत्र, हृदय से भयभीत हुये पलायमान करें ॥२॥ हे वनस्पति-निर्मित दुन्दभे ! तू चर्म मंडित है। तू सम्पूर्ण मघों जैसा घोर शब्द करती है। तू घृत से अभिघारित है। तू शत्रुओं को त्रासजनक शब्द से पीड़ित कर ॥३॥ हे दुन्दुभे ! शिकारी से वन-मृगों के भयभीत होने के समान तू गर्जन करती हुई उनके मनों को मोहित कर और त्रासदायक बन ॥४॥ जैसे भेड़ बकरियाँ भेड़ियों के भय से भागती हैं, वैसे ही गड़गड़ाहट करती तू उनको त्रस्त कर ।५॥ जैसे बाज से पक्षी और सिंह से सभी प्राणी भयभीत रहते हैं, वैसे ही तू शत्रुओं की ओर गर्जन कर और उनके मनों को भ्रमित करती हुई त्रास देने वाली बन ॥६॥ युद्ध के स्वामी देवता ने हरिण-चर्म से आच्छादित दुन्दुभि द्वारा शत्रुओं को भयभीत कर हरा दिया ॥७॥ इन्हें दव जिन पैरछलों से खेल करते हैं, उन से हमारे यह सेनायुक्त शत्रु त्रास को प्राप्त हों ॥८॥ शत्रुओं की सेनायें हार कर जिस ओर भग रही हैं, उस ओर हमारी दुन्दुभि और प्रत्यंचा के शब्द मिलकर घोर गर्जन करने वाले हों ॥ ६ ॥ हे सूर्य ! शत्रुओं की चक्षु-शक्ति को ले लो। हे किरणों ! तुम शत्रुओं के पृष्ठ भाग पर दौड़ो शत्रुओं का भुज-बल क्षीण होने पर उनके पैरों की जूतियाँ भी साथ न दें ॥१०॥ हे मरुतो ! तुम उग्रकर्मा हो। राजा सोम, वरुण,

महादेव, मृत्यु और इन्द्र के साथ होकर शत्रुओं का मर्दन करो ॥११॥ समान चित्त वाली, सूर्य की पताका धारण करने वाली देव सेनायें हमारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें। यह आहुति ग्रहण करने योग्य हो ॥ १२ ॥

२२ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि–भृग्वंगिराः। देवता–तक्मनाशनः। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् बृहती)

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः।
वेदिर्बर्हिः समिधःशोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥१॥
अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधान्य ङ्ङधराङ् वा परेहि ॥२॥
यः परुषः पोरुषेयोऽवध्वंसइवारुणः।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुवा ॥३॥
अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥४॥
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५॥
तक्मन् व्याल वि गद व्यंग भूरि यावय।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥६॥
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥७॥
महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥८॥
अन्तक्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः।
प्रभूदु प्रायस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ॥९॥

यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः ।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्‌ग्धि नः ॥१०॥
मास्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् ।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ॥११॥
तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥१२॥
तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥१३॥
गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यो ऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥१४॥

अग्नि, सोम, इन्द्र, वरुण, वेदी, बर्हि और समिधायें प्रज्ज्वलित होकर ज्वर को रोकें और हमारे शत्रु यहाँ से भाग जांय ॥१॥ हे ज्वर ! तू देह को नष्ट कर देने वाला है, तू सब मनुष्यों को अग्नि के समान संताप देता हुआ हरे वर्ण का-सा बना देता है अतः तू तिरस्कृत, निर्बल एवं अधम स्थान को प्राप्त हो ॥२॥ जो कठोर, अध्वंस के समान लाल है ऐसे ज्वर को, हे शक्तिवान् तुम दूर हटाओ ॥ ३ ॥ मैं ज्वर को प्रणाम करता हूँ। उसे निम्न स्थान में जाने को प्रेरित करता हूँ। मुक्के के समान प्रहार ज्वर महान् वर्षकों को पुनः प्राप्त हो ॥४॥ ज्वर का स्थान मूँज से युक्त है, वीर्य की अधिक वर्षा करने वाले पुरुष इसके गृह रूप हैं। हे तक्मन् ! बाल्हिकों में, तू जितना है उतना ही मिला रहता है ॥५॥ जीवन को सर्प के समान कष्ट देने वाले ज्वर ! तू चोरी करने वाली दासी से वज्र रूप से मिलता हुआ हमसे अपने को दूर कर ॥६॥ हे ज्वर तू जीवन को दुःखी करने वाला है। तू मूँज वाले प्रदेश अथवा बाल्हीक प्रदेशों को या उससे भी दूर चला जा और हे तक्मन् ! तू प्रथम अवस्था वाली शूद्रा से मिलता हुआ उसे ही कम्पायमान कर ॥७॥ हम मूँज युक्त या महा वृद्धियुक्त स्थानों पर जाने के लिये ज्वर से कहते हैं। तू वहाँ जाकर बन्धुओं का भक्षण कर ॥८॥ ज्वर हमसे बल्हिकों में प्रस्थान करेगा। तू अन्य क्षेत्रों में रम रहा

है अतः हमको सुख प्रदान कर ॥९॥ तू शीत के साथ होने वाला ज्वर है, तू कास के साथ कम्पित करने वाला है। तू अपने इस भयंकर शस्त्रों सहित हमसे दूर हो जा ॥१०॥ हे तक्मन् शीत ज्वर ! तुम खाँसी और बल क्षीण करने वाले रोगों को हमारा मित्र मत बनाओ। मैं तुमसे बारम्बार कहता हूँ कि उस स्थान से नीचा होकर यहाँ मत आ ॥११॥ हे तक्मन् ! बल को क्षीण करने वाला रोग रूप तेरा भाई और खाँसी तेरी बहिन तथा पाप रूप भतीजा है। इनके साथ तू दुष्ट पुरुष को प्राप्त हो ॥१२॥ हे देव ! तिजारी, चौथैया, वर्षा, शरद और ग्रीष्म के तथा शीत और रूर ज्वर को नाश कीजिए ॥१३॥ मूँज युक्त अंग मगध, गंधार देशों में हम कष्ट देने वाले रोग भगाते हुये मनुष्यों को सुखी करते हैं ॥१४॥

२३ सूक्त

(ऋषि—काण्वः। देवता—इन्द्रादयः। छन्द—अनुष्टुप्)

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१॥
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥२॥
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥४॥
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५॥
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥६॥

येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥७॥
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वांइव ॥८॥
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारंगमर्जुनम ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥९॥
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२॥
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३॥

द्यावा-पृथिवी, सरस्वती, इन्द्र और अग्नि मुझ में ओत-प्रोत हैं वे कृमियों को नष्ट करें ॥१॥ हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! इस कुमार के शत्रु रूप कृमियों को तुम मेरे उग्र वचनों से नष्ट करो ॥२॥ नेत्रों में घूमने वाले, नाक के नथुने में घूमने वाले तथा दांत में रहने कृमियों को हम नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥ दो एक रूप वाले, दो विकट रूप वाले, दो रक्त वर्ण वाले, एक खाकी रङ्ग वाला, एक खाकी कान वाला, एक गृध्र नामक तथा एक कोक नामक यह सभी कीड़े मन्त्र के बल से नाश को प्राप्त हुये ॥४॥ तीक्ष्ण कोख वाले, तीक्ष्ण भुजा वाले, तीक्ष्ण भुजा वाले, काले एवं अनेक रूप वाले कीड़ों को हम मंत्र बल से नष्ट करते हैं ॥५॥ सब प्राणियों के लिये दर्शनीय सूर्य अदृष्ट कीटों को नष्ट करते हैं । वे दृश्य, अदृश्य सब प्रकार के कृमियों को मारते हुये पूर्व से उदय हो रहे हैं ॥६॥ द्रुतगामी,संतापप्रद,कम्पित करने वाले तीक्ष्ण कीट दृश्य अथवा

अदृश्य सबको ही तू मंत्र शक्ति से नष्ट कर ।।७।। तीक्ष्णगामी कृमि मंत्र शक्ति से नाश को प्राप्त हुआ। पत्थरों से चनों के पिसने के समान नदनिमा आदि कीटों को मैंने पीस डाला ।। ८ ।। तीन शिर, तीन ककुद, शबल वर्ण और श्वेत वर्ण वाले कृमियों को मंत्र शक्ति से नष्ट करता हुआ मैं इनके सिर और पसलियों का उन्मूलन करता हूँ ।।९।। अत्रि, कण्व और जमदग्नि ऋषि जैसे मंत्र शक्ति से तुम्हें नष्ट करते हैं, वैसे ही मैं भी करता हूं। अगस्त्य के मंत्र की शक्ति से मैं तुम्हें मारता हूँ ।। १० ।। कृमियों का राजा और मंत्री भी हमारे मंत्र और औषधि के प्रभाव से नष्ट हो गये। माता, भाई बहिनों के सहित कृमियों का कुटुम्ब पूरी तरह नाश को प्राप्त हुआ ।।११।। इनके बैठने के स्थान नष्ट हो गए। बीज रूप में स्थित लघु कीट भी नाश को प्राप्त हुये ।।१२।। सब नर और मादा कृमियों को पत्थर से नष्ट करता हुआ मैं उसके मुख को अग्नि से दग्ध करता हूँ ।।१३।।

२४ सूक्त

[ऋषि–अथर्वा। देवता—सविता: प्रभृति। छन्द—शक्वरी, जगती।

सविता प्रसवानामधिपतिः सः मावतु।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।१।।

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्स्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।२।।

द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम्।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।३।।

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥४॥

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामास्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥५॥

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् कर्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देनहूत्यां स्वाहा ॥६॥

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥७॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन कर्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥८॥

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥९॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१०॥

सभी उत्पन्न पदार्थों के अधिपति सूर्य हैं, वह वेदोक्त कर्म में, प्रतिष्ठा और संकल्प मे, देवाह्वान एवं आशीर्वादात्मक कर्म में मेरे रक्षक हों ॥१॥ वनस्पतियों के स्वामी अग्नि पुरोहिताई के वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, संकल्प, देवाह्वान, आशीर्वाद आदि में मेरी रक्षा करें ॥२॥ दाताओं के स्वामी द्यावा-पृथिवी वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, संकल्प, देव-आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कर्म में रक्षक हों ॥३॥ जल के अधिपति वरुण इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवोपासना तथा आशीर्वादात्मक कार्य में मेरी रक्षा करने वाले बनें ॥४॥ पर्वतों से स्वामी मरुद्गण इस पुरोहिताई के वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवोपासना, आशीर्वाद कर्म में मेरे रक्षक हों ॥ ५ ॥ वृष्टि के स्वामी मित्रा-वरुण मेरे इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा सम्बन्धी, चिति, संकल्प, देवोपासना, आशीर्वाद आदि कर्मों में मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ लताओं के स्वामी सोम इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, चिनि, संकल्प, देवाराधन आशीर्वाद कर्म में मेरी रक्षा करें ॥७॥ अन्तरिक्ष के स्वामी वायु मेरे इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवाराधन तथा आशीर्वाद कर्मों में मेरी रक्षा करने वाले हों ।८॥ चक्षु के अधिपति सूर्य देव मेरे इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवाराधन तथा आशीर्वाद कर्मों में मेरी रक्षा करें ॥९॥ नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा मेरे इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवाराधन तथा आशीर्वाद कर्म में मेरी रक्षा करें ॥१०॥

इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्या
देवहूत्यां स्वाहा ॥११॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१२॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१३॥

यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्याकूत्यामस्यामाशिष्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१४॥

पितरः परे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१५॥

तता अवरे ते मवन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१६॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१७॥

स्वर्ग के राजा इन्द्र मेरे इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा चित्ति संकल्प, देवोपासन, आशीर्वाद-कर्म में रक्षक हों ॥११॥ पशुओं के स्वामी मरुद्-गण के पिता हैं, वे मेरे वेदोक्त, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवोपासन, आशीर्वाद-कर्मों में रक्षक हों ॥ १२ ॥ प्रजा-स्वामिनी मृत्यु मेरे वेदोक्त, प्रतिष्ठा, चित्ति, संकल्प, देवोपासन, आशीर्वाद-कर्मों में रक्षा करें ॥१३॥ पितरों के स्वामी इम वेदोक्त, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवाराधना, आशीर्वाद कर्मों में मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ सात पीढ़ियों से ऊपर के पितर इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवाराधन, आशीर्वाद कर्मों में मेरे रक्षक हों ॥ १५ ॥ सपिण्ड पितर इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवाराधन, आशीर्वाद कर्मों में मेरी रक्षा करें ॥ १६ ॥ ततामह (मृत) पितर इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, चिति, संकल्प, देवाराधन, आशीर्वाद इन सब कर्मों में मेरी रक्षा करें ॥१७॥

२५ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—योनि,गर्भ पृथिव्यादयः। छन्द—अनुष्टुप्,बृहती)

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरो पर्णमिवा दधत् ॥१॥
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥२॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥३॥
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥४॥
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥५॥
यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।

यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥६॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः॥७॥
अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥८॥
वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥९॥
धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१०॥
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥११॥
सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१२॥
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१३॥

पर्वत की औषधि, स्वर्ग के पुण्य और अङ्ग-शक्ति से पुष्ट वीर्य धारण करने वाला पुरुष, जल में पत्ते के समान गर्भाधान करता है ।१। सब भूतों के गर्भ को जैसे पृथिवी धारण करती है, वैसे ही मैं तेरा गर्भ धारण करती हुई, उसकी रक्षा के लिए तुझे बुलाती हूँ ॥२॥ हे सिनिवाली ! हे सरस्वती ! हे कल्याणी ! गर्भ को पुष्ट करो। पुष्पमालधारी अश्विद्वय तेरे गर्भ को पुष्ट करें ॥३॥ मित्रावरुण, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि और धाता तेरे गर्भ को पुष्ट करें ।४॥ त्वष्टा रूप रचें, प्रजापति सिंचन करें विष्णु तेरी जननेन्द्रिय को समर्थ करें और धाता तेरे गर्भ को पुष्ट करें ॥५॥ वरुण, सरस्वती और वृत्रनाशक इन्द्र जिस गर्भकरण को जानते हैं, उस गर्भकारक वस्तु का तू पान कर ॥६॥ हे अग्ने ! तुम

ओषधों के, वनस्पतियों के और सभी भूतों के गर्भ हो अतः तुम मेरे गर्भ को पुष्ट करो ॥७॥ हे वृष्ण्यावान् ! तू वर्धक है, गर्भ स्थापित कर, ऊपर होकर चलता हुआ वीरता कर। हम तुझे प्रजा के निमित्त ग्रहण करते हैं ॥८॥ हे सान्त्वनामयी साध्वी ! तू विशिष्ट गति वाली हो, मैं गर्भाधान करता हूँ। सोमपायी देवताओं ने इस लोक और परलोक में रक्षा करने वाला पुत्र प्रदान किया है ॥९॥ हे धाता ! इस नारी की आंतों से स्ववत मूत्र से मूत्राशय में ले जाने वाली दोनों पसलियों की ओर स्थित नाड़ियों में पुरुष पुत्र को पुष्ट करो जिससे यह दशवें महीने प्रसव करे ॥१०॥ हे त्वष्टा ! इसकी अन्तड़ियों से निकले मूत्र को मूत्राशय में ले जाने वाली दोनों पसलियों की ओर स्थित नाड़ियों में पुरुष पुत्र को पुष्ट करो, जिससे यह दशवें मास बालक प्रसव करे ॥११॥ हे सवितादेव ! इस स्त्री की अन्तड़ियों से निकले मूत्र से मूत्राशय में ले जाने वाली दोनों पसलियों की ओर स्थित नाड़ियों में पुरुष पुत्र को पुष्ट करो, जिससे यह दशवें महीने बालक प्रसव करे ॥१२॥ हे प्रजापते ! इस स्त्री की अन्तड़ियों से निकले मूत्र से मूत्राशय में ले जाने वाली दोनों पसलियों की ओर स्थित नाड़ियों में पुरुष पुत्र को पुष्ट करो, जिससे यह दशवें महीने पुत्र प्रसव करे (इस सूक्त में गर्भ की रक्षा के लिये परमेश्वर और अन्य देवताओं से प्रार्थना की गई है। साथ ही पुत्र उत्पन्न होने की भी प्रार्थना की गई है। इस प्रकार की भावनाओं के साथ गर्भाधान होने से मानसिक-शक्ति का भावी संतान पर कल्याणकारी प्रभाव पड़ता है) ॥१३॥

२६ सूक्त

[ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्नि प्रभृति। छन्द—उष्णिक, बृहती प्रभृति]

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥१॥
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥२॥
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥४॥
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥५॥

एय नगन् वर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥६॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥७॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥८॥
भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु ।
सुयुजः स्वाहा ॥९॥
सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥११॥
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणायाह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा
॥१२॥

हे यजुर्मन्त्रो और समिधाओ ! ज्ञाता अग्नि इस यज्ञ में तुमसे मिलें ॥१॥ सूर्य इस यज्ञ में सम्मिलित हों। उनके निमित्त स्वाहा हो ॥२॥ हे उक्थरसो ! इन्द्र इस यज्ञ में तुमसे मिलें। इनके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥३॥ हे शिष्ट मनुष्यो ! तुम अपनी पत्नियों सहित इस यज्ञ में आदेशों को धारण करो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥४॥ माता द्वारा पुत्र का पालन करने के समान मरुद्गण संयुक्त होकर छन्दों का पालन करें। मरुद्गण के लिये यह आहुति प्राप्त हो ॥५॥ कुशा और प्रोक्षणियों के साथ यज्ञ का वर्धन करती हुई यह अदिति देवी आयी है। यह आहुति इनके निमित्त स्वाहुत हो ॥६॥ भले प्रकार किये हुये तपों के फल को भगवान विष्णु मिलावें। यह आहुति विष्णु के निमित्त स्वाहुत हो ॥७॥ भले प्रकार ठीक किये रूपों को त्वष्टा देव इस यज्ञ में संयुक्त करें। यह आहुति उनके निमित्त हो॥८॥इस यज्ञ को भग देवता सुन्दर आशीर्वादों से युक्त करें। यह आहुति उनके लिये स्वाहुत हो ॥९॥सोम इस यज्ञ में संयुक्त होने वाले जलों को मिलावें। यह आहुति उनके लिये स्वाहुत हो॥१०॥इस यज्ञ में इन्द्र यज्ञानुरूप वीर्यों को संयुक्त करें। यह आहुति उनके निमित्त हो ॥११॥ हे बृहस्पते !तुम मन्त्र द्वारा यज्ञ के सामने आओ। हे अश्विनीकुमारो! तुम यज्ञ की वृद्धि करते हुए सम्मुख

आओ। यह यज्ञ यजमान को कल्याणकारी हो। यह आहुति अश्विनी, कुमारों और बृहस्पति के निमित्त स्वाहुत हो ॥१२॥

२७ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि— ब्रह्मा। देवता— अग्निः। छन्द— त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् बृहती, प्रभृति)

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१॥
देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२॥
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता विश्ववारः ॥३॥
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा। ४॥
अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्ष स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥५॥
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥६॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥७॥
उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः॥८
दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत
गृणता नः स्विष्टये।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥९
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु।
देव त्वष्टा रायस्पोषं विष्य नाभिमस्य ॥१०॥
वनस्पतेऽव सृजा रराणः।
त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥११॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः।
इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२॥

अग्नि का वीर्य तेज युक्त और समिधाएँ ऊँची होती है। यह

अत्यन्त प्रदीप्त, सुन्दर एवं सूर्य के समान हैं। इन प्राणदाता का यज्ञों में बहुत हाथ रहता है ॥१॥ अग्नि देवताओं में श्रेष्ठ हैं और मधु-घृत से मार्गों का शोधन करते हैं ॥२॥ सुन्दर कर्म वाले तथा मनुष्यों में श्लाघनीय सविता, संसार के वरण योग्य अग्नि देवता, यज्ञ को मधु-युक्त करते हुए व्याप्त होते हैं ॥३॥ घृत और हव्यान्न सहित स्तुतियों को प्राप्त करते हुए अग्नि देवता सम्मुख हुए आते हैं ॥४॥ देवताओं की अधिक संगति वाले यज्ञों में अग्नि इस यज्ञ की महिमा और स्रुवों को अपने से युक्त करें ॥५॥ देवताओं की संगति वाले हर्षोत्पादक यज्ञों में तारक अग्नि और धन को पुष्ट करने वाले वसु, वास करते हैं ॥६॥ अग्नि की तेजस्वी लपटें यजमान के व्रत की हर प्रकार रक्षक होती हैं ॥७॥ महत्तावान् तथा गतिवान् अग्नि के तेज से ऐश्वर्यवान् दीप्ति और आहुति की दीप्ति यज्ञ का सम्पादन करने वाली हैं। यह परस्पर के आश्रय से संयुक्त होकर तेजस्वी होती हैं। वे इस यज्ञ की रक्षक हों॥८॥ हे होतागण ! इस यज्ञाग्नि की प्रशंसा करो, जिससे हमारा कल्याण हो, पृथिवी, अग्नि कान्ति और सरस्वती की यह तीनों इस कुशा पर प्रशंसा करती हुई विराजमान हों ॥९॥ हे त्वष्टा ! हम को जल, अन्न और धन की पुष्टि देते हुए इसकी नाभि खोल दो ॥१०॥ हे वनस्पते ! तुम शब्द करते हुए अपने को छोड़ो, अग्नि इस हवि को देवताओं के लिए सुस्वादु बना दे ॥११॥ हे अग्ने ! इन्द्र के निमित्त यज्ञ को सम्पन्न करो। सब देवता इस हव्य को ग्रहण करें ॥१२॥

२८ सूक्त

[ऋषि–अथर्वा। देवता–त्रिवृत् अग्न्योदयः। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्]

नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥१॥
अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरंतरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः सम्विदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ॥२॥

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥३॥

इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥४॥

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥५॥

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं
हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे । ६॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥७॥

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसम्भूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥८॥

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥९॥

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥१०॥

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥११॥

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥१२॥

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
सम्वत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥१३॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।

ऽभिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥१४॥

शतायु होने के लिए नौ प्राणों को नौ से संयुक्त करते हैं। इसमें सुवर्ण, चाँदी और लोहे के तीन-तीन उष्णता से पूर्ण धागे(तार) हैं॥१॥ इस त्रिवृत् कर्म द्वारा अग्नि, चन्द्र, सूर्य, पृथिवी, जल, आकाश, अंतरिक्ष और दिशा उपदिशाऐं तथा ऋतु के अंश ऋतुओं सहित प्राप्त होकर मुझे पार करें ॥२॥ तीन पुरिऐं इस त्रिवृत् मे आश्रित हों, पूषा देव घृत-दूध से इस कर्म की शुद्धि करें। अन्न, पुरुष और पशुओं का आधिक्य इनका आश्रय प्राप्त करें ॥३॥ इस बालक को आदित्य धन से पूर्ण करें। हे अग्ने! वृद्धि को प्राप्त करते हुए तुम इसकी भी वृद्धि करो। हे इन्द्र! इसे वीर्य-युक्त करो। पोषक त्रिवृत् इसका आश्रित हो॥४॥ सुवर्ण से सम्पन्न पृथिवी तेरी रक्षक हो। विश्व के भरणकर्त्ता अग्नि लोह से तेरा पालन करें और लताओं से प्राप्य अन्न के द्वारा बल तुझमें धारण करें॥५॥तीन प्रकार से यह सुवर्ण उत्पन्न हुआ है। अग्नि को इसका एक जन्म प्रिय हुआ। यह सोम के पीड़ित करने पर गिरा। विद्वज्जन एक को जलों का वीर्यरूप कहते हैं। हे ब्रह्मचर्यधारी, वह सुवर्ण तेरी आयु के निमित्त त्रिवृत् हो जाय ॥६॥ बाल, तरुण वृद्धावस्था जमदग्नि की तीन आयु हैं, महर्षि कश्यप की भी ऐसी ही तीन आयु हैं, वह अमृत के निदर्शन रूप आयु मैं तुझे भी देता हूँ॥७॥ त्रिवृत् रूप से तीन समर्थ सुपर्ण एकाक्षर पर आये तब सब पापों को अदृश्य कर अमृत द्वारा मृत्यु को नष्ट करते हैं ॥८॥ आकाश से सुवर्ण तेरी रक्षा करे, मध्यलोक से रजत रक्षा करे और पृथिवी से लोह रक्षा करे, यह देवनगरियों को प्राप्त हैं ॥९॥ चारों ओर से तेरी रक्षा करने वाली देवताओं की तीन पुरियाँ हैं, इनको धारण करता हुआ, तू शत्रुओं से हर प्रकार सबल हो ॥१०॥ देवताओं के सामने जिस मुख्य देवता ने सुवर्ण रूपी अमृत को बांधा था, उन्हें मैं दश बार नमन करता हूँ वह देवता इस त्रिवृत् को बाँधने की

मुझे आज्ञा दें ॥११॥ अर्यमा, पूषा और बृहस्पति तुझे भले प्रकार बांधें। नित्य उत्पन्न होने वाले के नाम से हम तुझे बांधते हैं ॥१२॥ हे ब्रह्मचारिन्! आयु और तेज की प्राप्ति के निमित्त मैं तुझे ऋतुओं, महीनों तथा सम्वत्सर के तेज रूप सूय से युक्त करता हूं ॥१३॥ घृत से तर, मधु से सिंचित, पृथिवी के समान दृढ़ तू शत्रुओं को चीरता हुआ तिरस्कृत करता हुआ महान् सोभाग्य के निमित्त मुझ पर अवस्थित हो ॥१४॥

२९ सूक्त

[ऋषि—चातनः। देवता—जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्]

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम्।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुष सनेम ॥१॥
तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह सम्विदानः।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥२॥
यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः।
विश्वेभिर्देवैः सह सम्विदानः ॥३॥
अक्ष्योर्नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥४॥
यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥५॥
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ॥६॥
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ॥७॥
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामदोयमस्तु ॥८॥
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगददोयमस्तु ॥९॥
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः।

तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥१०॥

सब कर्मों में प्रथम नियुक्त होने वाले अग्निदेव ! इस कार्य का भार उठाओ। तुम वैद्य हो, औषधि करने वाले हो, हम तुम्हारे द्वारा गौ अश्व और मनुष्यों को नीरोग अवस्था में प्राप्त करें ॥१॥ हे अग्ने ! जो हमसे खेल, खेल रहा है, अथवा खाना चाहता है उसका परकोटा सब देवताओं से मिल कर गिरा दो ॥२॥ हे अग्ने ! उसका परकोटा जिस प्रकार गिरे वह यत्न सब देवताओं सहित करो ॥३॥ हे अग्ने ! इसको खाने की इच्छा करने वाले पिशाच की आँखों को फोड़ दो, हृदय को तोड़ दो, जीभ को काट डालो और दाँतों को तोड़ डालो। इस प्रकार तुम उसका नाश करो ॥४॥ इसका जो मांस पिशाचों ने हटा कर खा लिया है उसे हे अग्ने। इसके शरीर में फिर भर दीजिए। हम इसके शरीर में मन्त्र शक्ति से प्राणों का पुनः संचार करते हैं॥५॥ कच्चे-पक्के, चितकबरे पात्र में जो पिशाच विशेष रूप से पके हुए कच्चे-पक्के भोजन में घुस कर हमारे नाश का विचार कर चुका है, वह पिशाच अपनी संतति सहित यातना भोगे, यह पुरुष आरोग्य-लाभ करे ॥६॥ दूध, मंथ और कृषि द्वारा पके अन्न में प्रविष्ट होकर जो पिशाच हमारे नाश की इच्छा कर चुका है वह स्वयं अपनी प्रजा सहित इसी प्रकार के कष्टों को भोगे ॥७॥ जिस पिशाच ने जल-पान, यात्रा, शयन में समय पीड़ित किया है वह अपनी प्रजा सहित इसी प्रकार पीड़ित हो ॥८॥ दिन-रात, यात्रा या शयन के समय जिस मांसभक्षी पिशाच ने पीड़ित किया, वह अपनी प्रजा सहित उसी प्रकार पीड़ित हो ॥९॥ हे अग्ने ! तुम मांस-भक्षी, रुधिर-भक्षी और मन को नष्ट करने वाले पिशाच को नष्ट करो। अश्वयुक्त इन्द्र अपने वज्र से उसे मारें और सोम उसका शीश काट लें ॥१०॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् नत्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥११॥
समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम्।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२॥

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥१३
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४
तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ॥१५

हे अग्ने ! तुम सदा से राक्षसों का मर्दन करते हो । वे तुम्हें युद्ध में नहीं जीत सकते । तुम इन मांसभक्षियों को भस्म कर डालो, यह तुम्हारे दिव्यास्त्र से बच कर न निकलें ॥११॥ इस पुरुष का जो ज्ञान और मांस नष्ट हुआ है, हे अग्ने ! उसे तुम पुनः लाओ । यह सोम के अंकुर के सामने पुष्ट होता हुआ अंग-प्रत्यंग से पूर्ण हो॥१२॥ हे अग्ने! सोम के अंकुर के पुष्ट होने के समान यह पुरुष पुष्टि को प्राप्त हो । इस गुणी पुरुष को जीवित रहने के लिए रोग-रहित कीजिए ॥१३॥ हे अग्ने ! पिशाचों को नष्ट करने वाली यह तुम्हारी समिधाएँ हैं, इन्हें ग्रहण करते हुए प्रसन्नता को प्राप्त होओ ॥१४॥ हे अग्ने ! तृषा शान्त करने वाली इन समिधाओं को अपनी ज्वाला के द्वारा ग्रहण करो, जो मांस की इच्छा करता है, वह अपने कार्य से विमुख हो (इस सूक्त में कई तरह के रोग कीटाणुओं का वर्णन है जो मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होते हैं । लोगों को उचित है कि शुद्ध वायु सूर्य के प्रकाश और अग्नि से इस प्रकार की गन्दगी दूर करके वातावरण को स्वच्छ रखें) ॥१५॥

३० सूक्त

(ऋषि—उन्मोचनः । देवता—मंत्रोक्ताः । छन्द—अनुष्टुप्, जगती)

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥१
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥२

यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥३
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः ।
प्रत्यक सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥६॥
अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥७
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८
अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येनइव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ॥९
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥१०

समीप और दूर देश से तेरे प्राणों को दृढ़ता से बाँधता हूँ। तू पूर्व पितरों का अनुकरण अभी मत कर, यहीं रह ॥१॥ पितृऋण को पूर्ण न करने वाले जिस अपने पुरुष ने तुझ पर अभिचार किया है, उससे छूटने वाली बात को मन्त्र-बल से कहता हूँ ॥ २ ॥ तूने जिस स्त्री या पुरुष के निमित्त द्रोह अथवा शाप प्रयुक्त किया है उससे मुक्त करने सम्बन्धी बात मैं तुझे बताता हूँ ॥३॥ माता या पिता के पाप से यदि तू रोग-शय्या पर पड़ा है तो उस रोग के उन्मोचन और प्रमोचन की बात मन्त्र रूप वाणी से बताता हूं ।४॥ तेरे माता, पिता, भाई अथवा बहिन ने जिस मंत्र या औषधि को किया है, उसे भले प्रकार सेवन कर।

मैं तुझे वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनाता हूँ ॥५॥ हे पुरुष ! तू यमदूतों का अनुगमन न कर। अपने सब व्यक्तियों सहित यहाँ जीवित रह ॥६॥ तू उदय होने के मार्ग का जानने वाला है। इस कर्म द्वारा यहाँ बुलाया गया है। उत्तरायन और दक्षिणायन तेरे जीवन में ही व्यतीत हों ॥७॥ हे रोगी, तू भय त्याग। मैं तुझे वृद्धावस्था तक इस लोक में रहने योग्य बनाता हूँ। तेरे अंगों में से यक्ष्मा और अस्थि ज्वर दूर हो चुका ॥ ८ ॥ तेरे अंगों में व्याप्त ज्वर, हृदय-रोग और यक्ष्मा यह सब मन्त्र रूप वाणी से तिरस्कार पाकर बाज के समान बहुत दूर जा गिरा ॥९॥ जो जागृत एवं सचेत तेरे प्राण-रक्षक ऋषि हैं, वे रात-दिन जागते रहें ॥ १० ॥

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ते नयन्ति।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये ॥१२
ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम्।
शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्टतु ॥१३
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा सं बलेन।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत ॥१४
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥१५
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥१६
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥१७

यह अग्नि समीप रहने योग्य है। तेरे लिये सूर्य इसी लोक में उदित हो। तू अन्धकार युक्त मृत्यु से निकलकर जीवन को प्राप्त हो॥११॥

मृत्यु के लिए नमस्कार, पितरों को नमस्कार, ले जाने वाले यम को नमस्कार। जो अग्नि देह के पारण की विधि के जानने वाले हैं, उन्हें पुरुष के मंगल के निमित्त आगे स्थापित करते हैं।।१२।। प्राण इसको प्राप्त हो, मन और नेत्र इसको प्राप्त हों, मैंने इसके देह को मन्त्र शक्ति से प्राणवान किया है, यह अपने पैरों पर खड़ा हो जाय।।१३।। हे अग्ने ! इस पुरुष को प्राण और चक्षु से युक्त करो, शरीर को बल से भर दो। तुम अमृत के ज्ञाता हो। यह इस लोक से प्रस्थान न करे, श्मशान भूमि इसका घर न बने।।१४।। हे रोगिन् ! तेरे प्राणों का क्षय न हो। सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा तुझे मृत्यु शय्या से उठा दें।।१५।। भीतर से यह जीभ हिलती हुई कहती है कि तुझसे यक्ष्मा रोग निकल गया और ज्वर के आक्रमण भी शान्त हो गए।।१६।। तू मृत्यु के लिये ही जन्मा है। यह मृत्यु-लोक देवताओं को भी प्रिय है। परन्तु तू वृद्धावस्था से पूर्व मृत्यु को प्राप्त न हो।।१७।।

३१ सूक्त

(ऋषि— शुक्रः। देवता—कृत्याप्रतिहरणम्। छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।१

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।२

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।३

यां ते चक्रुरमूलाया वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्या या चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।४।।

या ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः।
शालाया कृत्या यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।५

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।६
यां त चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुन प्रति हरामि ताम् ।।७
यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रु पुनः प्रति हरामि ताम् ।।८
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
म्रोकं निर्दाह क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ।।६
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ।।१०
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ।।११
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ।।१२

अभिचार करने वालों ने कच्चे मिट्टी के पात्र में या धान, जौ, गेहूँ, उपवाक, तिल, कांगनी के मिश्रित धान्यों में अथवा कुक्कुटादि के कच्चे मांस में हे कृत्ये ! तुझे किया है । मैं तुझे अभिचार करने वाले पर ही वापिस करता हूँ ।।१।। हे कृत्ये ! तुझे मुर्गे बकरे या पेड़ पर किया है तो हम अभिचार करने वाले पर ही लौटाते हैं ।। २ । हे कृत्ये ! अभिचारकों ने तुझे एक खुर वाले अथवा दोनों दांत वाले गधे पर किया है तो हम तुझे अभिचारक पर ही लौटाते हैं ।।३।। हे कृत्ये ! यदि तुझे मनुष्यों से पूजित भक्ष्य पदार्थ में ढक कर खेत में किया गया है तो तुझे अभिचारक पर ही लौटाते हैं ।।४।। हे कृत्ये ! तुझे गार्हपत्याग्नि या यज्ञशाला में किया गया है तो तुझे अभिचारक पर लौटाते हैं ।।५।। हे कृत्ये ! यदि तुझे सभा में या जुए के पाशों में किया गया है तो अभिचारक पर ही लौटाते हैं ।।६।। सेना में, बाण पर अथवा दुंदुभि

में जिस कृत्या को किया गया है उसे मैं अभिचारक पर ही लौटाता हूँ ॥७॥ जिस कृत्या को कुए में डाल कर, श्मसान में गाढ़ कर अथवा घर में किया है उसे मैं वापिस करता हूँ ॥८॥ पुरुष की हड्डी पर या टिमटिमाती हुई अग्नि पर जिस कृत्या को किया है, उसके मांसभक्षी अभिचारक पर ही उस कृत्या को प्रेरित करता हूँ ॥९॥ जिस अज्ञानी ने कृत्या को कुमार्ग से हम मर्यादा वालों पर भेजा है, हम उने उसी मार्ग से उसकी ओर प्रेरित करते हैं ॥१०॥ जो कृत्या द्वारा हमारी उंगली या पैर को नष्ट करना चाहता है, वह अपने इच्छित में सफल न हो और हम भाग्यशालियों का वह अमंगल न कर सके ॥११॥ भेद रखने वाले छिप कर कृत्या कर्म करने वाले को इन्द्र अपने विशाल शस्त्र से नष्ट कर दें और अग्नि उसे अपनी ज्वालाओं से जला डालें ॥१२॥

॥ इति पञ्चम् काण्ड समाप्तम् ॥

षष्ठम् काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

[ऋषि—अथर्वा। देवता—सविता। छन्द—जगती, उष्णिक्]

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेह्याथर्वण।
स्तुहि देवं सवितारम् ॥१
तमुष्टुहि यो अन्त सिन्धौ सूनुः सत्यस्य युवानाम्।
अद्रोघवाचं सुशेवम् ॥२
स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३

हे अथर्वा-पुत्र दध्यङ्! स्तुति योग्य बृहद् सोम का रात दिन गान

करो। हे स्तुति करने वाले, उस गान द्वारा दान के गुण से सम्पन्न सवितादेव की स्तुति करो ॥१॥ जो सविता परब्रह्म के प्रथम उत्पन्न पुत्र हैं, हे स्तोता तुम उन्हें अपनी स्तुति द्वारा प्रसन्न करो। वे समुद्र में उदय होते दिखाई देते हैं। उन सतत युवा, रात्र्यान्धकार को मिटाने वाले, सुन्दर वाणी वाले सविता को स्तुति द्वारा प्रसन्न करो ॥२॥ हमारे हवि देने आदि कर्मों को सविता ही देवताओं को प्राप्त करावें और अमरत्व के साधन तथा सुन्दर स्तुति के साधन, दोनों बृहद् रथन्तर साम गान की हमको प्रेरणा दें। ३॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सोमो वनस्पतिः। छन्द—उष्णिक्)

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत।
स्तोतुर्यो वचःशृणावद्धव च मे ॥१
आ य विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥२
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
युवा जेतेशनिः स पुरुष्टुतः ॥३

हे अध्वर्यु आदि ऋत्विजो! तुम उन इन्द्र के निमित्त सोम का अभिषव करो जो मेरे स्तुति रूप आह्वान को आदरपूर्वक सुनते हैं ॥१॥ जैसे अपने निवास पर पक्षी स्वयं पहुँच जाते हैं, वैसे ही अभिषुत सोम इन्द्र के देह में स्वयं पहुँचता है। हे इन्द्र! तुम सोम के प्रभाव से हर्षित होकर शत्रु सेनाओं का उत्पीड़न करो ॥२॥ हे अध्वर्युओ! सोमपायी, वज्रधारी शत्रुमर्दन में समर्थ इन्द्र के निमित्त सोम का अभिषव करो। वे इन्द्र सतत युवा, शत्रुओं को ललकारने वाले विजेता और अखिल विश्व के स्वामी हैं। यजमान अपनी कामना पूर्ति के लिए उनकी स्तुति करते हैं ॥३॥

३ सूक्त

[ऋषि-अथर्वा [स्वस्त्ययनकामः] देवता-इन्द्रापूषादयः छन्द-बृहती जगती]

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः।

अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥१॥
पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निःशिवा ये अस्य पायवः ॥२
पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम्।
अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥३॥

हे इन्द्र ! हे पूषन् ! हमारी रक्षा करो। देवमाता अदिति हमारी रक्षा करें। "अपान्नपात्" नामक जल को ईंधन मानने वाले अग्नि और उनञ्चास मरुद्गण हमारी रक्षा करें। सातों समुद्र, आकाश और विष्णु भी हमारे रक्षक हों ॥१॥ इच्छित फल की प्राप्ति के लिये द्यावा-पृथिवी, निष्पन्न सोम, निचोड़ने का ग्रावा, मन्त्ररूपिणि सरस्वती, आह्वानीय अग्नि और सुख देने वाली किरणें यह सभी हमारी रक्षा करने वाले हों ॥२॥ उषासानक्ता नामक दिन-रात्रि का देवता, दानादि गुणों से सम्पन्न अश्विनीकुमार, मेघों में स्थित जलों को पतित न होने देने वाले अपान-पात् नामक अग्नि हिंसकों से हमें बचावें। हे त्वष्टा ! तुम सब प्रकार के फल देने के निमित्त हमारी वृद्धि करो ॥३॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम)। देवता—त्वष्ट्रादय। छन्द—बृहती, गायत्री)

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥१॥
अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥२॥
धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन्।
द्यौष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥३।

त्वष्टा मेरे स्तोत्रों को सुनें, वृष्टिकारक पर्जन्य और मंत्र के स्वामी ब्रह्मणस्पति मेरी स्तुति को सुनें। अपने पुत्र और भाइयों सहित अदिति हमारे

अजेय बल की रक्षा करने वाली हों ॥१॥ अदिति तथा उनके भग, वरुण, मित्र, अर्यमा नामक पुत्र मरुद्गण हमारे रक्षक हों। हम जिन शत्रुओं के प्रति अपनी रक्षा-कामना करते हैं, उनका अनिष्ट कर्म हमारे पास न आवे। वह हिंसक द्वेष हमारे उस शत्रु को दूर भगावे ॥२॥ हे विस्तृत गमनशील वायो! हमारी रक्षा करो। हे अश्विनीकुमारो! हमारे रक्षक होओ। हे पिता रूप द्युलोक! कुत्ते के समान अनिष्ट करने वाली पाप की देवी को हमारे पास से हटाओ ॥३॥

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः, इन्द्रः। छन्द—अनुष्टुप्)

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत।
इमेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१॥
इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥२॥
यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम्।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

हे अग्ने! तुम घृत से आहूत किये जाते हो, इस यजमान को उत्तम पद प्राप्त कराओ, इसे देह-कान्ति से युक्त करो और सन्तानादि से इसकी वृद्धि करो ॥१॥ हे इन्द्र! यजमान की अत्यन्त वृद्धि करो। यह तुम्हारी कृपा से सबको वश में रखने वाला और स्वयं स्वतन्त्र हो। इसे धन से संतुष्ट करो और वृद्धावस्था तक इसकी आयु को बढ़ाओ ॥२॥ हे अग्ने! जिस यजमान के घर में हम हव्यादि कर रहे हैं उस यजमान को बढ़ाओ। सोम उसे अपना कहें और ब्रह्मणस्पति भी उसे अपना कहें ॥३॥

६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—ब्रह्मणस्पति। छन्द—अनुष्टुप्।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते।

सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१॥
यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२॥
यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥३॥

हे ब्रह्मणस्पते ! देवताओं की भक्ति न करने वाला शत्रु यदि हमको वध योग्य माने तो उसे मेरे सोम अभिषव करने वाले यजमान के वश में कर दो ॥१॥ हे सोम ! जो बुरे विचार वाला शत्रु हमारे सुन्दर विचार का तिरस्कार करे, तुम उसके मुख पर वज्र-प्रहार करो, जिससे वह छिन्न-भिन्न होकर भाग जाय ॥२॥ हे सोम ! जो हमारा नाश करना चाहता है अथवा जो शत्रु हमको संतापित करता है तुम उसके बल को द्युलोक द्वारा अशनि से संहार करने के समान नष्ट करदो ॥३॥

७ सूक्त

(ऋषि— अथर्वा । देवता—सोमः, विश्वेदेवाः । छन्द—गायत्री)

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।
तेना नोऽवसा गहि ॥१॥
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः ।
तेना नो अधि वोचत ॥२॥
येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।
तेना नः शर्म यच्छत ॥३॥

हे सोम ! जिस देवयान मार्ग में अद्वेषी और कृपा करने वाले मित्रादि द्वादश आदित्य, अदिति सहित घूमते हैं, उसी मार्ग से कल्याण सहित आओ ॥१॥ हे सोम ! तुम जिस बल से राक्षसों को वशीभूत करते हो, उस बल को हमें बताओ ॥२॥ हे देवताओ ! जिस बल से तुमने राक्षसों के बलों को उनसे अलग कर अपने में मिला लिया है, उसी बल से हमको सुखी बनाओ ॥३॥

८ सूक्त

(ऋषि—जमदग्निः । देवता-कामात्मा । छन्द-पंक्तिः)

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१॥
यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥२॥
यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥३॥

जैसे बेल अपने आश्रयदाता वृक्ष को सब ओर से लपेटती है वैसे ही तू मुझ से संलग्न रह, जिससे तू मेरी कामना करती हुई मेरे ही पास रहे ॥१॥ अपने स्थान से उठता हुआ गरुड़ पृथिवी पर अपने पंख मारता है, वैसे ही हे पत्नी ! मैं तेरे मन को वश में करता हूँ । जिससे तू मेरी कामना करती रहे और कहीं अन्यत्र न जावे ॥२॥ इस आकाश, पृथिवी और स्वर्ग को सूर्य सब ओर से व्याप्त करते हैं, वैसे ही मैं, हे स्त्री ! तेरे मन को व्याप्त करता हूँ, जिससे तू मेरी कामना वाली हो और अन्यत्र न जाय ॥३॥

९ सूक्त

(ऋषि-जमदग्निः । देवता—कामात्मा । छन्द-अनुष्टुप्)

वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥१॥
मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥
यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।
गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥३॥

हे पत्नी ! तू मेरे शरीर, पैर नेत्र और जांघों की कामना कर । तू संभन

समर्थ पुरुष की कामना वाली है। तेरे केश और नेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं, वे मेरे मन को विकारयुक्त करते हैं ॥१॥ हे पत्नी ! तू मेरी इच्छानुकूल होकर मन को प्रसन्न करने वाली हो, जिस से मैं तुझे बाहु पाश में लेकर हृदय में रमी हुई समझूँ ॥२॥ जिन स्त्रियों के अङ्ग प्रशंसनीय होते हैं, जिनके हृदय में वश करने की शक्ति है उन स्त्रियों को घी-दूध देने वाली गौएं मेरे अधिकार में करें ॥३॥

१० सूक्त

[ऋषि–शान्तातिः। देवता—अग्निः वायुः सूर्यः। छन्द–त्रिष्टुप्, बृहती]

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥१॥
प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२॥
दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३॥

पृथिवी के लिये, शब्द सुनने की शक्ति वाले श्रोत्र के लिए, भू स्थित वृक्षों के अधिष्ठात्री देवताओं के लिये और भूस्वामी अग्नि के लिए यह हव्य स्वाहुत हो ॥१॥ वायु रूप प्राण के लिए, उससे सम्बन्धित अन्तरिक्ष के लिए, पक्षियों के लिए और वायु देवता के लिए स्वाहाकार हो ॥२॥ आकाश के लिए, चक्षु के लिये, नक्षत्र के लिए और द्युलोक के स्वामी दिवाकर के लिये स्वाहाकार हो ॥३॥

११ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

[ऋषि—प्रजापति। देवता–रेतः मंत्रोक्ताः। छन्द–अनुष्टुप्]

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥१॥
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥२॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्य चीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥३॥

शमी वृक्ष पर अग्नि-रूप पुत्र उत्पन्न करने के लिए पीपल वृक्ष चढ़ा है। उस पीपल से अग्नि मंथन के लिए अरणियाँ लाई जाती हैं। हम पुत्रोत्पत्ति के निमित्त स्त्रियों में कर्म सम्पादित करते हैं। पीपल के जिस कर्म से पुत्र-प्राप्ति होती है, वह पुंसवन कर्म पुत्र को अवश्य प्राप्त कराता है ॥१॥ पुरुष का बीजभूत वीर्य गर्भाशय में सींचा जाता है, उसी से पुत्र की प्राप्ति होती है। इस पुत्र जनन के उपाय को प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है ॥२॥ अमादेवता सिनीवालि, पौर्णमासी की देवता अनुमति और प्रजापति ने सिंचित गर्भाशय स्थित बीज को अतिरिक्त स्थान में स्थापित कर सन्तान के हाथ-पाँव आदि अंगों को बनाया ॥३॥

१२ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान्। देवता—विषविवारणम्। छन्द—अनुष्टुप्)

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम्।
रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥१॥
यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा।
यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥२॥
मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु।
मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥३॥

सूर्य के अन्तरिक्ष में व्याप्त होने के समान, रात्रि के संसार को अन्धकार से ढक लेने के समान, सर्पों के सब जन्मों को मैंने जान लिया है। जो विष व्याप्त हो जाता है, उसे मैं इस ओषधि से नष्ट करता हूँ ॥१॥ जिस ओषधि को इन्द्रादि देवताओं ने, अगस्त्य-वशिष्ठ आदि ऋषियों ने जाना है तथा जो मंत्रों और ब्राह्मणों से प्राप्त होती है, उन भूत, वर्तमान और भविष्य-काल की ओषधियों से मैं तेरे देहगत विष को नष्ट करता हूँ ॥२॥ गंगा आदि नदियाँ, बड़े छोटे पर्वत, परुष्णी नाम्नी नदी तेरे शरीर में मधु को सींचे। विष-हरण करने वाले अमृतरूप मधु को मैं तेरे सम्पूर्ण देह पर चुप-

ड़ता हूँ । यह विष-नाशक मधु तेरे मुख और हृदय के लिए सुख करने वाले हों ॥३॥

१३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । देवता—मृत्युः । छन्द—अनुष्टुप्,

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥१॥
नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥२॥
नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥३॥

इन्द्रादि देवों के मारक अस्त्रों को नमस्कार ! हे मृत्यो ! राजा, वैश्य और देवताओं के शस्त्रों से रक्षा करने के लिए तुझे नमस्कार है ॥१॥ हे मृत्यो ! तेरे वचन को और तेरे पराभव को कहने वाले दूतों को नमस्कार है तेरी कृपापूर्ण मति और निग्रह बुद्धि के लिए भी नमस्कार है ॥२॥ हे मृत्यो ! रक्षा करने वाली ओषधियों, पीड़ा देने वाले यातुधानों और मूल बल-रूप तेरे पुरुषों को नमस्कार है । उन वेदवेत्ता ब्राह्मणों को नमस्कार है जो शाप देने और कृपा करने में भी समर्थ हैं ॥३॥

१४ सूक्त

(ऋषि—बभ्रुपिङ्गलः । देवता—बलासः । छन्द—अनुष्टुप्)

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् ।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥१॥
निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा ।
छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वाइव ॥२॥
निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा ।

अथो इटइव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥३॥

शरीर में सर्वत्र व्याप्त, अस्थियों को कम्पित करने वाला, जोड़ों को ढीला करने वाला, बल-क्षयकारक हृदयस्थ कास-सांस रूप जो श्लेष्मा रोग है उस सब का मन्त्र-शक्ति नाश करे ॥१॥ जैसे सरोवर में से कमल उखाड़ा जाता है, वैसे ही मैं इस रोगी के श्लेष्म सम्बन्धी रोग को जड़ से उखाड़ता हूँ। ककड़ी की घुण्डी के स्वयं पृथक हो जाने के समान अकस्मात् ही मैं इस रोग का नाश करता हूँ ॥२॥जैसे गया हुआ वर्ष लौटता नहीं, वैसे ही हे बल-क्षयकारक रोग ! तू नष्ट न करता हुआ जा। जैसे द्रुतगामी मृग दूर भाग जाता है, वैसे ही तू भी देह से निकलकर दूर भाग ॥३॥

१५ सूक्त

[ऋषि—उद्दालकः। देवता—वनस्पतिः। छंद—अनुष्टुप्]

उत्तमो अस्योपधीनां तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्मां अभिदासति ॥१॥
सवन्धुश्चासवन्धुश्च यो अस्मां अभिदासति।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥२॥
यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥३॥

हे सोमपर्णोत्पन्न पलाश ! तू औषधियों में श्रेष्ठ है। अन्य वृक्ष तेरे अनुगत हैं। जो हमको क्षीण करना चाहता है, वह शत्रु तेरी कृपा से क्षीण हो जाय ॥ १ ॥ जो सगोत्र वाला या अन्य गोत्र वाला शत्रु हमको क्षीण करना चाहता है, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं में, मैं पलाश के समान श्रेष्ठ होऊँ ॥ २ ॥ जैसे पलाश उत्तम माना जाता है, जैसे अन्य ओषधियों की अपेक्षा सोम को पुरोडाशादि में प्रयुक्त किया जाता है, वैसे ही सगोत्रियों में मैं श्रेष्ठ होऊँ ॥३॥

१६ सूक्त

(ऋषि—शौनकः । देवता-मन्त्रोक्ताः । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्,)

आवयो अनावयो रसस्त उग्र आवयो ।
आ ते करम्भमद्मसि ॥१॥
बिहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते नाम ते माता ।
स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥२॥
तौविलिकेऽवेलयावायमैलब एलयीत् ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥३॥
अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा ।
नीलागलसाला ॥४॥

हे सरसों ! तू रोग नष्ट करने के लिये खाया जाता है, तेरा तेल महान् बल वाला है। उस तैल में भूने हुये शाक को हम अभिमन्त्रित करके सेवन करते हैं ॥१॥ हे सरसों के शाक ! तेरा पिता विहल्ह और माता मदावती नाम की है। तू अपने पत्र आदि शरीर को मनुष्यों के खाने के लिये-दे देता है, इस लिये माता-पिता के समान नहीं रहता ॥२॥ हे तौविलिक नाम्नी पिशाची ! तू रोग की कारणभूत है अतः हमारे रोग को पराजित कर लौटा दे। यह ऐलब नामक नेत्र-रोग दूर हो जाय बभ्रु, बभ्रु कर्ण और निराल नामक रोग, यह सभी इस पुरुष के शरीर से निकल कर भाग जांय ॥३॥ हे सस्यमञ्जरी ! तेरा नाम अलसलसा है। प्रथम ग्रहण करने के कारण पूर्वा है। हे शलाञ्जाला ! तू अन्त में ग्रहण का जाती है इसलिये उत्तरा है। हे नीलागलसाला! तुझे इन दोनों के मध्य में ग्रहण करते हैं ॥४॥

सूक्त १७

(ऋषि—अथर्वा । देवता-गर्भदृंहणम् । छन्द-अनुष्टुप्)

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥१॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥२॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥३॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥४॥

हे स्त्री ! इस विशाल पृथिवी द्वारा प्राणियों के शरीर को धारण करने के समान तेरा गर्भ भी प्रसव के समय उत्पन्न होने के निमित्त स्थित रहे ॥१॥ हे स्त्री ! यह विशाल पृथिवी जिस प्रकार पर्वतों और वनस्पतियों को धारण किये हुए है वैसे ही तेरा गर्भ प्रसव-काल में उत्पन्न होने के निमित्त स्थित रहे ॥२-३॥ हे स्त्री ! यह विशाल पृथिवी जैसे सम्पूर्ण चराचर को धारण किये हुए है वैसे ही तेरा गर्भ प्रसव काल में उत्पन्न होने के लिए स्थित रहे ॥४॥

१८ सूक्त

(ऋषि— अथर्वा । देवता—ईर्ष्याविनाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्,)

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् ।
अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥१॥
यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥२॥
अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥३॥

हे ईर्ष्यायुक्त पुरुष ! इस स्त्री को कोई देख न ले, तेरी इस ईर्ष्यापूर्ण गति को शांत करते हुए हम तुझ से क्रोध और शोक को भी पृथक करते हैं ॥१॥ जैसे पृथिवी शांत मन वाली रहती और ईर्ष्या नहीं करती, वैसे ही पुरुष का स्त्री विषयक ईर्ष्यायुक्त मन ईर्ष्या का ग्रास न बने ॥२॥ हे पुरुष ! मैं तेरे हृदयगत स्त्री विषयक क्रोध को जैसे कर्मकार धौंकनी की वायु को निकालता है, वैसे ही दूर करता हूं ॥३॥

१६ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री)

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥१॥
पवमानः पुनातु मान क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
अथो अरिष्टतातये ॥२॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥३॥

देवजन मुझे पवित्र करें। मनुष्य मुझे कर्म और बुद्धि से पवित्र करें। सब प्राणी, अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले वायु और दशा पवित्र में शुद्ध होता हुआ सोम वह सब मुझे पवित्र बनावें ॥१॥ शुद्ध किया जाता सोम कर्म के निमित्त, बल प्राप्ति के निमित्त तथा अहिंसा के निमित्त मुझे पवित्र करें ॥२॥ हे सवितादेव! तुम सबको प्रेरणा देने वाले हो। तुम्हारा तेज और प्रेरणा-यह पवित्र करने के साधन हैं, इनके द्वारा हमको इहलोक और परलोक में सुख प्राप्त करने के निमित्त पवित्र कीजिये ॥३॥

२० सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा। देवता—यक्ष्मनाशनम्। छन्द—जगती, पंक्तिः

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥१॥
नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नमः ओषधीभ्यः ॥२॥
अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥३॥

दावाग्नि के समान देह के अंगों को जला देने वाले इस ज्वर की जलन सभी अंगों में व्याप्त होती है। उस समय उन्मत्त के समान प्रलाप

करता हुआ मनुष्य संसार से चल देता है। ऐसा ज्वर हमारे पास से हट कर दुराचारियों को प्राप्त हो। इसलिये ज्वर के अभिमानी देवता को नमस्कार है ॥१॥ ज्वर के ताप से रुलाने वाले रुद्र को नमस्कार, ज्वर को भी नमस्कार, वरुण, आकाश, पृथिवी को नमस्कार तथा पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली ओषधियों को भी नमस्कार है ॥२॥ सब अंगों में व्याप्त, प्रत्यक्ष अनुभव में आते हुये, रक्त को दूषित कर पीला कर देने वाले पित्त ज्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

२१ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—शन्तातिः। देवता—चन्द्रमा। छन्द—अनष्टुप्)

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥१॥
श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम्।
सोमो भगइव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥२॥
रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ।
उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥३॥

पृथिव्यादि तीन लोकों में ऐहिक फल के भोग का कारण होने से तथा स्वर्गादि फल के साधन यज्ञादि कर्म का कारण होने से पृथिवी श्रेष्ठ है। इस पृथिवी की त्वचा के समान भूमि में रोगों का शमन करने वाली जो ओषधियां उत्पन्न हुई हैं, उन्हें मैं लेता हूँ ॥१॥ अमोघ वीर्ययुक्त हरिद्रे ! तू सब ओषधियों और वीरुधों में श्रेष्ठ है। जैसे दिन-रात्रि के कालावच्छेद के कारण चंद्र और सूर्य श्रेष्ठ हैं, जैसे देवताओं में वरुण मुख्य हैं, वैसे ही तू है ॥२॥ हे ओषधियो ! तुम किसी के द्वारा भी हिंसित न होने वाली, धन वाली तथा निरोग करने वाली हो। तुम मेरे केशों को दृढ़ करो ॥३॥

२२ सूक्त

[ऋषि—शन्तातिः। देवता—आदित्यरश्मिः, मरुतः। छंद—त्रिष्टुप्, जगती]

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति।

त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यू दुः ॥१॥
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥२
उदप्लुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥३॥

जिस अंतरिक्ष में नक्षत्र चक्र नियमित रूप से घूमता है उसे प्राप्त हो कर सूर्य रश्मियाँ सब पार्थिव रस को लेती हुई सूर्यमण्डल में चढ़ जाती हैं और फिर वहाँ से वर्षा करने को आती हुई पृथिवी को भिगोती हैं ॥१॥ हे स्वर्णभूषण-धारी मरुद्गण ! तुम अपने गमनकाल में जलों और ओषधियों को पुष्ट करते हो । जिस देश में तुम जल-वृष्टि करते हो, वहाँ बलदायक अन्न और सुबुद्धियुक्त प्रजा का पोषण करते हो ॥२॥ हे मरुद्गण ! सब धान्यों और निम्न मुख से गमन करने वाली नदियों को तृप्त करने वाले मेघों को प्रेरित करो । वे मेघ दरिद्र माता-पिता के अपनी कन्या को देखकर कम्पायमान होने के समान,गर्जना रूपी भय से कम्पित करते हैं । पति से सम्भाषण करती हुई स्त्री अन्नादि देती है, वैसे ही वाणी गमनशील मेघ को अन्नादि देती है ॥३॥

२३ सूक्त

[ऋषि—शन्तातिः । देवता—आपः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्]

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥१॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥२॥
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥३॥

मैं उत्तम कर्म करने वाला,संसार की रक्षा का कर्म करने के कारण

निरन्तर प्रवाहित जलों का आह्वान करता हूँ ॥१॥ निरन्तर प्रवाहित रहने वाले जल उत्तम फल के निमित्त अनर्थों की जड़ पाप से हमारी रक्षा करें। वह हम को श्रेय प्राप्त कराने के लिए पाप से छुड़ावें ॥२॥ सूर्य की प्रेरणा से मनुष्य सब वैदिक कर्मों को करें। कल्याणप्रद औषधियाँ और उनको पुष्ट करने वाले जल हमारा कल्याण करते हुए पाप को नष्ट करें ।.३.।

२४ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः। देवता—आपः। छन्द—अनुष्टुप्)

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन हृद्द्योतभेषजम् ॥१॥
यन्मे अक्ष्योरा दिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्।
आपस्तत सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२॥
सिन्धुपत्नी. सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

हिमालय से पाप-नाशक गंगा आदि का जल प्रवाहित होता है वह समुद्र में संयुक्त होते हैं। यह जल मुझे ऐसी औषधियाँ प्रदान करे जो हृदय के दाह का शमन करने में समर्थ हों ॥१॥ नेत्रों को, पार्ष्णि को और प्रपद को संताप देने वाले सब रोगों को देवता के समान जल मिटादें। यह जल रोग दूर करने वाली औषधियों में परम कुशल चिकित्सक हैं ॥२॥ हे जलो! तुम्हारा स्वामी समुद्र है, तुम उसकी पत्नी हो। तुम रोगों को दूर करने वाली औषधि प्रदान करो, जिससे हम अन्नादि बल देने वाले पदार्थों का सेवन करने में समर्थ हों ॥३॥

२५ सूक्त

(ऋषि—शुनःशेपः। देवता—मन्याविनाशनम्। छन्द—अनुष्टुप्)

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥

सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।
इतस्ता सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

गले की नसों में व्याप्त यह पचपन कण्ठमालाऐं, पतिव्रता को पाकर दोष नष्ट होने के समान इस प्रयोग से नष्ट हो जांय, ॥१॥ ग्रीवा की नाड़ियों में व्याप्त सतत्तर कण्ठमालाएँ, पतिव्रता द्वारा दोष नष्ट करने के समान ही इस प्रयोग से नष्ट हों ॥२॥ कन्धे की धमनियों में व्याप्त निन्यानवे कण्ठमालाएँ, पतिव्रता को पाकर दोष नष्ट होने के समान इस प्रयोग से नष्ट हो जाँय ॥३॥

२६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—पाप्मा । छन्द—अनुष्टुप्)

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् ॥१॥
यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम् ॥२॥
अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥३॥

हे पाप के अभिमानी देव ! तू सबको वश में रखने वाला है । मुझे छोड़ दे और सुखी कर । तू मुझे मेरे पुण्य के कारण स्वर्ग प्राप्त करा ॥१॥ हे पाप्मन् ! तू मुझे नहीं छोड़ता तो हम तुझे इस अनुष्ठान-कर्म द्वारा बल-पूर्वक मार्ग के चौराहे पर छोड़ते हैं । वहाँ से तू हमारे शत्रुओं के देह में प्रविष्ट हो ॥२॥ जिसे हम द्वेष करते हैं, उसे ही यह इन्द्र के समान बली पाप प्राप्त हो । हे पाप ! तू उसी का नाश कर ॥३॥

२७ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता—यमःनिर्ऋतिः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२॥
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥३॥

हे देवगण ! यह पाप देवता का दूत हमको पीड़ित करना चाहता है, उसके निवारणार्थ हम तुम्हें हव्यादि द्वारा पूजते हैं। हमारे दुपाये, चौपायों का कल्याण हो, रोग शमन हों और सभी दोष शान्त हों ॥१॥ हे देवगण ! पाप देवता का यह दूत हमारे घर को दुःखी न बनावे, हमें सुख दे। विज्ञ अग्नि इस निमित्त हमारे हव्य को ग्रहण करें। उनकी कृपा से यह कपोत हमारा अकल्याण न करे ॥२॥ पक्षयुक्त आयुध हमारा नाश न करे। वह हमारी गौओं और पुरुषों को सुख देने वाला हो। हे देवगण ! यह कबूतर हमको संतापकारक न हो ॥३॥

२८ सूक्त

(ऋषि-भृगुः। देवता—यमः, निर्ऋतिः। छन्द—त्रिष्टुप, अनुष्टुप्,जगती)

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः ॥१॥
परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥२॥
यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥

हे देवगण ! इस कपोत को हमारे गृह से दूर करिये। हम इस से

तृप्त होते हुए गौओं को घुमाते हैं। हम कपोत के पाँवों के चिह्नों को धो कर शान्त करते हैं। यह कपोत हमारे अन्न को छोड़ कर उड़ जाय ॥१॥ कबूतर के प्रवेश को शमन करने के लिए यह ऋत्विज अग्नि को घर में ले आए। यह गौ को सर्वत्र घुमा रहे हैं और हव्यादि देवताओं को अर्पित कर रहे हैं। इस प्रकार के शान्ति कर्म के उपरान्त कोई हिंसक पुरुष हम को पीड़ित नहीं कर सकता ॥२॥ 'यह आज मारने योग्य है, यह कल मारने योग्य है' इस प्रकार अनुक्रम करते हुए यमराज फल देने के लिए स्थित हैं। वे दो पाँव वाले मनुष्यों और चार पाँव वाले पशुओं के स्वामी हैं। उन मृत्यु को प्रेरित करने वाले यमराज को नमस्कार है ॥३॥

२९ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता—यमः, निर्ऋतिः। छन्द—गायत्री, अष्टि)

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत्।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥१
यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥२
अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरताया इदमा ससद्यात्।
पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम्।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान् ॥३

यह पक्ष वाला आयुध दूरस्थ दिखाई देने वाले शत्रुओं को प्राप्त हो। अशोभन वाणी वाला उल्लू निर्वीय हो, पचनाग्नि के पास पैरों को रखने वाला अशुभ सूचक कपोत भी निर्वीय हो जाय ॥१॥ हे पापदेवता निर्ऋते! तेरे भेजे हुए यह कपोत और उल्लू हमारे घर में आकर भी आश्रय न पा सकें ॥२॥ कबूतर और उल्लू के आगमन का अशुभ चिह्न हमारे लिए अहिंसक बने। हमारे वीरों के पराजित होकर लौटने के भाव को प्राप्त न हो। हे यम के दूत रूप कपोत! जैसे तेरे स्वामी के घर में वहाँ के प्राणी तुझे निर्वीय देखते हैं वैसे ही हम भी देखें ॥३॥

३० सूक्त

(ऋषि—उपरिबभ्रवः । देवता-शमी । छन्द—जगती,त्रिष्टुप्,अनुष्टुप्)

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषु
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥१
यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥२
बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥३

मधु-रसयुक्त यव को देवताओं ने सरस्वती नदी के निकट मनुष्यों को दिया । उस समय जोत कर धान्य उत्पन्न करने के लिए इन्द्र ने हल पकड़ा और सुन्दर दान वाले मरुद्गण कृषक बने ॥१॥ हे शमी ! तेरा मद केशोत्पादक और उनकी वृद्धि करने वाला होता है, उससे तू पुरुष को सर्वत्र हर्षयुक्त करता है । तू सैकड़ों शाखा वाली होकर वृद्धि को प्राप्त हो । मैं तुझे नहीं काटता, अन्य वृक्षों को काटता हूँ ॥२॥ हे सौभाग्य की कारणरूप, बिना प्रयत्न ही वर्षा जल से बढ़ने वाली बड़े-बड़े पत्तों वाली शमी ! माता द्वारा पुत्रों को सुख देने के समान तू केशों को सुखकारी हो ॥३॥

३१ सूक्त

(ऋषि—उपरिबभ्रवः । देवता—गौः । छन्द—गायत्री)

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः ।
व्यख्यन्महिषः स्वः ॥२॥
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥३

सूर्य उदयाचल पर चढ़कर पूर्व में दर्शन देने लगे । इनकी किरणों ने सब की माता पृथिवी को ढक दिया । फिर इन्होंने स्वर्ग और अंतरिक्ष

को व्याप्त किया। यही सूर्य वृष्टि के जल का दोहन करने के कारण गो कहे जाते हैं ॥१॥ प्राणापान व्यापार के करने वाले प्राणियों के देह में सूर्य की प्रभा विचरती है। यह महान् सूर्य स्वर्ग तथा समस्त ऊपर के लोकों को भी प्रकाशमान करते हैं ॥२॥ दिन रात्रि के अंग रूप तीस मुहूर्त इन सूर्य की रश्मियों से ही देदीप्यमान रहते हैं और वेदत्रयी वाणी भी द्रुतगामी सूर्य के आश्रय में ही रहती है ॥३॥

३२ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः रुद्रः मित्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अन्तर्दावे जुहुता स्वेतद् यातुधानक्षयणं घृतेन।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१
रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२
अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥३

हे ऋत्विजो! यातुधानों (रोगों के कीटाणुओं) का नाश करने वाले हव्य की घृत सहित इस अग्नि में भले प्रकार आहुति दो। हे अग्ने! इन उपद्रवियों को भस्म करके हमारे घरों को संताप से बचाइये ॥१॥ हे यातुधानो! तुम्हारी पसलियों की अस्थियों को रुद्र देवता काट डालें। हे मांसभक्षी पिशाचो! रुद्र देवता तुम्हारे कंठों को काट दें। वीर्यमयी औषधि भी तुम्हें यम की प्राप्ति करावे॥२॥हे मित्रावरुण! हम निर्भय होकर इस देश में रहें। तुम इन मांसभक्षी राक्षसों को हमारे पास से भगा दो। उनको कोई भूमि तथा आश्रयदाता न मिले। वे परस्पर लड़कर ही नष्ट भ्रष्ट हो जांय ॥३॥

३३ सूक्त

(ऋषि—जाटिकायनः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः।

इन्द्रस्य रन्त्यं बृहतत् ॥१
नावृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः ।
पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥२
स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशंगसंदृशम् ।
इन्द्रः पतिस्तुविष्टिमो जनेष्वा ॥३

हे मनुष्यो ! जिन इन्द्र की रंजक ज्योति शत्रु-हिंसा की प्रेरणा करती है, उनके सेवनीय तेज को तुम ग्रहण करो ॥१॥ वे इन्द्र दूसरों से तिरस्कृत न होते हुए अपने तेज से तुम शत्रु को दबा देते हैं। वृत्र-वध के समय उनके बल को कोई दबा न सका उसी प्रकार अब भी वह किसी से नहीं दबते ॥२॥ वह इन्द्र हमको पीले रंग का सुवर्ण प्रदान करें। वह देवता, मनुष्यादि के स्वामी एवं सब प्रकार श्रेष्ठ हैं ॥३॥

३४ सूक्त

(ऋषि–चातनः । देवता—अग्निः । छन्द— गायत्री)

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः ॥१
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥२
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः ॥३
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥४
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः ॥५

हे स्तोता ! इच्छित वर्षक, यातधानों के संहारक अग्नि की स्तुति करने वाली वाणी का उच्चारण करो। वे अग्नि हमें राक्षस पिशाचादि से मुक्त करें ॥१॥ जो अग्नि अपने तीक्ष्ण तेज द्वारा यातुधानों को नष्ट करते हैं, वे हमको शत्रुओं से मुक्त करें ॥२॥ जो अग्नि जल विहीन मरुभूमि में रेत के रूप में अधिक तीक्ष्ण होते हैं, वह राक्षस, पिशाच और शत्रुओं से हम को मुक्त करें ॥३॥ जो अग्नि अनेक रूप से दिखाई

देते तथा सूर्य रूप में प्रकाश करते हैं। वे अग्नि राक्षस, पिशाच और शत्रुओं से हमको मुक्त करें ॥४॥ इस पृथिवी के परे अन्तरिक्ष में सूर्यात्मक अग्नि प्रकट हैं, वे अग्नि हमको राक्षस पिशाच शत्रु आदि से मुक्त करें ॥५॥

३५ सूक्त

(ऋषि—कौशिकः। देवता—वैश्वानरः। छन्द—गायत्री)

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥१

वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप। अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥२

वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्।
ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥३॥

सब मनुष्यों के हितकारी अग्नि दूर देश से हमारी रक्षार्थ आकर सुन्दर स्तुतियों को श्रवण करें ॥१॥ वे वैश्वानर अग्नि हमारे समीप आकर स्तुति रूप उक्थों द्वारा प्रसन्न होते हुए यज्ञ में स्थित हों ॥२॥ अंगिराओं के स्तोम और शस्त्र नामक स्तुति को वैश्वानर अग्नि ने समर्थ कर उज्ज्वल यश और अन्न प्राप्त होने की विधि बताते हुए सुन्दर स्वर्ग की प्राप्ति करा दी है ॥३॥

३६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा [स्वस्त्ययनकामः]। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् अजस्रं घर्मसीमहे ॥१

स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत् सृजते वशी।
यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥२

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य।
सम्राडेको वि राजति ॥३

हम उन वैश्वानर अग्नि की आराधना करते हैं जो यशवान् तथा यज्ञात्मक ज्योति के अधिपति और सदैव प्रकाशमान रहते हैं। उन्हीं से हम उत्तम फल मांगते हैं॥१॥ सब प्रजाओं को फल देने वाले यह वैश्वानर अग्नि, देवताओं को यज्ञात्मक अन्न प्राप्त कराते और सूर्य रूप से वसन्तादि ऋतुओं की रचना करते हैं ॥२॥ एक मात्र अग्नि ही इस

स्थानों के स्वामी हैं, वे उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वालों को इच्छित फल प्रदान करते हुए अधिक तेजस्वी लगते हैं ॥३॥

३७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा [स्वस्त्ययनकामः]। देवता—चंद्रमाः। छन्द—अनुष्टुप्)

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम्।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृकइवाविमतो गृहम् ॥१
परि णो वृङ्ग्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन्।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः ॥२
यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥३

शाप क्रिया के कर्त्ता होते हुए सहस्राक्ष इंद्र रथ सहित मेरे पास आवें और शाप देने वाले शत्रु को भेड़िया द्वारा भेड़ को मारने के समान ही नष्ट करदें ॥१॥ हे शपथ ! तू बाधक न हो, हमको छोड़। जैसे गिरती हुई बिजली वृक्ष को भस्म करती है, वैसे ही तू हमको शाप देने वाले शत्रुओं को भस्म कर दे ॥२॥ हम शाप नहीं देते, परन्तु जो शत्रु हमको शाप दे कठोर भाषण करे ऐसे शत्रुओं को, कुत्तों के आगे रोटी डालने के समान मृत्यु के आगे फेंकते हैं ॥३॥

३८ सूक्त

[ऋषि-अथर्वा (वर्चस्कामः)। देवता-त्विषि, बृहस्पतिः। छन्द-त्रिष्टुप्]

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्येया।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥१
या हस्तिनि द्वीपिनि यः हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न एतु वर्चसा संविदाना ॥२
रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे।

इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥३
राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥४

मृग व्याघ्र और सर्प में जो आक्रमणात्मक तेज है, अग्नि में दाह रूप, ब्राह्मण में शाप रूप, सूर्य में ताप रूप तेज है, उसी तेज से इन्द्र प्रकट हुये हैं। वह तेजरूपा देवी हमारे इच्छित तेज से मिलती हुई प्राप्त हो ॥१। हाथी में बल रूप, गेंडे में हिंसा रूप, सुवर्ण में आह्लाद रूप तेज है तथा जलों, गौओं और पुरुषों में जो तेज है, उसी ने इन्द्र को उत्पन्न किया है। वह तेजरूपा देवी हमारे इच्छित तेज सहित हमको प्राप्त हो ॥२॥ वर्षाकारक मेघ, गमन, साधन रूप रथ, सेचन सामर्थ्ययुक्त बैल, द्रुत वेग वाले वायु और मेघ के स्वामी वरुण में जो तेज है, जिस तेज से इंद्र उत्पन्न हुये हैं, वह तेजरूपा देवी हमारे इच्छित तेज सहित हमको प्राप्त हो ॥३॥ राजपुत्र के अभिषेक में बजाई जाने वाली दुन्दुभि में, अश्व के शीघ्र गमन में और पुरुष के उच्च शब्द में जो तेज है तथा जिस तेज ने इन्द्र को उत्पन्न किया है। वह तेजरूपा देवी हमारे इच्छित तेज सहित हमको प्राप्त हो ॥४॥

३९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (वर्चस्कामः) । देवता-वृहस्पतिः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मंतं मा वर्धय ज्येष्ठतातये ॥१
अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ॥२
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३

हमारे द्वारा इन्द्र को दी जाने वाली अत्यन्त शक्तिमती, बलदायिनी, पराभवकारिणी, यशदात्री हवि वृद्धि को प्राप्त हो। हे इन्द्र ! उस हवि की वृद्धि के पश्चात् मुझ हवियुक्त यजमान की चिरकाल तक वृद्धि

कीजिये ॥ १ ॥ यशदाता इन्द्र हमारे सामने वर्तमान हैं, हम उनको नमस्कारादि से पूजते है। हे इन्द्र! हम तुम्हारा दिया हुआ राज्य पाकर यशस्वी बनें।।२।इन्द्र अग्नि,सोम यश की इच्छा करते हुये उत्पन्न हुए हैं। इनके यशस्वी होने के समान मैं यश की कामना वाला भी देवता और मनुष्यादि जीवों में सर्वाधिक यशस्वी होता हूं ॥३॥

४० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (अभयकामः) अथर्वा [स्वस्त्ययनकामः]। देवता-मन्त्रोक्ता इन्द्रः। छन्द-जगती, अनुष्टुप्)

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्त ऋषाणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥१॥
अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु।
अशत्र्विन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥२॥
अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३॥

हे द्यावा-पृथिवी! तुम्हारी कृपा से हम निर्भय हों। चन्द्रमा, सूर्य और आकाश पृथिवी के मध्य स्थित अन्तरिक्ष हमको अभय प्रदान करे। सप्त ऋषियों को प्राप्त होने वाली हवि भी हमको अभय प्राप्त कराने वाली हो ॥१॥ हे सूर्य! हमारे ग्राम के चारों ओर प्रचुर अन्न उत्पन्न हो। हमारे यहाँ सदा कुशल रहे। इन्द्र हमको शत्रु-भय से मुक्त करें। राजाओं का क्रोध, उनकी कृपा से हमसे दूर चला जाय ॥२॥ हे इन्द्र! दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और पूर्व से हमको शत्रु रहित कीजिये। कहीं हमसे द्वेष करने वाला न रहे ॥३॥

४१ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-मनआदयो दैव्या ऋषयः। छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥१॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या गरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥२॥
मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥३॥

सुख आदि को प्रत्यक्ष कराने वाले मन के लिये, ज्ञान-साधन चेतना के लिये, ध्यान-साधन बुद्धि के लिये स्मृति-साधन मति के लिये, ज्ञानरूप श्रुति के लिये तथा चक्षु-ज्ञान रूप दर्शन शक्ति के लिये हम हव्यादि से इन्द्र का पूजन करते हैं ॥१॥ अपान,व्यान व्यापार वाले को स्थिर रहने वाले व्यान वायु की,प्राणन व्यापार वाले प्राण वायु की तथा प्राणपान आदि धारण करने वाले प्राणी की और सरस्वती देवी की हम हव्यादि से सेवा करते हैं ॥२॥ प्राणाधिदेव सप्त ऋषि हमारे शरीर के रक्षक हैं, वे इन्द्रिय रूप से उत्पन्न हुए हैं। वे हमारा त्याग न करें। हे अविनाशी देवगण ! हमसे दीर्घ आयु की स्थापना करो ॥३॥

४२ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः। देवता-मन्युः। छन्द—अनुष्टुप्)

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा समनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥१॥
सखायाविव सचावहै अव मन्युं तनोमि ते।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥२॥
अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च।
यथावशो न वादिपो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

धनुर्धारी द्वारा धनुष पर चढ़े रौंदे को उतारने के समान मैं तेरे हृदय से क्रोध को उतारता हूँ। हम दोनों परस्पर अनुराग रखते हुए एक मत से कार्य कर सकें ॥ १ ॥ हम एक मन से कार्य में लगें, मैं तेरे क्रोध को भारी पत्थर के नीचे प्रेरित करता हूँ ॥२॥ मैं तेरे क्रोध पर

अग्र भाग और ऊपरी भाग से खड़ा होकर अपने आधीन करता हूँ। मैं तेरे क्रोध को दबाता हुआ तुझे अपने अनुकूल बनाता हूँ ॥१॥

४३ सूक्त

[ऋषि–भृग्वङ्गिराः। देवता–मन्युशमनम्। छंद—अनुष्टुप्]

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥१॥
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्यशमन उच्यते ॥२॥
वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

यह दर्भ [कुश] अपनी जाति के अथवा शत्रु के क्रोध को नष्ट करने मे समर्थ हुआ सामने खड़ा है। क्रोधी और कारणवश क्रोध नष्ट करने वाले के क्रोध को मिटाने में भी यह प्रयोग एक उपाय रूप है॥१॥ यह कुशा बहुत जड़ों वाला तथा अधिक जल वाले भूभाग को दबा कर खड़ा है। पृथिवी से अंतरिक्ष की ओर उठा हुआ यह दर्भ क्रोध शांत करने वाला बताया गया है ॥२॥ हे क्रोधवंत! क्रोध को प्रकट करने वाली तेरी नस को हम शान्त करते हैं और क्रोधावेश में मुख पर प्रकट होने वाली नस को भी शान्त करते हैं। मैं तेरे क्रोध को दबाकर पराधीन करता हुआ तुझे अपने अनुकूल करता हूँ ॥३॥

४४ सूक्त

[ऋषि–विश्वामित्रः। देवा—मंत्रोक्ताः। छंद–अनुष्टुप्, बृहती]

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत्।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव ॥१॥
शतं या भेषजानि ते सहस्रं सङ्गतानि च।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥२॥

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि पितृणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ।।३

जिस प्रकार ग्रह-नक्षत्रों से युक्त द्युलोक अपने स्थान पर टिका है, सब भूतों की आधार पृथिवी भी टिकी है, जैसे यह जङ्गम प्राणि समूह पृथिवी पर आश्रित है, जैसे यह वृक्ष खड़े हुए सोने का अनुभव करते हुए अपनी स्थिति में रहते हैं, वैसे ही तेरा रुधिर टिका रहे, बहे नहीं ।।१।। हे रोगी ! रोग-शमन करने वाली जो सैकड़ों या सहस्रों औषधियाँ प्राप्त हैं, उन सब में श्रेष्ठ यह कर्म रक्तस्राव को दूर करने वाला है ।२।। हे शृङ्गोदक ! तू रुद्र का मूत्र है और चिरकाल जीवन रूप अमृत को बाँधने वाला है, अतः तू रोग का नाश कर। हे गोशृङ्ग! तेरा विषाण नाम रोग-शमन का सूचक और आस्राव रोग के उत्पादक पाप निर्मूल करने वाला है ।।३।।

४५ सूक्त

[ऋषि–अंगिराः प्रभृति । देवता–दुस्वप्ननाशनम् । छंद–पंक्तिः,अनुष्टुप्]

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ।।१।।
अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम् जाग्रतो यत् स्वपत्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ।।२।।
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आंगिरसो दुरितात् पात्वंहसः ।।३।।

हे पाप में आसक्ति रखने वाले मन ! तू हमसे दूर रह । तू अशोभन बातों को लाता है इसलिये मैं तुझे नहीं चाहता । मेरा मन स्त्री, पुत्र और गवादि पशुओं में उचित भाव से रहे ।।१।। हम जिन दुःस्वप्नों से पीड़ित होते हैं, उन दुःस्वप्नों के कारणरूप पाप को अग्नि हमसे दूर कर दें ।।२।। हे मंत्र-स्वामिन् ! हे ब्रह्मणस्पते ! हे इंद्र ! पापवश जिस दुःस्वप्न से हम व्यर्थ ही पीड़ित होते हैं, उस पाप से आंगिरस मंत्र वाले ज्ञानी वरुण हमारी रक्षा करे ।।३।।

४६ सूक्त

[ऋषि—अंगिराः प्रभृति । देवता-दुःस्वप्ननाशनम् । छंद—जगती]

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पितारुर्नामसि॥१॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥२॥
यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥३॥

हे स्वप्न! तू न प्राणधारक है न मृत है । जाग्रतावस्था के अनुभव से सम्पन्न होता है । हे स्वप्न ! वरुण की पत्नी तेरी माता और वरुण तेरे पिता हैं । तू अररु नाम वाला है॥१॥ हे स्वप्नाभिमानी देवता ! हम तेरे जन्म के ज्ञाता हैं । तू वरुण-पत्नी का पुत्र है । तू यम के व्यापार का करने वाला है । हम तुझे भले प्रकार जानते हैं, तू दुःस्वप्न के भय से हमारी रक्षा करने वाला हो ॥२॥ जैसे ऋषि मनुष्य धन देकर ऋण को चुका देता है, जैसे गौ के खुर आदि दूषित अंगों को छेदनादि कर्म से हटा देते हैं, वैसे ही हम दुःस्वप्न से होने वाले भयों को अपने से दूर कर शत्रुओं पर भेजते हैं ॥३॥

४७ सूक्त

[ऋषि-अंगिरा प्रभृति । देवता-अग्निः विश्वेदेवाःसुधन्वा । छंद-त्रिष्टुप्]

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशम्भूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१॥
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥२॥
इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्व रानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥३॥

वे अग्नि प्रातः सवन कर्म में हमारी रक्षा करें। वे विश्व के कर्ता, प्राणियों के हितैषी दुःख के शान्त करने वाले हमको यज्ञ के फल रूप धन में स्थापित करें। उनकी कृपा से हम दीर्घायु तक जीवित रहते हुये पुत्र पौत्रादि के साथ भोजन करने वाले हों ॥ १ ॥ उनञ्चास मरुद्गण और उनके स्वामी इन्द्र हम ऋत्विज और यजमानों का दूसरे सवन में त्याग न करें। हम उनको प्रसन्न करने वाले स्तुति वाक्यों को कहते हुये शतायु प्राप्त करें और उनकी कृपा के पात्र रहें ॥२॥ यह तृतीय सवन उन ऋभुओं का है जिन्होंने सोम भक्षण के चमस को अपने शिल्प कर्म से बनाया था। वे ऋभु, सुधन्वा आंगिरस के पुत्र रथ, चमस बनने के कारण देवत्व को प्राप्त हुये हैं। ऐसे वे उत्तम फल को ध्यान में रखते हुए हमको सिद्धि प्राप्त करावें ॥३॥

४८ सूक्त

(ऋषि—अंगिरा प्रभृति। देवता–मन्त्रोक्ताः। छन्द–उष्णिक्)

श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा। १।
ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥२॥
वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥३॥

हे प्रशंसनीय गति वाले प्रातः सवन में होने वाले यज्ञ! तू बाज पक्षी के समान शीघ्रगामी है। तेरे स्तोत्रों में गायत्री छन्द का अधिक प्रयोग होने से तू गायत्रच्छन्दा है मैं तुझे दण्ड के समान ग्रहण करता हूं अब तू मुझे यज्ञ की अन्तिम ऋचा को प्राप्त करा। तेरे निमित्त स्वाहाकार हो ॥१॥ हे तृतीय सवन वाले यज्ञ! जगती छन्द का अधिक प्रयोग होने से तू जगच्छन्द है। ऋभुओं को प्रसन्न करने वाला होने के कारण तू ऋभु है। मैं तुझे दण्ड के समान ग्रहण करता हूं तू मुझे यज्ञ की अन्तिम श्रेष्ठ ऋचा को प्राप्त करा। तेरे निमित्त स्वाहाकार हो ॥२॥ हे माध्यदिन सवन वाले यज्ञ! तेरे स्तोत्रों में

त्रिष्टुप् छन्द की अधिकता होने से तू त्रिष्टुप् छन्दा है और सेंचन समर्थ इन्द्र को प्रसन्न करने वाला होने से इन्द्र है। मैं तुझे दण्ड के समान ग्रहण करता हूँ। तू मुझे यज्ञ की अन्तिम श्रेष्ठ ऋचा को प्राप्त करा। तेरे निमित्त स्वाहाकार हो ॥३॥

४६ सूक्त

(ऋषि—गार्ग्यः। देवता—अग्निः। छन्द-अनुष्टुप्, जगती)

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥१॥
मेष इव वै सं वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥२
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥३॥

हे अग्ने! बन्दर के समान चञ्चल गति वाली और देहगत जल को पीने वाली तुम्हारी लपटें इस देह को प्रसूता गौ द्वारा प्रसवानन्तर भूमि पर पड़ी अपनी जरायु (जेल) को खा जाने के समान, भस्म कर देती हैं। तुम्हारे ज्वालात्मक शरीर को मनुष्य छू भी नहीं सकता ॥१॥ हे अग्ने! तुम जलाने योग्य देह में इस प्रकार व्याप्त होते हो जैसे तिनकों वाले वन में जाकर मेढ़ा उन तिनकों को खाने के लिये व्याप्त हो जाता है। वृक्ष-युक्त वन में घूमने वाला दावाग्नि और शव को भस्म करने वाला शवाग्नि जब भस्म करने लगते हैं तब वे वृक्ष या पुरुष को भस्म करते हुये सोमादि लताओं का भक्षण करते हैं ॥२॥ हे अग्ने! तुम्हारी ज्वालायें वाले मृग के उछल-कूद मचाने के समान आकाश में जाकर नृत्य करने लगती हैं। वे बाज के समान वेग वाली दाहात्मक ध्वनि करती हैं। वे अधिक धूम उत्पन्न करने से मेघों को बनाती हैं। हे अग्ने! सूर्य मण्डल को प्राप्त कर तुम्हारी दीप्तियाँ, प्राणियों के उपादान रूप वृष्टि जल को संसार के लिये धारण करती है ॥३॥

५० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (अभयकामः) देवता अश्विनौ । छंद—जगती,पंक्तिः)

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानाप नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥१॥
तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवान् यवानहिंसन्तो अपोदित २
तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वाञ्जम्भयामसि ॥३

हे अश्वि देवो ! तुम उस हिंसक चूहे को मारते हुए इसके सिर को काट दो, हड्डी-पसली चूर्ण कर दो । तुम हमारे धान्य को बचाने के लिये इसके मुख को बंद कर दो ॥१॥ हिंसक मूषक !' तू उपद्रवी होने से हिंसा योग्य है । ब्रह्म के समान भयंकर यह हवि तुझे नष्ट करने के निमित्त अश्विनीकुमारों को दी जा रही है । अत इस हवि-कर्म से पहले ही तुम हमारे यवों को न खाते हुए यहाँ से अन्यत्र भाग जाओ ॥२॥ हे चूहों और पतंगों आदि के स्वामी! मेरे वचन को सामने आकर सुनो । तुम चाहे जंगल के हो या ग्राम के हो हम अपने इस कर्म द्वारा तुम्हारा नाश करते हैं ॥३॥

५१ सूक्त

[ऋषि-शन्तातिः । देवता-सोमः आपः वरुणः। छंद-गायत्री,त्रिष्टुप्,जगती]

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१॥
आपो अस्मान् मातरः सूदयंतु घृतेन नो घृतप्वः पुनंतु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२॥
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रोरिषः ।३

वायु द्वारा शुद्ध होकर रसतत्व को प्राप्त हुआ सोम प्रत्येक शरीर में मुख से नाभि तक पहुँचता है। वह सोम इंद्र का मित्र है ।१॥ संसार के मातृरूप जल हम को पाप-रहित करें। क्षरणशील रस से संसार को पवित्र करने वाले जल हम को पवित्र करें। यह देव रूप जल स्नान, आचमन, प्रोक्षण कर्म द्वारा सब पापों को प्रवाहित करने वाला है। मैं ऐसे जल में स्नानादि द्वारा पवित्र होकर कर्म के निमित्त उदय होता हूँ ॥२॥ हे वरुण! जिस पाप को मनुष्य करते हैं तथा अज्ञानवश धर्मों का पालन न कर उलटा बरतने लगते हैं, उस अज्ञान से उत्पन्न पाप के दण्ड रूप तुम हमारा नाश न करो ॥३॥

५२ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

[ऋषि–भागलिः। देवता—सूर्यः गावः भेषजम्। छंद–अनुष्टुप्]

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा। १॥
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत।
न्यूर्मयो नदीनां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥२॥
आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम्।
आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ॥३॥

रात्रि के अन्धकार में जो पिशाचादि उपद्रव करते हैं, उनको नष्ट करने के लिये सूर्य अन्तरिक्ष से उदय हो रहे हैं। उन सूर्य को सब सामने देखते हैं क्योंकि वे उदयाचल पर्वत के शिखरों पर उदय होते हैं। हमसे अदृश्य रहने वाले यातुधानों [कीटाणुओं] को भी वे मार डालते हैं ॥ १ ॥ सूर्य के उदय होने पर, जो नदियाँ रात्रि में नहीं दीखती थीं, वह दीखने लगीं। सूर्य ने अंधकारात्मक राक्षसों का नाश कर डाला। अब हमारी गौएं निर्भय होकर गोशालाओं में बैठ गईं तथा जंगली पशु भी अपने-अपने स्थानों को प्राप्त हुए ॥२॥ शतायु करने वाली, रोग-नाशिनी, महर्षि कण्व द्वारा बताई हुई चित्ति प्रायश्चित्त औषधि सभी को मैं रोग निवारणार्थ ले आया हूँ। वह

औषधि अदृष्ट राक्षसादि (कीटाणुओं) द्वारा उत्पन्न किए रोगों को पूर्णतः नष्ट करे ॥ ३ ॥

५३ सूक्त

(ऋषि—बृहच्छुक्रः। देवता—पृथिव्यादयो मंत्रोक्ताः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥१॥
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न एतु।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठति दुरितानि विश्वा ॥२॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वोयद् विरिष्टम् ॥३॥

सूर्य दक्षिण दिशा से मेरी रक्षा करें और वस्त्र धनादियुक्त दान से मुझे पूर्ण करें। आकाश-पृथिवी मुझे इच्छित फल दें। पितरों सम्बन्धी स्वधाकार के अभिमानी देव हमारे पास अन्नादि प्रेरित करें। सोम, अग्नि, वायु, सविता, भग देवता हमारे कार्यों में अनुकूल हों ॥१॥ मुख और नाक से चलने वाला प्राणरूप जीवन हमको पुनः प्राप्त हो। सब मनुष्यों के हितकारी अग्नि हमारे पाप को दूर कर हमारे शरीर में स्थित होते हुये रक्षा करें ॥२॥ हम सुन्दर अन्तःकरण से युक्त हों। देह के हाथ-पैर आदि सब अंगों से युक्त हों। देह क्रांति और सारभूत रस से युक्त हो। त्वष्टादेव हमारे देह के रोग-पीड़ित अंग को रोग-रहित करते हुए हमारे शरीर को पुष्ट करें। ३॥

५४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्नीषोमौ। छन्द—अनुष्टुप्)

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥१॥
अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम्।
इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥२॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥३॥

अभिचार-दोष को शमन करने वाले श्रेष्ठ कर्म को इच्छित फल के निमित्त करता हूँ। मैं इन्द्र को सुशोभित कर प्रसन्न करता हूँ। जैसे वृष्टि धन-धान्यादि की वृद्धि करती है, वैसे ही हे इन्द्र ! अभिचार कर्म से पीड़ित पुरुष के धन, बल, पुत्र, पौत्रादि की वृद्धि करिये ॥१॥ हे अग्नि ! हे सोम ! इस यजमान में बल की स्थापना करते हुये धन प्रदान करो। इस यजमान को फल प्राप्त हो इसलिये मैं यह श्रेष्ठ कर्म करता हूं ॥२॥ हे इन्द्र ! जो सगोत्रिय या अन्य गोत्रिय शत्रु हमारी हिंसा करने का इच्छुक है, हे इन्द्र ! सोमाभिषव करने वाले मेरे यजमान के वश में उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को करो ॥३॥

५५ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—विश्वेदेवाः, रुद्रः। छन्द —जगती, त्रिष्टुप्।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥१॥
ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षा स्विते नो दधात।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥२॥
इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥३॥

जिन मार्गों में देवता ही जाते हैं, वे विभिन्न लोकों को पाने के उपाय रूप मार्ग पृथिवी के मध्य में वर्तमान हैं, उनमें जो वृद्धि देने वाला मार्ग है, उसे इस देश में हे देवताओ ! मुझे प्राप्त कराओ ॥१॥ ग्रीष्मादि छः ऋतुओं के अभिमानी देवता हमको सुसाध्य धनों में स्थित करें। हे ऋतुओ ! गौ, पुत्र पौत्र आदि से युक्त हमको करो। हम अपने घर के समान तुम्हारे आश्रय में रहें ॥२॥ हे मनुष्यो ! इदावत्सर, परिवत्सर और संवत्सर

को नमस्कार द्वारा प्रसन्न करो। इन यक्ष के योग्य की कृपा-बुद्धि हम पर रहे और उससे उत्पन्न श्रेष्ठ फल भी हमें प्राप्त हो ॥३॥

५६ सूक्त

ऋषि—शन्तातिः। देवता—विश्वेदेवाः, रुद्रः। छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप्।

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान्।
संयतं न विष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥१॥
नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥२॥
सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू।
सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम् ॥३॥

हे विष-शमनकर्त्ता देवगण ! सर्प हमारी, हमारे पुत्र-पौत्र, भृत्यादि की हिंसा न कर पावे। सर्प का मुख दंश के निमित्त न खुले और खुला मंत्र-शक्ति से यथावत् रहे। सर्पादि के विष के शमनकर्त्ता देवताओं को नमस्कार है ।१। तिरछे बल वाले तिरश्चिराज कृष्णवर्ण, असित और बभ्रुवर्ण के स्वज नामक सर्पों को नमस्कार और इनको वश में रखने वाले देवताओं को भी नमस्कार है।२॥ हे सर्प ! तेरी ऊपर नीचे की दंत-पंक्तियों को मिलाता हुआ, ठोड़ी के ऊपर नीचे के भोगों को सीता हूं, तेरी जीभ से जीभ मिलाकर ऊपर के मुख-भाग को नीचे के भाग में मिलाता हूं और अनेक सर्पों के फनों को एक साथ बाँधता हूँ ॥३॥

५७ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः। देवया—रुद्रः [भेषजम्]। छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम्।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥१॥
जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥२॥

शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३॥

इस रोग को दूर करने वाली ओषधि को मैं करूंगा । यह रुद्र की ओषधि अन्त काल में सबको रुलाती है । इसका शिव ने प्रयोग किया था ॥१॥ हे परिचारको ! तुम गोमूत्र के फेन जल से घाव को धोओ, यह रोग को दूर करने में श्रेष्ठ है । हे रुद्र ! इस ओषधि से हमको सुख दो ॥२॥ हे देव ! हमको सुख मिले, हमारे पशु-मनुष्य रोग-ग्रस्त न हों और पाप का नाश हो । सम्पूर्ण विश्व और उसके श्रेष्ठ कर्म हमारे लिए ओषधि के समान हों ॥३॥

५८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा [यशस्कामः] । देवता—इन्द्रादयो मंत्रोक्ताः)
छन्द—जगती, पंक्तिः अनुष्टुप्

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥१॥
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥२॥
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३॥

द्यावापृथिवी, इन्द्र, सविता मुझे यशस्वी बनावें । मैं यशस्वी होकर दक्षिणा धारण करने वाले को प्रिय बनूं ॥१॥ जैसे इन्द्र आकाश-पृथिवी के मध्य वृष्टि आदि कर्म द्वारा श्रेष्ठ है, जैसे ओषधियों में जल श्रेष्ठ है, वैसे ही हम देवता और मनुष्यों में मैं श्रेष्ठ होऊं ॥२॥ इन्द्र, अग्नि, सोम, यश चाहते हैं । जैसे यह यशस्वी हुए हैं वैसे ही मैं बल चाहने वाला भी देव, मनुष्य आदि जीवों में यशस्वी होऊं ॥३॥

५९ सूक्त

(ऋषि अथर्वा । देवता अरुन्धत्यादयो मंत्रोक्ताः । छन्द—अनुष्टुप्)

अनुडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुधति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥१॥
शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवोररुन्धती ।
करत पयस्वन्तं गोष्टमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥२॥
विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥३॥

हे सहदेवी ओषधि ! तू पहिले बैलों को, गौओं को और पाँच वर्ष से कम आयु के गौ, अश्व आदि को सुखी कर ॥१॥ हे सहदेवी, हे अरुन्धति ! तू हमारे गोष्ठ को दूध से पूर्ण कर। हमारे पुत्र, पौत्र, भृत्यादि को रोग-रहित करती हुई हमको सुखी बना । २॥ हे सहदेवी ! मैं इच्छित फल की तुझसे प्रार्थना करता हूँ । तू सौभाग्ययुक्त जीवन देने वाली अनेकरूपिणी है । यह ओषधि रुद्र के फेंके हुये शस्त्र को हमारे पशुओं से पृथक् ले जाने वाली हो ॥३॥

६० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अर्यमा । छन्द - अनुष्टुप्)

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायजानये ॥१॥
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती ।
अङ्गो न्वर्यमन्नसा अन्याः समनस्यायति ॥२॥
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥३॥

जिन सूर्य की रश्मियाँ पूर्व दिशा में उग रही हैं, वे सूर्य इस स्त्री

रहित पुरुष को स्त्री और कन्या के लिये पति प्रदान करने की इच्छा से उदय हो रहे हैं ।।१।। पतिव्रता स्त्रियों ने जिन शान्ति कर्मों को किया था, उन्हें करती हुई यह पति-अभिलाषिणी कन्या, पति के प्राप्त न होने से दुःखित है । हे अर्यमा ! अन्य स्त्री भी इसके निमित्त शान्ति कर रही हैं ।।२।। अखिल विश्व के धारक विधाता ने पृथिवी को स्थापित कर द्युलोक और सविता को सूर्य मंडल में स्थापित किया है । वे संसार के नियन्ता ही इस कन्या के लिये काम्य पति प्रदान करें ।।३।।

६१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—रुद्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ।।१।।
अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ।।२।।
अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ।।३।।

सब के प्रेरक सूर्य ने मेरे लिये सुख देने वाली तेज रूप किरणों को प्रकट किया है । जल और जलाभिमानी देव मधुर जल को मेरे लिये लावें । ब्रह्मा के तप से प्रकट हुये देवता मुझे इच्छित फल दें । सवितादेव इच्छित फल प्रापक व्याप्ति स्थापित करें क्योंकि वे सब को प्रेरणा देने वाले हैं ।।१।। मैंने पृथिवी और स्वर्ग को पृथक किया । मैंने छै ऋतुओं में अधिमास रूप सातवीं ऋतु को जोड़ा । संसार के सत्यासत्य वाक्यों को तथा दैववाणी का भी मैं ही उच्चारण करता हूँ ।।२।। पृथिवी, स्वर्ग गंगा, आदि सात नदियों और समुद्र को मैंने ही उत्पन्न किया है । इस प्रकार भोक्ता और भोग रूप अग्निषोमों को मैं संसार के रचना कार्य में सहायक रूप से प्राप्त कर चुका हूँ ।।३।।

६२ सूक्त (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वैश्वानरादयो मंत्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप्)

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावा पृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१॥
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणंतः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२॥
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमाद मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३॥

सब प्राणियों में वर्तमान अग्नि, वैश्वानर सूर्य, प्राण रूप से देह में विचरणशील तथा अन्तरिक्ष में गमन करने वाले वायु और यज्ञ को पूर्ण करने वाले द्यावा-पृथिवी हमको पवित्र करें ॥१॥ हे मनुष्यो ! वैश्वानरात्मक सत्य स्तुति रूप वाणी को प्रारम्भ करो। जिस वाणी के शरीर रूप ऊपर के भाग विस्तृत हैं, उस वाणी से हम धन के स्वामी बनने के लिये वैश्वानर अग्नि की स्तुति करें ॥२॥ ब्रह्मवर्चस् आदि तेज की प्राप्ति के लिये स्तुतियुक्त वाणी का आरम्भ करो । फिर हम वैश्वानर अग्नि की कृपा से तेजस्वी होकर दूसरों को भी पवित्र करने में समर्थ हों। अन्न से पुष्ट रहते हुये चिरकाल तक सूर्योदय के दर्शन करें ॥३॥

६३ सूक्त

(ऋषि—द्रुह्वणः । देवता—निऋँति प्रभृति । छन्द—जगती, अनुष्टुप्)

यत् ते देवी निऋँतिराबबध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् ।
यत् ते विष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥१॥
नमोऽस्तुते निऋँते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बंधपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥२॥
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥३॥

संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥४।

हे पुरुष ! अनिष्टकारी निऋ॑तिदेव ने तेरे अंगों में और कण्ठ की नसों में न छूटने वाला पाप रूप फंदा बांध दिया है। मैं तुझे चिरकाल तक जीवित रखने के लिये उस पाप-पाश को दूर करता हूँ। तू उससे छूटा हुआ हमारे द्वारा प्रेरित होने पर इस अन्न का सेवन कर ॥१॥ हे निऋ॑ते ! तू हमारे नमस्कार से प्रसन्न होकर इन लौह-बन्धनों को खोल दे। हे साधक ! उन पापों से मुक्त होने पर यम ने तुझे फिर दे दिया है। उन यम के लिये नमस्कार हो ॥२॥ हे निऋ॑ते ! जब तू लौह-पाश में जकड़ने को पाँवों में बेड़ी डालती है तब ज्वरादि व्याधि उसे बांध लेती हैं। तू अपने अधिष्ठात्री यजमान और पितरों की सहमति से इसे दुःख रहित स्वर्ग को प्राप्त करा ॥३॥ हे काम्यवर्षक अग्ने ! तुम समस्त धनों के प्राप्त कराने वाले हो, अतः हमको धन दो। तुम वेदी पर ददीप्यमान हो ॥४॥

६४ सूक्त

(ऋषि— अथर्वा। देवता—सांमनस्यम्। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥१॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥२॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥३॥

हे समान मन वालो ! तुम्हारे ज्ञान भी समान हों। फिर एक कार्य में जुट जाओ। तुम्हारे अन्तःकरण एक अर्थ को जानने वाले हों। जैसे इन्द्रादि देव एक ही कार्य का ज्ञान रखते हुये हव्यादि ग्रहण करते हैं, उस प्रकार तुम इच्छित फल की प्राप्ति के लिये परस्पर के विद्वेष का

त्याग करो ॥१॥ इन पुरुषों का कार्य-अकार्य सम्बन्धी ज्ञान समान हो, इनका कर्म अन्तःकरण भी समान हो। श्रेष्ठ फल की प्राप्ति के लिये मैं एक करने वाले घृत आदि हव्यों को देता हूं। तुम एकचित्तता को प्राप्त करने वाले होओ ॥२॥ हे समानता चाहने वालो ! तुम्हारा अन्तःकरण और सङ्कल्प एक से ही हों। तुम्हारा मन एक रूप रहे। जिससे सब कार्य सुन्दर रीत से समान हो उसके लिये मैं यह समानात्मक कर्म कर रहा हूँ ॥३॥

६५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा देवता—पराशरः; इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप्)

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि ॥१॥
निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥
इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥३॥

शत्रु का क्रोध शांत हो। उसके आयुध असफल हों। शत्रु की भुजाएँ शस्त्रास्त्र ग्रहण करने में समर्थ न हों। हे इन्द्र ! तुम लौटकर शत्रुओं के मारने वाले हो, इस शत्रु को हराओ और इसके धनों को हमें दे दो ॥१॥ हे देवगण ! तुम शत्रुओं के भुज-बल को क्षीण करने वाले जिस बाण को चलाते हो, उस बाण रूप देवता के निमित्त दी जाने वाली हवि से शत्रु की भुजा को काटता हूं। २॥ पुरातन काल में देवताओं के स्वामी इन्द्र ने राक्षसों को भुज-बल से रहित कर दिया, ऐसे इन्द्र के अनुग्रह से मेरे योद्धागण शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥३॥

६६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान्।

समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ।१॥
आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेद्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥२॥
निर्हस्ताः संतु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिद्र वेदांसि शतशो विभजामहै ॥३॥

हमको सन्तप्त करने वाले शत्रु का हाथ शक्ति-हीन हो। शत्रुओं में हिंसाजनक दुःख देने वाला दुष्ट कुत्सित गति को प्राप्त हो। हे इन्द्र! जो शत्रु सेना सहित हम पर आक्रमण कर रहा है उसे वज्र से संयुक्त करते हुये मार दो ॥१॥ हे शत्रुओ! तुम प्रत्यंचा चढ़ाकर बाण छोड़ते हुओं को इन्द्र अभी नष्ट कर डालें ॥२॥ हमारे शत्रुओं का भुज-बल नष्ट हो, उनके सभी अङ्ग शिथिल हों। हे इन्द्र! तुम्हारी कृपा से इनकी सम्पत्ति को हम परस्पर बाँट लें ॥३॥

६७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्रः। छन्द—अनुष्टुप्)

परिवर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१॥
मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाणइवाहयः ।
तेषां वो अग्निमूढानामिद्रो हंतु वरंवरम् ॥२॥
ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि ।
पराङ्मित्र एषत्ववांची गौरुपेषतु ॥३॥

इन्द्र और पूषा इन शत्रुओं के मार्गों को रोक लें। शत्रु-सेना अत्यन्त मोह में पड़कर कार्य-अकार्य का निर्णय करने में समर्थ न रहे ॥१॥ हे शत्रुओ! फन कट जाने पर सर्प जैसे काट नहीं सकते, केवल तड़पते हैं, वैसे ही तुम ज्ञान शून्य होकर रण-स्थल में व्यर्थ घूमते रहो।

हमारी आहुतियों से प्रसन्न हुये इन्द्र तुम्हारे मुख्य वीरों को नष्ट करदें ॥२॥ हे अभीष्टवर्षक इन्द्र ! सोममणि के लपेटने वाले काले मृग चर्म को हमारे दुपट्टों में बांधो। शत्रुओं में डर उत्पन्न करिये जिससे वह हार कर भाग जायें और उनका गवादि धन हमको मिल जाय ॥३॥

६८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सवित्रादयो मन्त्रोक्ताः।
छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दंतु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१॥
अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उंदंतु वर्चसा।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥२॥
येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥३॥

सर्वप्रेरक सविता मुण्डन करने वाले उस्तरे के साथ आ गये। हे वायो ! तुम भी इस बालक का सिर गीला करने के लिये उष्ण जल सहित आओ। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और आठ वसु समान ज्ञान सहित जल से इसका सिर भिगोवें। हे मनुष्यो ! वरुण और सोम से सम्बन्धि. उस्तरे से इसके भीगे हुये बालों को उतार दो ॥१॥ अदिति इस पुरुष के दाढ़ी-मूंछों को पृथक् करें, जल इसके बालों को भिगोवें, प्रजापति सृष्टा इसकी चिकित्सा करें जिससे यह चक्षुशक्ति और दीर्घायु वाला हो ॥२॥ सोम और वरुण से सम्बन्धित जिस उस्तरे से सविता ने मुण्डन किया है। हे विप्रो ! वैसे उस्तरे से इसके दाढ़ी, मूंछ बालों का मुण्डन करो। यह पुरुष इस संस्कार द्वारा गाय, अश्व, पुत्र-पौत्रादियुक्त हो जाय ॥३॥

६९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—बृहस्पतिः, अश्विनौ। छन्द—अनुष्टुप्)

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः।

सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥१॥
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥२॥
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥३॥

रथ पर बैठकर शत्रुओं के सामने जाने वाले रथियों को जय घोषों से जो यश मिलता है, हिमवान् आदि पर्वत में जो यश है और सुवर्ण में तथा गौओं में क्षीरदान का जो यश है, वह यश मुझे मिले । बहने वाली पर्जन्य धारा, अन्न और मधुर यश में जो रस है, मैं उस यश में स्थित होऊँ ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम मुझे मक्षिकाओं द्वारा एकत्र किये जाते मधु से सम्पन्न करो, जिससे मेरी वाणी मधुर और दीप्तिमती हो जाय ॥२॥ अन्न और यज्ञ का फल रूप क्षीर आदि में जो यश है तथा मुझमें जो तेज है, उसे प्रजापति अन्तरिक्ष में ज्योतिमण्डल को दृढ़ करने के समान, मुझ में दृढ़ करें ॥३॥

७० सूक्त

(ऋषि—काङ्कायनः । देवता—अघ्न्या । छन्द—जगती)

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥१॥
यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥२॥
यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से निहन्यताम् ॥३॥

जैसे सुरा शराबी को प्रिय होती है, मांस उसके खाने वाले को प्रिय होता है, जैसे जुए वाले को पासे प्रिय होते हैं और वीर्य सेचन की इच्छा वाले पुरुष को स्त्री प्रिय होती है, वैसे ही हे अवध्य गाय ! तुझे बछड़ा प्रिय हो ॥१॥ जैसे हथिनी के पांव के साथ अपना पैर मिलने से हाथी प्रसन्न होता है, जैसे सन्तानदाता पुरुष स्त्री से प्रसन्न होता है, वैसे ही हे अवध्य गाय ! तू बछड़े से प्रसन्न रह ॥२॥ जैसे रथ में चक्र की धुरी दृढ़ता से बंधी रहती है, वैसे ही हे धेनु ! तू बछड़े से बंधी रह। जैसे कामी का मन स्त्री में रमा रहता है, वैसे ही तेरा मन बछड़े में रमा रहे ॥३॥

७१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्निः, विश्वेदेवाः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥१॥
यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२॥
यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥३॥

मैंने अनेक प्रकार के अन्न को उदरस्थ कर लिया है और सुवर्ण आदि प्रतिग्रह किया है। यज्ञ सम्पादक अग्नि अन्नदोष और प्रतिग्रह दोष से मुझे बचावें ॥१॥ यज्ञ से संस्कृत, असंस्कृत जो द्रव्य प्रतिग्रह द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है, पितर और देवताओं द्वारा दिया हुआ प्रतिग्रह द्रव्य मुझे मिला है, यज्ञ सम्पादक अग्नि उस प्रतिग्रह दोष से मुझे बचावें ॥२॥ हे देवताओ ! जिस मिथ्या भक्षण द्वारा मैं दूसरे का अन्न भाग खा गया हूं और ऋण लेकर न दे सका हूं उसके दोष से बचाते हुये वैश्वानर अग्नि उसे मेरे लिये मधुर और सुखदायक बना दें ॥३॥

७२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः । देवता—शेपोऽर्कः । छन्द—जगती, अनुष्टुप्)

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसामर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥१॥
यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् वर्धतां पसः ॥२॥
यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥३॥

जैसे यह बंधा हुआ पुरुष आसुरी माया से रूपों को दिखाता हुआ फैलता है, वैसे ही यह अर्कमणि तेरे प्रजनन अङ्ग को संतानोत्पत्ति के योग्य बनावे ॥१॥ जैसा संतानोत्पत्ति के लिये उपयुक्त शरीरांग होता है, वैसा ही तेरा शरीरांग भी पूर्ण पुरुष के शरीरांग की तरह कार्यक्षम हो ॥२॥ जैसे सुदृढ़ अंग वाले पुरुष का अंग प्रजा के उत्पादन में समर्थ होता है वैसा ही तेरा अंग भी हो ॥३॥ (सृष्टि के संचालन के लिये जिस प्रकार सुदृढ़ वीर्यवान होने की आवश्यकता है, उसी के योग्य बनने का प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है जिससे भावी संतान स्वस्थ और सबल हो ।)

७३ सूक्त (आठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वरुणादयो: मंत्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप्)

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेतुः समनसः सजाताः ॥१॥
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२॥
इहैव स्त माप यातांध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३॥

वरुण, सोम, अग्नि सामनस्य कर्म के निमित्त यहाँ आवें। सभी

देवताओं के स्वामी वृहस्पति अष्टावसुओं सहित आवें। हे समान जन्म वालो ! तुम समान मन वाले होकर इस यजमान के लिए उपजीवी बनो ॥१॥ हे बाँधवों ! तुम में जो वल और तुम्हारे हृदय में जो संकल्प हैं उन सबको मैं हव्य-घृत से मिलाता हूं। मुझ सांमनस्य (एक विचार) के इच्छुक के लिए तुम अनुकूल होओ ॥२॥ हे बाँधवों ! तुम मुझसे स्नेह करो, पृथक् न होओ। मेरे प्रतिकूल चलने पर पूषा देवता तुम्हें रोकें और घर के पालक देवता मेरे निमित्त तुम्हें आहूत करें ॥३॥

७४ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–ब्रह्मणस्पत्यादयो मंत्रोक्ता:। छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

सं वः पृच्यन्तां तन्वः संमनांसि समु व्रता।
सं वोऽय ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१॥
सज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥२॥
यथादित्या वसुभिः सबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः।
एवा त्रिणामन्नहृणीयामान इमाञ्जनान्त्संमनसस्कृधीह ।३।

हे सांमनस्य के इच्छको ! तुम्हारे शरीर और मन परस्पर स्नेह में बंधें, तुम्हारे कर्म भी अनुराग से युक्त हों। भग और ब्रह्मणस्पति देव हमारे निमित्त तुम्हारा बार-बार आह्वान करें ॥१॥ एक मन वाले मनुष्यो ! तुम्हारी मन की इन्द्रिय जिस कर्म से ज्ञानोत्पादिनी हो मैं वह कर्म करता हूं। मैं तुम्हारे हृदय को भी समान ज्ञानोत्पादक बनाता हूँ। मैं भग देवता के लिए किए गए तप से तुम्हें समान ज्ञानी बनाये देता हूँ ॥२॥ अदिति के पुत्र मित्रा-वरुण जैसे अष्टावसुओं के साथ समान ज्ञानी हुए और रुद्र अपने प्रचंड रूप को त्याग कर मरुद्गण के साथ समान ज्ञान वाले हुए, हे अग्ने ! तुम भी क्रोध त्याग कर इन मनुष्यों को परस्पर समान मन वाला करिये ॥३॥

७५ सूक्त

(ऋषि – कबन्ध: (सपत्नक्षयकाम:)। देवता—इन्द्र:। छन्द – अनुष्टुप् जगती)

नरमुं नुद ओकस: सपत्नो य: पृतन्यति।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ॥१॥
परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्य: समाभ्य: ॥२॥
एतु तिस्र: परावत एतु पञ्च जनाँ अति।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो व पुनरायति शश्वतीभ्य: समाभ्यो यावत सूर्यो असद् दिवि ॥३॥

हमको पीड़ित करने के लिए सेना एकत्र करने वाले शत्रु को मन्त्र शक्ति से हम गिराते हैं। शत्रु-दमनार्थ प्रेरित हवियों से प्रसन्न हुए इन्द्र इस शत्रु को ऐसा मारें कि वह यहाँ फिर कभी न आवे ॥१॥ वृत्र नाशक इन्द्र उस शत्रु को सैकड़ों वर्षों तक लौट कर न आने के अभिप्राय से दूर भेज दें ॥२॥ इन्द्र द्वारा ताड़ित शत्रु तीनों भूमियों और निषाद आदि पाँच जनों के भी पार चला जाय। वह वहाँ पहुँचे जहाँ सूर्य और अग्नि का प्रकाश न हो। वह तब तक यहाँ न लौटे जब तक द्युलोक में सूर्य वर्तमान रहें ॥३॥

७६ सूक्त

(ऋषि–कबन्ध:। देवता–सान्तपनाग्नि। छन्द–अनुष्टुप्)

य एनं परिपीदन्ति समादधति चक्षसे।
संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥१॥
अग्ने: सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे।
अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यत: ॥२॥
यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम्।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥३॥

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छत ।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णात्यायुषे ॥४॥

जो राक्षस आदि इस पुरुष की हिंसा के लिये चारों ओर बैठे हैं, उन्हें भस्म करने के लिये प्रचंड अग्नि अपनी ज्वाला रूप जिह्वाओं सहित प्रकट हों ॥१॥ जिस अग्नि के धूम को अद्धाति ऋषि अपने मुख में से निकलता देख चुके है, उस अग्नि के वाचक शब्द को मैं आरम्भ करता हूं ॥२॥ क्षत्रिय पुरुष द्वारा रखी हुई अग्नि की संदीपनी आहुति को जानने वाला पुरुष हाथी, सिंह आदि से भरे मृत्यु के कारण रूप स्थान में नहीं जाता ॥३ । जो क्षत्रिय चिरजीवन की इच्छा से अग्नि के स्तोत्र का उच्चारण करता है, उसे शत्रु मारने में समर्थ नहीं होते ॥४॥

७७ सूक्त

(ऋषि—कबन्धः । देवता—जातवेदः । छन्द—अनुष्टुप्)

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥१॥
य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥२॥
जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥३॥

ईश्वर की आज्ञा से जैसे द्यो और पृथिवी अपने-अपने स्थान पर स्थिर हैं और द्यावा-पृथिवी के मध्य में सब संसार अपने-अपने स्थान पर स्थापित हैं, वैसे ही हे नारी ! जिस खम्भे के आधार पर यह घर टिका है, उससे तुझे बांधता हूं । सवार द्वारा घोड़े को रस्सी से बांधने के समान तू कर्म बन्धन में स्थित रह ॥१॥ पीछे गमन में व्याप्त, नीचे छिपकर चलने में व्याप्त, भागते हुओं की गति रोकने में व्याप्त, ऐसे देवता को मैं आहूत करता हूं ॥२॥ हे अग्ने ! भागने के स्वभाव वाली इस स्त्री के स्वभाव को बदलिये । इसे लौटाने के उपाय इस समय काम

पावें . अग्ने सभी आत्मों सहित उसे हमारे सामने लाइये ।।३।।

७८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—चन्द्रमा, त्वष्टा । छन्द—अनुष्टुप्)

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ।।१।।
अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ।।२।।
त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुष्कृणोतु वाम् ।।३।।

इस पति के विवाह निमित्त जिस स्त्री को माता-पिता पास लाये हैं, उसे यह अग्निदेव दधि, मधु, घृत से बढ़ावें । यह पति प्रसिद्ध हवि द्वारा प्रजा, पशु आदि से सम्पन्न हो ।।१। इन पति-पत्नी के घर दुग्धादि से सम्पन्न रहे । इनका राज्य वृद्धि पर रहे । बहुत से धन से यह परिपूर्ण रहें ।।२।। त्वष्टा ने इस स्त्री को उत्पन्न किया है । हे वर ! तुझे इस स्त्री के पति रूप में भी त्वष्टा ने ही बनाया है । अतः हे पति-पत्नी, त्वष्टा तुम्हें सहस्रायु करें ।।३।।

७९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—संस्फानम् । छन्द—गायत्री)

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु ।
असमातिं गृहेषु नः ।।१।।
त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय ।
आ पुष्टमेत्वा वसु ।।२।।
देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे ।
तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ।।३।।

यह अग्नि हवि पहुँचाने से आकाश के पालक हैं। वे अग्नि हमको धन-धान्य से बढ़ावें हमारे घर में सब सामग्री अगणित हों ॥१॥ हे अन्तरिक्ष-पालक वायो ! तुम हमारे घर में बलदायक अन्न स्थापित करो। प्रजा, पशु तथा हर प्रकार का धन मुझे प्राप्त हो ॥२॥ हे आदित्य ! तुम प्रजाओं का पोषण करने वाले एवं धनों के स्वामी हो। हम तुम्हारे अनुग्रह से धन के भागी हों ॥३॥

८० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—चन्द्रमाः। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥१॥
ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवाइव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥२॥
अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥३॥

कौआ, कबूतर आदि अन्तरिक्ष से पुरुष के शरीर पर गिरता है, उसका दोष शान्त करने को हम स्वर्गस्थ श्वान के तेज से तुम्हारी पूजा करते हैं ॥१॥ कालकंज नामक तीन असुर उत्तम कर्मों के कारण स्वर्ग में देवताओं के समान रहे हैं। मैं काक, कपोत के उपघात की दोष शान्ति के लिये इस पुरुष की रक्षार्थ उन कालकंज को आहूत करता हूँ ॥२॥ हे अग्ने ! विद्युत रूप से जल में तुम्हारी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है. आदित्य रूप से द्युलोक में तुम्हारा स्थान है और समुद्र तथा पृथिवी में भी तुम महिमावान् हो। दिव्य श्वान के तेज रूप हवि से हम तुम्हें पूजते हैं ॥३॥

८१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—आदित्यः। छन्द—अनुष्टुप्)

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि ।

प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥१॥
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥२॥
यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ॥३॥

हे अग्ने ! तुम गर्भ को नष्ट करने वाली व्याधि को वश करने में समर्थ हो । तुम अपने हाथ फैलाकर गर्भ घातक राक्षसों का संहार करते हो । वे अग्नि पुत्र, पौत्रादि और उनके भोग के निमित्त रक्षक होते हैं ॥१। हे कंकण ! तुम गर्भ स्थापनार्थ गर्भाशय को विस्तृत करो । हे स्त्री ! तू अपने गर्भाशय में पुत्र को स्थापित कर ॥२॥ पुत्र की इच्छा से जिस कंकणादि को देवमाता अदिति ने धारण किया था, उसे इस स्त्री के त्वष्टा बाँधें । यह स्त्री पुत्र को उत्पन्न करने में समर्थ हो ॥३॥

८२ सूक्त

(ऋषि—भगः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप्)

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥१॥
येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥२॥
यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥३॥

अपने पास आये हुये इन्द्र की प्रसन्नता के लिये वृत्र संहारक आदि नामों को कहता हूँ और विवाह की कामना वाला मैं शतकर्मा इन्द्र से इच्छित फल माँगता हूँ ॥१॥ मुझे विवाह की इच्छा वाले पुरुष को भग देवता ने उपदेश दिया कि अश्विनीकुमारों ने जिस मार्ग से सूर्या सावित्री

नामक स्त्री को बिवाह द्वारा पाया था, उसी मार्ग से तू स्त्री को प्राप्त कर ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा धन के कारण करने वाला जो हाथ है, उसके द्वारा, मुझ पुत्राभिलाषी को पत्नी दो ॥३॥

८३ सूक्त (नौवाँ अनुवाक)

(ऋषि—भग: । देवता—सूर्योदय: । छन्द—अनुष्टुप्)

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥१॥
एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥२॥
असूतिका रामयण्यपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥३॥
वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥४॥

हे गण्डमालाओ ! इस देह से पृथक् होओ । जैसे उड़ने में चतुर बाज अपने घोंसले से शीघ्र निकलता है, वैसे ही तुम शीघ्र भागो । आदित्य तुम्हारी चिकित्सा करें और चन्द्रमा तुम्हें दूर भगायें ॥१॥ गण्डमालायें रक्त, श्वेत वर्ण मिश्रित, परम शुभ्र, कृष्णवर्ण तथा लाल वर्ण वाली होती हैं । हे गण्डमालाओ ! तुम वात, पित्त, श्लेष्म के भेद से अनेक नाम और वर्ण वाली होती हो । मैं तुम्हारे सुन्दर नामों का उच्चारण कर रहा हूं, इससे प्रसन्न होकर इस वीर को पीड़ित न करती हुई चली जाओ ॥२॥ असूतिका, रामायणी, अपचित् मंत्र सामर्थ्य से दूर होंगी तब पीड़ा भी नष्ट हो जायगी ॥३-४॥

८४ सूक्त

(ऋषि—भग: । देवता—निर्ऋति । छन्द - जगती, बृहती, त्रिष्टुप्)

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।

भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥१॥

भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥२॥
एवो ष्वस्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥
अयस्मये द्रुपदे वेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

हे व्रणाभिमानी देव ! तुम अपनी आहुति को मन से सेवन करो । यह आहुति स्वीकार हो । व्रण प्रक्षालनार्थ यह औषधि रूप जल रोगों को शांत करता है ॥१॥ हे व्रणाभिमानी देव ! यद्यपि साधारण ज्ञान वाले तुम्हें फैलाने वाला मानते हैं परन्तु मैं तुम्हारे रूप को जानता हुआ तुम्हें पाप का देवता समझता हूँ । हमारी हवि को ग्रहण कर गवादि को रोग-मुक्त करो ॥२॥ हे पाप देवी ! तू हमें पीड़ित न कर और रोग-पाशों को काट दे । प्राणापहारक विवस्वान् के पुत्र यम तुझे हे रोगी ! मुझे फिर लौटा रहे हैं । उन यमदेव को मेरा नमस्कार हो ॥३॥ हे निर्ऋते ! जब तू पुरुष को बेड़ी में जकड़ती है तब वह ज्वरादि सैकड़ों बंधनों से बँधा होता है । तू अपने अधिष्ठात्री पाप देवता यम और पितरों सहित दुःख रहित स्वर्ग में इस पुरुष को स्थान प्राप्त करा ॥४॥

८५ सूक्त

(ऋषि अथर्वा (यक्ष्मनाशनकामः) । देवता—वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥१॥
इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥२॥
यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।

एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥३॥

यह वरण वृक्ष की मणि राजयक्ष्मादि रोगों को भगावे । इस पुरुष में जो क्षय रोग है उसका इन्द्रादि देवता नाश करें ॥१॥ हे रोगी, हम मणि बाँधने वाले तेरे क्षय रोग को इन्द्र, मित्रावरुण तथा अन्य देवताओं के आज्ञा वचनों से दूर करते हैं ॥२॥ जैसे त्वष्टा के पुत्र वृत्र ने संसार के पालक मेघों के जलों को रोक दिया था, वैसे ही मैं तेरे यक्ष्मा को अग्नि द्वारा रोकता हूं ॥३॥

८६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (वृषकाम:) । देवता—एकवृष: । छन्द—अनुष्टुप्)

वृषेन्द्रस्य वृष: दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥१॥
समुद्र ईशे स्रवतामग्नि: पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥२॥
सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् ।
देवानामर्धं भागसि त्वमेकवृषो भव ॥३॥

श्रेष्ठता की कामना वाला यह पुरुष इन्द्र के अनुग्रह से तृप्त करने वाला हो । यह आकाश, पृथिवी और समस्त प्राणियों को तृप्त करने में समर्थ हो । हे श्रेष्ठताभिलाषी पुरुष ! तू सब जीवों में श्रेष्ठ हो ॥१॥ जलों में समुद्र श्रेष्ठ है, पृथिवी के स्वामी अग्नि हैं, नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हैं । जैसे यह सब श्रेष्ठ हैं, वैसे ही तू श्रेष्ठ हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम देव विरोधी दानवों में श्रेष्ठ हो और देवताओं में अर्द्ध भाग हो । इन इन्द्र की कृपा से श्रेष्ठता की कामना वाले पुरुष ! तू भी श्रेष्ठ हो ॥३॥

८७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—ध्रुव: । छन्द—अनुष्टुप्)

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत् ।
इन्द्रेहैव ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय ॥२॥
इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

हे राजन् ! तुम हमारे स्वामी बनो । मैं तुम्हें राज्य में ले आया हूं । पृथिवी की सब प्रजा तुम्हें अपना स्वामी मानें । १॥ तुम इसी राज सिंहासन पर आरूढ़ रहो । तुम पवत के समान दृढ़ एवं स्थिर रहते हुए, अपने इस राज्य को सँभालो ॥२॥ हमारी हवि से प्रसन्न हुये इन्द्र ने इस राजा को स्थिर रूप से स्थिर किया है । सोम इसे अपना मानें और ब्रह्मणस्पति भी इसे अपना कहें ॥३॥

८८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—ध्रुवः । छन्द—अनुष्टुप्)

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥१॥
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्र आग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥२॥
ध्रुवोऽच्युतः प्रमृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिशः समनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥३॥

स्वर्ग, पृथिवी और द्यावा-पृथिवी के मध्य सम्पूर्ण विश्व जिस प्रकार स्थिर है उसी प्रकार यह राजा पर्वत के समान स्थिर हो ॥१॥ हे राजन् ! वरुण, देवमन्त्री बृहस्पति, इन्द्र और अग्नि देवता तुम्हारे राज्य को स्थिर करें ॥२॥ हे राजन् ! तुम इस राज में स्थिर रहते हुए शत्रुओं का मर्दन करते रहो । शत्रु-भाव रखने वालों की अधिगति करो । सब दिशाएं शत्रु-रहित होने पर तुम्हारे अनुकूल हों । तुम यहां निश्चल रहते हुये युद्ध-क्षेत्र में कभी भी पीठ न दिखाओ ॥३॥

८६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—अनुष्टुप्)

इदं यत् प्रेण्यः शिरोदत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दि ते शोचयामसि ॥१॥
शोचयामसि ते हार्दि शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूमइव सध्यङ् मामेवान्वेतु ते मनः ॥२॥
मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥३॥

इस प्रेम-प्रापक शिर को सोम ने प्रदान किया है, इसके द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रेम से हम तेरे अन्तःकरण को पीड़ित करते हैं ॥१॥ हे पति-पत्नी हम तुम्हारे हृदय को परस्पर अनुरक्त करते हैं । तुममें से एक के अन्तःकरण में सन्ताप उत्पन्न करते हैं जिससे तेरा मन अपने जीवन-साथी के अनुकूल हो ॥२॥ हे स्त्री ! मित्रावरुण तुझे मुझमें मिलावें, सरस्वती तुझे मुझ में मिलावें । सब प्राणी तुझे मुझ में अनुरक्त करें । सब प्रदेश तुझे मेरी बनादें ॥३॥

९० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—रुद्रः । छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक)

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥१॥
यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठताः ।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥२॥
नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै ।
नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥३॥

हे रोगिन् ! रुद्र ने जिस शूल-रोग रूप बाण को तेरे ऊपर फेंका था, उस बाण को हम उखाड़ते हैं ॥१॥ हे शूल रोगी पुरुष । तेरे हाथ

पाँवों में जो सौ नाड़ियाँ स्थित हैं उनमें शूल-नाशिनी औषधियों को स्थापित करते हैं ।।२।। हे रोग-रूप बाण फेंक कर रुलाने वाले रुद्र ! तुम्हें नमस्कार ! तुम्हारे धनुष पर चढ़े बाण को तथा छोड़े हुये बाण को नमस्कार । छूट कर लक्ष्य पर गिरने वाले बाण को भी हम नमस्कार करते हैं ।।३।।

६१ सूक्त

(ऋषि-भृग्वङ्गिराः । देवता-यक्ष्मनाशनम्, आपः । छन्द-अनुष्टुप्)

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः ।
तेना ते तन्वो रपोऽपाचीनमप व्यये ।।१।।
न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ।२।
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।।३।।

यह जो औषधि में प्रयुक्त करने के लिये आठ बैल या छै बैल वाले हल द्वारा जोत कर उत्पन्न किए हैं । इन यवों से तेरे रोग के कारण पाप को नीचे से निकालता हूं ।।१।। जैसे सूर्य नीचे तपते हैं, वायु नीचे चलते हैं, गौ नीचा मुख करके दुहाती है, वैसे ही हे रोगी, तेरा पाप भी अधोमुखी हो ।।२।। औषधियाँ जल की विकार रूप हैं अतः जल ही रोग नाश के लिए सर्वोत्तम औषधि हैं । यह जल सब संसार की औषधि रूप हैं, वे ही तेरा रोग निवारण करें ।।३ ।

६२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वाजी । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ।।१।।
जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ।।२।।

तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्तो वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवोव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥३॥

हे अश्व ! तू रथ में जुड़ कर वायु-वेग वाला हो । तू इन्द्र की प्रेरणा से गन्तव्य स्थान पर मन की गति से पहुँच । उनन्चास मरुद्गण तुझसे युक्त हों और त्वष्टा तेरे पाँवों को गति प्रदान करें ॥१॥ हे अश्व ! तेरा जो वेग असाधारण स्थान में, बाज और वायु में रखा है, उससे बलवान होता हुआ तू युद्ध में पार लगाने वाला हो ॥२॥ हे अश्व ! तू वेगवान है । तेरी यष्टि सवार को रण क्षेत्र में लाकर विजय प्राप्त करावे और तुझे घाव आदि से बचाती हुई द्रुत वेग वाली हो । तू ग्राम, नगर आदि की प्राप्ति के लिए सरल गति से चल और अपने निवास स्थान को प्राप्त हो ॥३॥

९३ सूक्त (दसवाँ अनुवाक)

(ऋषि—शन्तातिः । देवता—यमादयो: मंत्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप्,)

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥१॥
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयंतु ॥२॥
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधद्विश्वेदेवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥३॥

पाप के अनुसार दण्ड देने वाले जो यम, मारने वाली मृत्यु, अघमार, पिंगल वर्ण वाली शर्व, क्षेप्ता और नील शिखण्ड देवता पापियों को नष्ट करने के लिए विचरण करते हैं, वे हमारे पुत्र पौत्रादि को पीड़ित न करें ॥१॥ संकल्प द्वारा घृतादियुक्त यज्ञों द्वारा मैं शर्व, अस्त्र और इनके स्वामी रुद्र और पूर्व मन्त्रोक्त नमस्कार-योग्यों को नमन करता हूँ । वे प्रसन्न होकर जिन कृत्याओं में पाप ही मारक है, उन्हें दूर कहीं पहुंचावें ।।२।। हे मरुद्गण और विश्वे देवताओ ! [illegible]

युक्त कृत्याओं और उनके मारक साधनों से हमारी रक्षा करो। वरुण, मित्र, अग्नि और सोम हमारी रक्षा करें। वायु और पर्जन्य हम पर अनुग्रह बुद्धि रखें ॥३॥

९४ सूक्त

(ऋषि–अथर्वाङ्गिरा। देवता–सरस्वती। छन्द–अनुष्टुप् जगती)

स वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि।
अमी ते विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥१॥
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि यातामनुवर्त्मान एत ।२॥
ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ मे इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वती ॥३॥

हे परस्पर विरोधी विचार वाले मनुष्यो! मैं तुम्हारे मनों को विरुद्धता से हीन करता हूँ। तुम्हारे विचारों को विरोधभाव से दूर करता हूँ! तुम्हारे विरुद्ध कर्मों को हटा कर तुम्हें परस्पर अनुकूल करता हूँ ॥१॥ हे विरुद्ध मन वालो! तुम्हारे मनों को मैं अपने मन के अनुकूल करता हूँ। तुम अनुकूल चित्तों सहित यहाँ आओ। मेरे कार्यों में मन लगाते हुए तुम मेरे मार्ग पर चलो ॥२॥ द्यावा-पृथिवी मेरे सामने रहती हुई सम्बन्धित हैं। उनके मध्य में सरस्वती भी वर्तमान हैं। इच्छित फल के निमित्त इन्द्र और अग्नि भी कार्य-रत हैं। हम इनकी कृपा से समृद्धि को प्राप्त हों ॥३॥

९५ सूक्त

(ऋषि—भृग्वंगिराः। देवता—वनस्पतिः (कुष्ठः)। छन्द—अनुष्टुप्,)

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥१॥
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥२॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मो अगदं कृधि ॥३॥

यहाँ से तृतीय द्युलोक देवताओं के बैठने का अश्वत्थ है वहाँ देवगण ने अमृत का वर्णन करने वाले कूट का ज्ञान प्राप्त किया था ॥१॥ स्वर्ग में स्वर्ण-बन्धन वाली नौका चलती है, उसके द्वारा अमृत के पुष्प कूट को उन देवताओं ने पाया ॥२॥ हे अग्ने ! जिन ओषधियों में पाक है उन सब में तुम गर्भ रूप स्थित हो, तुम हिमवान् पर्वतों में और शीतल ओषधियों में गर्भ रूप से निवास करते हो । तुम मेरे इस पुरुष को रोग से मुक्त करो ॥३॥

९६ सूक्त

(ऋषि – भृग्वंगिरा । देवता–वनस्पतिः, सोमः । छन्द–अनुष्टुप् गायत्री)

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
बृहस्पति प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्या दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२॥
यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥३॥

जो ओषधि अनेक प्रकार की है जिनमें मुख्य सोम है, जो रस वीर्य विपाक से सम्पन्न हैं, बृहस्पति द्वारा जो अनेक रोगों में प्रयुक्त हुई हैं वे ओषधियाँ हमें रोग-मूल पाप से छुड़ावें ॥१॥ जल रूप ओषधि मुझे शाप से पृथक् रखें । मिथ्या भाषण के पाप से और पाप बन्धन से तथा अन्य सभी देव-सम्बन्धी पापों से मेरी रक्षा करने वाली हों ॥२॥ हमने जागते हुए इन्द्रियादि के व्यवहार से या मन से संकल्प-विकल्प द्वारा जिस पाप को किया है, वाणी और कर्म से जिस पाप को किया है अथवा केवल मन से ही जिस पाप को किया है, हमारे इन पापों से सोम देवता पितरों के लिए दी गई हवि द्वारा हमको पवित्र करें ॥३॥

६७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—देव:, मित्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभू: सोमो अभिभूरिन्द्र:।
अभ्यहं विश्वा: पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हवि: ॥१॥
स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम्।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचै: कृतं चिदेन: प्रमुमुक्तमस्मत् ॥२॥
इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥३॥

हम विजयाभिलाषी हैं। हमारे द्वारा किया जाने वाला यज्ञ शत्रुओं को दबावे। यज्ञ सम्पादक अग्नि और सोम शत्रुओं को तिरस्कृत करें। मैं विजय की आकांक्षा वाला समस्त शत्रु सेना को जीत सकूं इसीलिये हव्य प्रदान करता हूं ॥१॥ हे मित्रावरुण! यह हवि तुम्हें तृप्त करें। तुम दोनों प्रजाओं से सम्पन्न शक्ति से इस राजा को पूर्ण करो। पाप की कारण निर्ऋति को हमारे सामने से भगाओ। शत्रुओं के पराजय रूप जो पाप हैं, वह हमको न लगें ॥२॥ हे सैनिको! इस पराक्रमी राजा के पीछे तुम भी वीरता से भर उठो। इस ऐश्वर्यवन्त, शत्रु विजेता, शत्रुओं के गवादि धन को जीतने वाले, बाण फेंकने में अभ्यस्त राजा के अनुगत रहते हुए संग्राम के निमित्त तैयार होओ ॥३॥

६८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्र:। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति:)

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥
त्वमिन्द्राधिराज: श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम्।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥२॥
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोसि।

यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥ ३॥

इस संग्राम में आये हुए इन्द्र के समान पराक्रमी राजा, इस राजा की सहायता के लिये आये हैं उनकी जीत हो। हे इन्द्र ! हम वीर कर्म वाले स्तुति के पात्र हों, अतः तुम इस संग्राम में हमारे द्वारा सेवनीय होओ ॥१॥ हे इन्द्र के समान सम्पन्न राजन् ! तुम अन्य राजाओं से बढते हुए अधिक अन्न वाले होओ। हे इन्द्र ! तुम अपनी महिमा से सब शत्रुओं को तिरस्कृत करने में समर्थ हो। हे राजन् ! तुम अपनी प्रजाओं के अधिपति होते हुए चिरकाल तक जीवित रहो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्व उत्तर आदि सब दिशाओं के स्वामी हो। तुम हमारे शत्रुओं को मार डालते हो। सम्पूर्ण पृथिवी तुम्हारे अधिकार में है। तुम अभीष्टों के वर्षक हो इसलिये इस युद्ध को जीतने में हमारे सहायक बनो ॥३॥

९९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्रः, प्रभृति। छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

अभित्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥१॥
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥२॥
परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः।
देव सावतः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥३॥

हे इन्द्र ! विस्तृत शरीर वाले होने के कारण तथा एक बार ही सब धनों से पूर्ण होने के कारण, युद्ध में पराजय से पूर्व ही तुम्हें आहूत करता हूँ। तुम अत्यन्त बली विजय के साधनों के ज्ञाता, बहुत से नाम वाले और शूरवीर हो ॥१॥ शत्रुओं की सेना के शस्त्र हमें मारने को प्रस्तुत हैं। अतः हम अपने चारों ओर इन्द्र की भुजाओं को रक्षार्थ धारण करते हैं ॥२॥ वे इन्द्र हमारी रक्षा करें, जिनकी भुजाओं को

हम अपने चारों ओर धारण करते हैं। हे सविता देव ! हे सोम ! हमको श्रेष्ठ मन वाला करो जिससे हम युद्ध में विजय प्राप्त कर सकें ॥३॥

१०० सूक्त

(ऋषि— गरुत्मान् । देवता— वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥१॥
यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।
तेन देव प्रसूतेनेदं दूहयता विषम् ॥२॥
असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ॥३॥

सब के प्रेरक सूर्य हमको स्थावर जगम का विष दूर करने वाला पदार्थ दें। इन्द्र आदि समस्त देव, आकाश और पृथिवी हमको विष-नष्ट करने वाला पदार्थ दें। इडा, सरस्वती और भारती भी हमको ऐसी ओषधि प्रदान करें ॥१॥ हे देवगण ! तुम्हारी बाम्बी मिट्टी को बनाने वाली उपजीकाओं ने जल से रहित सूखे स्थान में जल सींचा है। उस जल से इस विष को दूर हटाओ ॥२॥ हे बाम्बी की मिट्टी. तू देव-द्वेषी असुरों की पुत्री और देवताओं की भी भगिनी है। अन्तरिक्ष और पृथिवी मे उत्पन्न हुई तू स्थावर और जंगम जीवों के विष को निर्वीर्य बना दे ॥३॥

१०१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः । देवता—ब्रह्मणस्पतिः छन्द—अनुष्टुप्)

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥१॥
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२॥
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।

क्रमस्वशेइव रोहितमनवग्लायता सदा ॥३॥

हे पुरुष ! तू सेंचन-समर्थ बैल के समान कर्म वाला हो। तू दृढ प्राण युक्त और विस्तीर्ण अङ्ग वाला हो तेरा प्रजनन अंग पुष्ट हों और तुझे उपयुक्त पत्नी की प्राप्ति हो ॥१॥ जिस जीवन-रस से युक्त पुरुष को वीर्ययुक्त कहते हैं उस रस से रोगी पुरुष को पोषित करते हैं। हे ब्रह्मणस्पते ! उस रस से ही इस पुरुष का अंग पुष्ट और सामर्थ्य युक्त हो ॥२॥ हे वीर्य की कामना वाले पुरुष ! मैं तुझे मन्त्र शक्ति से धनुष पर तनी प्रत्यन्चा के समान पुष्ट करता हूँ। अतः तू सेंचन-समर्थ बैल के समान प्रसन्न मन से अपनी पत्नी के समीप जा।३॥

१०२ सूक्त

(ऋषि—जमदग्निः (अभिसंमनस्कामः)। देवता-अश्विनौ। छन्द-अनुष्टुप्)

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥१॥
आहं खिदामि ते मनो राजश्वः पृष्ट्यामिव।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥
आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३॥

हे अश्वियो ! जैसे सीखा हुआ घोड़ा अपने चालक की इच्छा पर चलता और उसका अनुगत रहता है, वैसे ही मेरी स्त्री का मन मेरी ओर झुके और मेरे ही अधीन रहे ॥१॥ हे नारे ! तेरे मन को अपनी ओर आकर्षित करता हूं। जैसे अश्व-स्वामी खूटे में बंधी रस्सी को खोलकर अपनी ओर खेंचता है, जैसे वायु द्वारा उखाड़ा हुआ तिनका वायु में चक्कर काटता है, वैसे ही तेरा मन मुझ में रमता रहे ॥ २ ॥ त्रिकुकुत पर्वत में उत्पन्न नीलांजन मधूक, कूट और खस आदि के उबटने से, हे नारी ! मैं तेरे शरीर पर उबटन करता हूँ।३॥

१०३ सूक्त (ग्यारहवाँ अनुवाक)

(ऋषि-उच्छोचनः। देवता—बृहस्पत्यादयो मंत्रोक्ताः। छन्द—अनुष्टुप्)

सदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥१॥
सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान्।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥२॥
अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥३॥

हे शत्रु की सेनाओ ! बृहस्पति, सविता देव, अर्यमा, भग और अश्विनीकुमार तुम्हें इन फेंके हुए बन्धनों में डालें ॥१॥ मैं दूर या पास की शत्रु-सेना को पाशों में जकड़ता हूँ। मैं श्रेष्ठ या निकृष्ट एवं मध्यवर्तिनी सेना को भी पाशों में जकड़ता हूँ। हे इन्द्र ! इन सेनापतियों को पृथक् करो। हे अग्ने ! उन शत्रुओं को बंधनों में डालो ॥२॥ इन दल बाँध कर आते शत्रुओं को इन्द्र दूर हटावें। यह ध्वजा उड़ाते हुये युद्ध के लिये आते हुये दूर से ही दिखाई पड़ते हैं। हे अग्ने ! तुम इन्हें जकड़कर बाँध लो ॥३॥

१०४ सूक्त

(ऋषि-प्रशोचनः। देवता—इन्द्राग्नी; सोमः; इन्द्रश्च। छन्द—अनुष्टुप्)

आदानेन सदानेनामित्राना द्यामसि।
अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदम् ॥१॥
इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम्।
अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् ॥२॥
ऐनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ।
इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः ॥३॥

हम इन शत्रुओं को आदान और संदान नामक पाशों में जकड़ते हैं; मैं इनकी प्राणापान वायु को जीवन से पृथक् करता हूँ ॥१॥ बाँधने

के साधन इस पाश को मैंने अभिचार-नियम से सिद्ध कर लिया है, इन्द्र ने इसे तीक्ष्ण कर दिया। हे अग्ने! हमारे इसे युद्ध में शत्रुओं को पाश से बन्धन युक्त करो ॥२॥ हमारी दी हुई हवियों से प्रसन्न हुये इन्द्राग्नि हमारे शत्रुओं को बन्धनयुक्त करें। सोम और मरुद्गण सहित इन्द्र हमारे शत्रुओं को पाश में बाँध लें ॥३॥

१०५ सूक्त

(ऋषि—उन्मोचनः। देवता—कासा। छन्द—अनुष्टुप्)

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥१॥
यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥२॥
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३॥

जैसे दूर स्थित ज्ञात विषयों में भी यह मन शीघ्रता से दौड़ता है, वैसे ही कास-श्लेष्मरोग रूप कृत्ये! तू मन के पास से द्रुत वेग से दूर देश को चली जा ॥ १ ॥ जैसे भले प्रकार तीक्ष्ण हुआ बाण धनुष से छोड़ने पर द्रुत गति से चलता हुआ भूमि को भी चीर देता है, हे कास! तू इसी प्रकार बाण से बिंध कर भूमि के ऊबड़-खाबड़ प्रदेशों में चली जा ॥ २ ॥ जैसे सूर्य की रश्मियाँ उच्च लोक और पर्वतों तक शीघ्र पहुँचती हैं वैसे ही तू समुद्र के विविध प्रवाह वाले देश को प्रस्थान कर ॥ ३ ॥

१०६ सूक्त

(ऋषि-प्रमोचनः। देवता—दूर्वा; शाला। छन्द—अनुष्टुप्)

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणी।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥१॥
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्।

मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥२॥
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥३॥

हे अग्ने ! तुम्हारे सामने जाने पर अथवा पीछे जाने पर भी हमारे देश में सुन्दर फूल वाली दूर्वा उत्पन्न हों और जल के झरनों पर होती रहें। हमारे यहाँ कमल युक्त सरोवर भी हों ॥ १ ॥ हमारा घर जलों से पूर्ण हो। हमारे जल सरोवरों से युक्त हों। हे अग्ने ! अपनी लपटों को पराङ्मुख करो ॥२॥ हे शाले ! तू हमारे निमित्त शीतह्रदा हो। हम तुझको ठण्डे पानी से जटायु रूप में घेर कर शैवाल से लपेटते हैं। हमारे द्वारा स्तुति करने पर अग्नि से घर आदि न जले ऐसे यत्नों को करें ॥३॥

१०७ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः। देवता—विश्वजिद्। छन्द—अनुष्टुप्)

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि ।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥१॥
त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥२॥
विश्वजिद् कल्याण्यै मा परि देहि ।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥३॥
कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।
सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥४॥

हे संसार को वशीभूत रखने वाले विश्वजिद् देवता ! जिस त्रायमाणा देव के अधिकार में संसार का पालन करना रहता है, उसके आश्रय में हमको करो। हे त्रायमाणे ! हमारे दुपाये, पुत्र, पौत्र, भृत्यादि तथा चौपाये गवादि पशुओं की रक्षा करो ॥१॥ हे त्रायमाणे ! तुम मुझे विश्वजित् को दो। हे विश्वजित् ! हमारे दुपाये, पुत्र पौत्र भृत्यादि और चौपाये गवादि पशुओं की रक्षा करो ॥२॥

हे विश्वजित् ! तुम मुझे हर प्रकार का कल्याण करने वाली कल्याणी प्रदान करो। हे कल्याणी ! हमारे दो पैर वाले पुत्र, पौत्र, भृत्यादि और चार पैर वाले गवादि पशुओं की रक्षा करो ॥३॥ हे मंगलमयी कल्याणी ! तुम मुझे सर्व कार्यों के ज्ञाता सर्वविद् देव को सौंप दो। हे सर्वविद् देव ! तुम हमारे दुपाये, पुत्र, पौत्र, भृत्यादि और चौपाये गवादि पशुओं की रक्षा करो ॥४॥

१०८ सूक्त

(ऋषि—शौनकः। देवता—मेधा; अग्निः। छन्द—अनुष्टुप्; बृहती)

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥१॥
मेधामहं प्रथमा ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२॥
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥३॥
यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥४॥
मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥५॥

हे वेदधारिणी मेधा! देवता और मनुष्य सभी तुमको श्रेष्ठ जानते हुए पूजते हैं। तुम गौ-घोड़ों सहित हमें प्राप्त होओ। जैसे सूर्य की किरणें संपूर्ण संसार में व्याप्त होती है, वैसे ही तुम अपनी सर्व-व्यापिनी शक्ति सहित हमको प्राप्त होओ। तुम हमारी यज्ञाहुति से प्रसन्न होने वाली हो, इसलिये आओ ॥१॥ बुद्धि की कामना वाला मैं वेदों के धारण करने के कारण, वेदयुक्त ब्रह्मण्वती, ब्रह्मसेविता, ब्रह्मजूता, अतीन्द्रियार्थदर्शी वसिष्ठ आदि से प्रशंसित ऋषिष्टुता वेद विहित आचरण के निमित्त गुरुकुल में रहने वाले ब्रह्मचारियों से श्रेष्ठ बुद्धि का, अध्ययन के लिए

ज्ञान का और रक्षा के निमित्त इन्द्र आदि देवों का आह्वान करता हूं ॥२॥ जिस बुद्धि को ऋभु जानते हैं, जिसे दानव और वसिष्ठादि ऋषि जानते हैं, हम उस बुद्धि को साधक में प्रतिष्ठित करते हैं ॥३॥ जिस बुद्धि को मन्त्रद्रष्टा ऋषि, पृथिव्यादि भूतों की रक्षा में सामर्थ्यवान् कौशिक, कश्यप आदि ज्ञानी जानते हैं, उस बुद्धि के हे अग्ने ! मुझे बुद्धिमान बनाओ ॥४। मैं प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल में मेधा की स्तुति करता हूं। सूर्य की रश्मियों के वर्तमान रहते पूरे दिन हम उन्हें अपने स्तुति रूप वचनों द्वारा प्रतिष्ठित करते हैं ॥५॥

१०९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—पिप्पली। छन्द—अनुष्टुप्)

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यूतातिविद्धभेषजी ।
तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥१॥
पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥२॥
असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३॥

पिप्पली क्षिप्त वात रोग की औषधि है। रोग, को पूरी तरह बांधने में समर्थ तथा अन्य औषधियों का तिरस्कार करने वाली है। अमृत मंथन के समय इस पिप्पली की देवताओं ने कल्पना की थी, यह सब रोगों को नष्ट करने वाली एक ही औषधि प्राणों को स्थिर रखने में समर्थ है ॥१॥ पिप्पली के जाति भेद वाली हस्ति पिप्पली ने अपने आविष्कृत होने से पूर्व यह निश्चय किया था कि हम जिस प्राणी के शरीर में औषधि रूप से प्रविष्ट हों वह प्राणी नाश को प्राप्त न हो ॥२॥ हे पिप्पली ! वात रोग वाले, बारम्बार हाथ-पैर पटकने वाले मस्तिष्क रोग की तू औषधि है। तुझे पहिले दानवों ने गाड़ दिया था, फिर देवताओं ने निकाला था ॥३॥

११० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्ति त्रिष्टुप्)

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१॥
ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येन नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२॥
व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥३॥

अग्नि चिरन्तन होने से स्तुत्य है। वे प्राचीन काल से यज्ञों में आहूत होते रहे हैं। हे अग्ने! तुम यज्ञ-सम्पादक हो और नवीन होता बन कर वेदी में विराजमान होते हो। तुम इस प्रकार विराजमान होते हुए हमें कल्याणकारी धन प्रदान करो ॥१॥ ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र बड़ों का मारने वाला और मूल नक्षत्र में उत्पन्न सारे कुटुम्ब का नाशक होता है। इसलिए पाप नक्षत्र में जन्म लेने वाले इस बालक को, यम के कुटुम्ब नाश वाले कार्य से पृथक करो। सब देवगण इसे पापों को पार करते हुए शतायुष्य करें ॥२॥ मेरा यह बालक सिंह के समान क्रूर नक्षत्र में उत्पन्न हुआ है इसलिए यह जन्म लेते ही उत्तम वीर्य से युक्त हो और यह बड़ा होने पर अपने पिता-माता की हिंसा करने वाला न बने ॥३॥

१११ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥१॥
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥२॥

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽसति ॥४॥

हे अग्ने ! मेरा यह पुरुष पाप के पाशों से बंधा प्रलाप कर रहा है; इसे रोग के कारण रूप पाप से बचाओ। यह तुम्हें अधिक हवि देता है इसलिए उन्माद रोग से मुक्त करो ॥१॥ हे ग्रह-ग्रस्त पुरुष ! तेरे उन्माद रोग को अग्नि दूर करें। तेरा मन गृह के विकार से विकृत हो रहा है। मैं उसके उपाय का ज्ञाता होने से ऐसी औषधि करता हूं जिससे तू रोगमुक्त हो जा ॥२॥ तू यदि देवकृत उपघात से अथवा ब्रह्मराक्षस तथा ग्रहण से उन्माद को प्राप्त हुआ है तो मैं ज्ञानी तेरे पास आकर रोगमुक्त करने के लिए औषधि करता हूँ ॥३॥ हे उन्मादी पुरुष ! अप्सराओं ने तुझे उन्माद रहित करके लौटा दिया है। इन्द्र तथा भग देवता और अन्य सभी देवताओं ने तुझे उन्माद रोग से विमुक्त कर लौटा दिया है ॥४॥

११२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जनन्तु विश्वे ॥१॥
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन्।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥२॥
येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गे अङ्ग आर्पित उत्सितश्च।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥३॥

हे अग्ने ! यह अपने बड़ों में से किसी की हत्या न करे। इसे मूलोच्छेदन के दोष से बचाओ। हे अग्ने ! तुम शान्ति के उपायों के ज्ञाता हो। इसलिए ग्रहणशीला पिशाचों के बन्धनों से मुक्त करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम

पितर आदि के परिवेदन-दोष से उत्पन्न पाश का शमन करो। माता, पिता, पुत्र जिन परिवेदन-जन्य पाशों से बंधे हैं उन्हें खोलो। हे अग्ने! तुम खोलने के उपायों के ज्ञाता हो, इस परिवेदन-जन्य दोष से छुड़ाओ ॥२। हे देवगण! जिन पाशों से अंग-अंग जकड़ा हुआ पुरुष पीड़ा के कारण बारम्बार उठ बैठता है, उसके उन पाशों को खोलो। तुम इस परिवेदन दोष को भ्रूणहत्या करने वाले और श्रोत्रिय के हिंसक में स्थित कर दो ॥३॥

११३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—पूषा। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥१॥
मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान्।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व २॥
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥३॥

देवताओं ने परिवित्त में होने वाले पाप को त्रित के मन में स्थित किया, त्रित ने इस पाप को सूर्योदय के पश्चात् सोते रहने वाले मनुष्यों में स्थापित किया। हे परिवित्त! तुझे जो पाप देवी प्राप्त हुई है उसे मन्त्र शक्ति से दूर भगा ॥१॥ हे परिवेदन से उत्पन्न पाप! तू परिवित्त त्याग कर अग्नि और सूर्य के प्रकाश में प्रविष्ट हो। तू धूम में, या मेघ के आवरण कुहरे में प्रवेश कर। हे पाप! तू नदियों के फेन में समा जा ॥२॥ त्रित का वह पाप बारह स्थानों में स्थापित किया गया है। वही पाप मनुष्य में प्रविष्ट हो जाता है। हे पुरुष! तू यदि पिशाची द्वारा प्रभावित हुआ है तो उसके प्रभाव को पूर्वोक्त देवता और ब्राह्मण इस मंत्र द्वारा शमन करें ॥३॥

११४ सूक्त (बारहवाँ अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—विश्वेदेवा। छन्द—अनुष्टुप्

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।

आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥१॥
ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥२॥
मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥३॥

हे देवगण, हे अग्ने ! जिस पाप से देवता रुष्ट होते हैं, उसे हम इन्द्रिया-वेश में कर चुके हैं। उस पाप से तुम हमें यज्ञात्मक सत्य द्वारा मंत्र साधनादि के प्रभाव से बचाओ ॥१॥ हे अदिति के पुत्रो ! यज्ञात्मक सत्य और ध्यान योग्य परब्रह्म द्वारा कर्म ~ घातक पाप से मुक्त करो। तुम यज्ञ सम्पन्न करने में समर्थ हो । हम यज्ञ करने की इच्छा करते हुये भी जिस पाप के कारण नहीं कर पाते, उस पाप से हमको बचाओ ॥२॥ हे विश्वे देवाओ ! हम स्रुवे द्वारा घृत की आहुति देते हुये यज्ञ करना चाह कर भी, पाप के कारण नहीं कर पाते, उस पाप को हमसे दूर करो ॥३॥

११५ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द अनुष्टुप्)

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥१॥
यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥२॥
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥३॥

हे विश्वेदेवो ! तुम हमसे स्नेह करते हो । हमने जाने या अनजाने जिन पापों को किया है उन पापों से हमको बचाओ ॥१॥ मैं जागते या सोते जिन पापों को प्रिय मानता हुआ कर चुका हूँ उससे मुझे वर्तमान में और भविष्य में भी काठ के पद बंधन से छुड़ाने के समान मुक्त करो

दो ।।२।। जैसे काठ के पद बन्धन से छूटने पर या पसीने से भीगने पर मनुष्य स्नान करके बाहरी मैल से शुद्ध होता है, वैसे ही मैं शुद्ध होऊँ। जैसे पवित्रे और छलनी आदि साधनों से घृत शुद्ध होता है, वैसे ही देवगण मुझे शुद्ध करें ।।३।।

११६ सूक्त

(ऋषि—जाटिकायनः। देवता—विवस्वान्। छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

याद् याम चक्रुर्निखनन्तो अग्र कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञिय मधुमदस्तु नोऽन्नम् ।।१।।
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधभागो मधुना सं सृजाति।
मातुर्यदेन इषित न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे।।२।।
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन्।
यवन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषा शिवो अस्तु मन्युः ।।३।।

कृषि कर्म करने वाले कर्षीवणों ने विद्याहीन और विचार शून्य होने से भूमि को खोदने रूप यम सम्बन्धी कार्य किया था, उसे वे ठीक प्रकार नहीं जानते। क्योंकि वे विद्या बुद्धि से हीन होते हैं। उसके शमनार्थ मैं घृत, मधु, तेल आदि को न्यूनाधिक परिमाण में हवि रूप से देता हूं। यह यज्ञ-योग्य अन्न मधुर और उपभोग के योग्य हो ।।१।। सूर्य के पुत्र यम अपने लिये हविर्भाग करें और हमको मधुमय क्षीर घृत आदि से युक्त करें। सम अपराध करने वालों को जो पाप प्राप्त हुआ है, वह माता-पिता सम्बन्धी अपराधजन्य पाप शान्त हो ।।२।। यह पाप यदि माता द्वारा प्राप्त हुआ हो या पिता द्वारा प्राप्त हुआ हो, भाई अथवा अन्य सम्बन्धी या पुत्र द्वारा प्राप्त हुआ हो तो इस पाप से सम्बन्ध रखने वालों का वह पाप शान्ति को प्राप्त हो ।।३।।

११७ सूक्त

(ऋषि—कौशिकः (अनृणकामः)। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्व पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ।।१।।

इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्यं यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥२॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥३॥

भुगतान करने योग्य ऋण, जिसे लौटा नहीं सका, ऐसा ऋण मैं स्वयं ही हूं। उस बली ऋण के द्वारा मुझे यमराज के वश में रहना पड़ेगा। हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से मैं ऋण रहित हो जाऊँ, क्योंकि तुम ऋण जन्य पारलौकिक बन्धनों से मुक्त करने में समर्थ हो ॥१॥ इस लोक में रहते हुये ही हम इस ऋण को धनिक के लिये सौंपते हैं। मरने से पहले ही हम अपने ऋण का भुगतान करते हैं। मैं जिस जौ आदि धान्य को ऋण लेकर खा गया हूँ, हे अग्ने ! आपकी कृपा से उससे उऋण होता हूं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से हम लौकिक और वैदिक दोनो प्रकार के ऋणों से इस लोक में ही छूट जांय, देह त्याग के पश्चात् हम स्वर्गादि पुण्य स्थानों में ऋणी न हों। नाकपृष्ठ, देवयान मार्ग और पितृयान आदि मार्गों में हम ऋण मुक्त होकर प्रविष्ट हों ॥३॥

११८ सूक्त

(ऋषि—कौशिक। देवता—अग्निः। छन्द - त्रिष्टुप्)

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥१॥
उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥२॥
यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि य याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥३॥

हाथ-पांव आदि इन्द्रियों द्वारा हमसे जो पाप बन गया है तथा भोगलिप्सा के कारण हमने जो ऋण लिया है, उस ऋण को अप्सराएँ ऋण देने वालों को चुका दें ॥१॥ हे उग्रंपश्या और राष्ट्रभृत नामक अप्सराओ ! हमारे कृत्य पाप विषयो में प्रवृत्त होने से हुये हैं। ऋणभूत उन सब पापों को शमन करो और पाप-पुण्यानुसार दण्ड देने वाले यम के लोक में ऋणदाता पाश लेकर हमको त्रास देने न आ सकें इसलिये हमारे ऋण को हमसे दूर करो ॥२॥ जिस वस्त्र, सुवर्ण, धान्यादि के लिये मैं ऋण ले रहा हूं अथवा जिसकी भार्या के पास मैं सहायता माँगने जाता हूँ, हे देवगण ! मैं वहाँ से सफल मनोरथ होकर, प्रार्थना को स्वीकार कराके आऊँ। वे मुझसे विरुद्ध बात न कहें। हे अप्सराओ! मेरी बात पर ध्यान दो ॥३॥

११९ सूक्त

(ऋषि—कौशिकः। देवता—वैश्वानरोऽग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१॥
वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं सगरो देवतासु।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥२॥
वैश्वानरः पवित्रा मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम्।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥३॥

मैं लिये हुये ऋण को देने में समर्थ न होता हुआ उसे देने की बात कहता रहा हूँ। सब प्राणियों के हितैषी अग्नि मुझे श्रेष्ठ गति प्राप्त करावें ॥१॥ लौकिक और दैविक ऋण को पूर्ण करने की प्रतिज्ञाओं को मैं वैश्वानर अग्नि के अर्पण करता हूं। वे अग्नि सब प्रकार के ऋणों के पाश से मुक्त करना जानते हैं। हम ऋण के पाश से छूटकर स्वर्गादि प्राप्ति के फल से सम्पन्न हों ॥२॥ मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, वैश्वानर

अग्नि मुझे पवित्र करें। मैं ऋण चुकाने की प्रतिज्ञायें करता रहा हूँ देवताओं की कामना ही करता रहा हूँ अभी यज्ञादि ऋण को दूर नहीं कर सका हूँ। मेरे अज्ञानात्मक असत्य से जो पाप उत्पन्न हुआ है उसे मैं अपने से दूर करता हूं ॥३॥

१२० सूक्त

(ऋषि - कौशिकः। देवता—अन्तरिक्षादयो मंत्रोक्ताः।
छन्द—जगती, पंक्तिः)

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१॥
भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥२
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अंगैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥३॥

अन्तरिक्ष पृथिवी और द्युलोक के प्राणियों की अहितरूप हिंसा, पिता-माता के प्रतिकूल आचरण रूप हिंसा, यह दोनों पाप, जो इससे बन गये हैं, गार्हपत्य अग्नि प्रसन्न होते हुये उनसे बचाकर इसे उत्तम गति प्रदान करे ॥१॥ पृथिवी, देवमाता अदिति हमारी माता रूप हैं। अन्तरिक्ष हमारे साथ रहने से भाई के समान है। यह सब हमको पाप से बचावें। द्यौ हमारा पिता रूप है, यह हमें ऋण-ग्रहण के दोष से मुक्त करें। मैं निषिद्ध नारी के साथ पापयुक्त आचरण कर स्वर्गादि लोकों से भ्रष्ट होने वाला न बनूं ॥२॥ सुन्दर मन वाले, यज्ञ आदि पुण्यकर्मों के कर्त्ता पुरुष, ज्वर आदि रोगों से रहित हो दुःख रहित, सुख अनुभव करते हुये स्वर्गादि लोकों में रहते हैं। हम भी रोग-रहित होते हुये सुन्दर गति को प्राप्त कर स्वर्गादि उत्तम लोकों में रहते हुये स्वजनों को देखें ॥३॥

१२१ सूक्त

(ऋषि—कौशिकः। देवता—अग्न्यादयो मंत्रोक्ताः।
छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

विषाणा पाशान् विष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये।

दुष्वप्न्यं दुरितं निः ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥१॥
यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥२॥
उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥३॥
वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वा अनु क्षिय ॥४॥

हे निर्ऋति देवी ! हे वरुण ! तुम मरणात्मक उत्तम, मध्यम और अधम पाशों को खोलो । दुःस्वप्न जनित पाप को भी हमसे पृथक कर स्वर्ग लोक प्राप्ति कराओ ॥१॥ हे पुरुष ! तू काष्ठ के, रस्सी के गड्ढे भूमि आदि के वा राजाज्ञा प्रकाशित करने वाली वाणी के बन्धन में बँधता है, तो तुझे गार्हपत्य अग्नि पार लगाते हुये स्वर्ग प्राप्त करावें ॥२॥ यह पुरुष संतापप्रद बेडी आदि के बन्धन से मुक्त हों । विचृत उपनाम वाले दो मूल नक्षत्र इस बँधे हुये पुरुष को मृत्यु-भय से छुड़ावें ॥३॥ हे बन्धन के अभिमानी देव ! इस बन्धन से पीड़ित होने वाले पुरुष को स्थान दो, बन्धन से मुक्त करो और अनेक प्रकार से यहाँ से चले जाओ । जैसे माता के गर्भ से निकला हुआ शिशु विचरण करता है, वैसे तुम सब मार्गों में विचरण करो ॥४॥

१२२ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—विश्वकर्मा । छन्द—त्रिष्टुप्; जगती)

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥१॥
ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥२॥
अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥३॥

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥४॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥५॥

हे विश्वकर्मा, (विश्व के रचयिता) तुम सबसे पूर्व उत्पन्न हुये हो। तुम्हारी महिमा का जानने वाला मैं इस पक्व हविरन्न को अपनी रक्षा के निमित्त तुम्हें प्रदान करता हूँ। इस लोक में दिये गये इस अन्न के कारण हम बुढ़ापे में बढ़कर अविच्छिन्न रूप से प्रविष्ट हों ॥१॥ ऋणी पुरुष के पश्चात् पुत्र पौत्रादि ऋण से तर जाते हैं। जिस ऋणी का पिता से चला आता ऋण पुत्र पौत्रादि चुका देते हैं वे भी तर जाते हैं। जिनके कुल में पुत्र, पौत्रादि नहीं होते और अपने अथवा अपने पिता के ऋण का भुगतान नहीं कर पाते, परन्तु भुगतान करने की उत्कट इच्छा रहती है तो वे उस इच्छा के कारण ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥२॥ हे दम्पति ! परलोक का ध्यान रखते हुए सत्कर्मों को करो। तुम ब्राह्मण को जो पक्वान्न देने की इच्छा करते हो और जो अन्न हविरूप से अग्नि में होमा जाता है, उसकी रक्षा के लिए यत्न करो ॥३॥ मैं देवगण का और गतिमान महान् यज्ञ में मन के द्वारा प्रविष्ट होता हुआ उसी में स्थित होता हूँ। हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से ही अपनी वृद्धावस्था तक इस लोक में निवास करके फिर बुढ़ापे से जीर्ण हुये देह को त्यागकर दुःख शोक से रहित स्वर्ग प्राप्त कर सुखी हों ॥४। इन यज्ञादि जलों को मैं ऋत्विजों के हाथ धोने के निमित्त डालता हूं। यह कार्य मैं जिस पदार्थ की कामना करता हुआ कर रहा हूँ, मुझे मरुतों सहित इन्द्र वह पदार्थ प्रदान करें ॥५॥

१२३ सूक्त

(ऋषि—भृगु। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥१॥

जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ।२।
देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ॥३।
स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ।४।
नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु ।
विद्धि पूतस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ।५॥

हे देवगण ! तुम स्वर्ग में यजमान के साथ एकत्र रहने वाले हो मैं यह हवि तुम्हें अर्पण करता हूँ, इस निधि को अग्नि द्वारा तुम्हें प्रा कराते हैं। यह यजमान इस हवि के पश्चात् ही कुशलतापूर्वक स्वर्गारोह करेगा। तुम इस यजमान को भूलना मत ।।१।। देवताओ ! स्वर्ग में तु इस यजमान से परिचित रहना। वहाँ इसके स्थान को निश्चित क देना। हवि देने के पश्चात् यह कुशलपूर्वक वहाँ आवेगा २।। वसु, रु और आदित्य मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह रूप हैं मैं पाक-यज्ञ को करता, दानादि कर्म करता हूँ। मैं पुत्रादि द्वारा किये गये श्राद्ध आ से उत्पन्न होने वाले फल से हीन न होऊँ ।।३-४। हे सोम ! तुम हमा अपराधों को भूलकर हमसे सुखपूर्ण व्यवहार करो। हमारे किये हुए क उस स्वर्ग लोक में फल देने वाले हों। तुम हमारे कर्म-फल को जानो। स्वामिन् ! तुम सुन्दर मन वाले होओ ।५।

१२४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—दिव्या आपः। छन्द त्रिष्टुप्)

दिवो नु मा बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्य पप्तद् रसेन ।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ।१॥
यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव ।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः
अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव ।
सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥

अन्तरिक्ष से जो जल की बूंद मेरे शरीर पर गिरी है, उसके लगने के प्रक्षालन रूप हे अग्ने ! मैं अमृत से युक्त होता हूं। गायत्री आदि मन्त्रों के पूर्ण अनुष्ठानों से मैं पुण्य के फलों से युक्त होऊँ ॥१॥ वर्षा की एक बूंद वृक्ष के अगले भाग से मुझ पर गिर पड़ी है तो वह बूंद वृक्ष के ही फल के समान है और यदि वह बूंद आकाश से गिरी है तो वह वायु का फल है। शरीर के जिस अङ्ग पर या देह के जिस वस्त्र पर उसका स्पर्श हुआ है, वह प्रक्षालनार्थ प्रयुक्त जल के समान पाप देवता को हमसे दूर करे ॥२॥ यह वर्षा की बूंद उबटन का साधन है। यह तेल चन्दनादि, हमारी सम्पन्नता, और सुवर्णालंकार आदि का ही बल है। यह वर्षा जल पवित्र करने वाला है, इस जल के पवित्र स्पर्श के कारण पाप देवता और शत्रु भी हमारे प्रति आक्रमणकारी न हों ३॥

१२५ सूक्त (तेरहवाँ अनुवाक)

(ऋषि–अथर्वा। देवता–वनस्पतिः। छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥१॥
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२॥
इन्द्रस्योजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥३॥

हे वृक्ष निर्मित रथ ! तू दृढ़ हो। तू शत्रुओं से पार करने वाला हमारे लिए मित्र रूप है। तू चाम-बन्धनों से बँधा, वीरों से घिरा युद्ध के योग्य हो। तुझ पर आरोहण करने वाला शत्रु-सेना, स्वर्ण-धन एवं राज्य पर विजय प्राप्त करे ॥१॥ आकाश और पृथ्वी से इनका बल प्राप्त किया गया है। वृष्टि जल से बढ़ने वाली वनस्पतियों का काष्ठ रूप बल ही यह रथ है। चर्म रस्सियों से बँधा हुआ यह रथ इन्द्र के आयुध के समान द्रुतगति वाला है। इस रथ की घृत युक्त हव्य से सेवा करनी चाहिये

॥२॥ हे रथ ! तू इन्द्र का पराक्रम है, मरुद्गणों का बल है, मित्र का तू गर्भरूप है, वरुण का अवयव है। तू हमारी यव-हवियों को ग्रहण कर ॥३॥

१२६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—दुन्दुभिः। छन्द—त्रिष्टुप्

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥१॥
आ क्रन्दय बलमोजो न आधा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥२॥
प्रामूं जयाभीमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३॥

हे दुन्दुभि ! पृथिवी और आकाश को अपनी गड़गड़ाहट से भर दे। अनेक देशों के प्राणी तेरे घोष को सुखपूर्वक सुनें। तू युद्ध के स्वामी इन्द्र और उनके अनुगामी मरुतों के साथ हमारे शत्रुओं को दूर भगा ॥१॥ हे दुन्दुभे ! तू शत्रुओं के रथ घोड़े, हाथी, सवार आदि को हरा कर आर्तनाद कराने वाली बन। तू हमको संग्राम में सम्मुख पहुँचा और पराजय कराने वाले पापों को भी दूर कर। तू शत्रुओं के लिए कर्णकटु शब्द करती हुई उनकी सन्तापकारिणी सेना को भगा। तू इन्द्र की मुष्टिका के समान दृढ़ हो ॥२॥ हे इन्द्र ! उस दिखाई पड़ने वाली शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करो। हमारे यह शूर शत्रु पर विजय प्राप्त करें। हमारे सेनापति, मन्त्री और राजा भी रथारूढ़ हो युद्ध को जीतें ॥३॥

१२७ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः। देवता—वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम्। छन्द—अनुष्टुप् जगती)

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥१॥

(ब)लास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रु रभिचक्षणम् ॥२॥
यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३॥

हे पलाश ! तू विसर्पक आदि रोगों की ओपधि है, तू विद्रधि, बल क्षयकारक कास, श्वास बलास नामक रोगों को भी दूर करता है। तू विसर्प के साथ दूपित त्वचा और मेद को भी समाप्त कर ॥१॥ हे कास श्वास युक्त बलास रोग ! तेरे विसर्पक आदि अण्डकोपों के निकट या बगलों में होते हैं। मैं तेरी औषधि का ज्ञाता हूं। चीपुद्रु वृक्ष तेरी व्याधि को जड़ से नष्ट करने में समर्थ है ॥२॥ नाड़ी मुख से सम्पूर्ण शरीर तक में फैल जाने वाला विसर्पक, हाथ पैर, कान, आंख आदि में भी हो जाता है। उसे तथा विद्रधि हृदय रोग यक्ष्मा आदि विकराल रोगों को भी मैं वापिस लौटा देता हूं ॥३॥

१२८ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—शकधूमः, सोमः। छन्द—अनुष्टुप्)

शकधूम नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१॥
भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२॥
अहो रात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यां: सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥३॥
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४॥

शकधूम नामक अग्नि को नक्षत्रों ने अपना राजा चन्द्रमा बनाया क्योंकि उन्होंने इन्हें नक्षत्र का राज्य देना स्वीकार किया था ॥१॥

मध्याह्न, सायंकाल और प्रातःकाल में भी हमारा दिन पुण्याह हो तथा रात्रि भी हमारे लिए पुण्याह हो ॥२॥ हे शकधूम ! हे नक्षत्र मंडल के राजन्! तुम रात्रि दिवस, अश्विनी आदि नक्षत्र और दिन-रात को अलग करने वाले सूर्य चन्द्र से हमारे समय को शुभ कराओ ॥३॥ हे शकधूम ! हे सोम ! तुमने सायंकाल, रात्रि या दिन में हमारा पुण्याह किया है। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥४॥

१२९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—भगः। छन्द—अनुष्टुप्)

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना।
कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥१॥
येन वृक्षां अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह।
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥२॥
यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः।
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥३॥

मैं भग देवता-द्वारा अपने को सौभाग्यशाली बनाता हूँ। इन्द्र मेरी सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हैं, मैं उनकी कृपा से अपने को भाग्यवान बनाता हूँ। हमारे शत्रु बुरी गति पाने वाले हों ॥१॥ हे औषधे ! तू भग देवता के जिस तेज से समीपवर्ती वृक्षों को तिरस्कृत करती है, उन देवता से मुझे सौभाग्य दिला। हमारे शत्रु हम से दूर होते हुए बुरी गति पावें ॥२॥ भग नेत्रहीन होने से आगे जाने में समर्थ नहीं है और गए हुए प्रदेश में ही बारम्बार चक्कर काटता है, इसलिए मार्ग के वृक्षों में ही टकराता रहता है। उस भग देवता से तू मुझे भाग्यशाली कर। मेरे शत्रु विमुख हो बुरी गति प्राप्त करें ॥३॥

१३० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—स्मरः। छन्द—बृहती; अनुष्टुप्)

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥

असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥
यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥३॥
उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥४॥

रथ से जीतने वाली और रथ द्वारा जीती गई अप्सराओं का यह काम है । देवो ! इस काम को दूर करो, उसका प्रभाव मुझ पर न रह सके ॥१॥ यह मुझे स्मरण करे मेरा प्रिय मुझे स्मरण करे । हे देवो ! इस काम को दूर करो ॥२॥ जिस प्रकार यह मेरा स्मरण करे, उस प्रकार मैं उसका स्मरण न करूं । हे देवो ! इस काम को दूर करो ॥३॥ हे मरुतो ! उन्मत्त करो, हे अन्तरिक्ष ! उन्मत्त करो, हे अग्नि ! तू उन्माद कर । वह मुझ पर प्रभाव न डाल सके ॥४॥

१३१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—स्मरः । छन्द—अनुष्टुप्)

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो नि तिरामि ते ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥
अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥
यद् धावसि त्रियोजनं पञ्च योजनमाश्विनम् ।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥३॥

सिर से पांव तक तेरी सब व्यथाओं को मैं हटा देता हूं । हे देवो! काम को दूर करो, वह मुझे प्रभावित न कर सके ॥१॥ हे अनुमति ! इसको तू अनुकूल मान; हे संकल्प, तू मेरा नमन स्वीकार कर । हे देवो ! काम को दूर करो, वह मुझे प्रभावित न कर सके ॥२॥ जो

तीन योजन दौड़ता है अथवा अश्व द्वारा पाँच योजन जाता है, वहाँ से पुनः लौट आता है, हम पुत्रों का तू पिता है ॥३॥

१३२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—स्मरः। छन्द—बृहती; अनुष्टुप)

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥१॥
यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ।२॥
यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥३॥
यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥४॥
यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥५॥

सब देवताओं ने अपनी शक्ति से कामदेव को प्राणियों को कामार्त्त करने के लिये जल में अभिषिक्त किया। मैं वरुण की धारण शक्ति से उस काम को सन्तापित करता हूँ ॥१॥ विश्वेदेवों ने जिन कामदेव को जलों में अभिषिक्त किया, हे योषित्! मैं वरुण की शक्ति से उस काम को सन्तप्त करता हूं ॥२॥ इन्द्राणी ने मानसिक पीड़ा में स्थित रह जिन कामदेव को जल में अभिषिक्त किया, उस काम को सन्तप्त करता हूँ ।३॥ इन्द्राग्नि ने जिस काम का अभिषेक किया, उस काम को मैं संतप्त करता हूं ॥४॥ मित्रावरुण ने जिन कामदेव का अभिषेक किया, उस कामदेव को संतप्त करता हूँ ।५॥

१३३ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः। देवता—मेखला। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, जगती)

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो वि
मुञ्चात् ॥१॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्या प्राश्ननी वीरघ्नी भव मेखले ॥२॥
मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
नमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैन मेखलया सिनामि ॥३॥
श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तपे इन्द्रियं च ॥४॥
यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५॥

अपने शत्रु की हिंसा के निमित्त देवताओं ने इस मेखला को स्थापित किया था और जो देवता दूसरों के निमित्त भी मेखला स्थापित करते हैं, वे अभिचार कर्म में हमको भी मेखला से युक्त करते हैं। हम जिन देवता के प्रशासन में हैं वह हमारे इच्छित कर्म को पूर्ण करें और हमारे शत्रुओ को मार कर हमें शत्रु-विहीन करें ॥१॥ हे आहुतियों से सिद्ध मेखले ! तू विश्वामित्र आदि ऋषियों की अस्त्ररूपा है। तू शत्रुओं की हिंसक और क्षीर आदि का पान करने वाली है ॥२॥ मैं ब्रह्मचारी तपोविशेष दीक्षादि नियमों से युक्त हूँ। मेरे द्वारा किये अभिचार कर्म से शत्रु अवश्य मारा जायगा। इसलिए मैं इस वध योग्य शत्रु को अपनी मंत्र-सिद्ध मेखला से बाँधता हूँ ॥३॥ आस्तिक्य बुद्धि का नाम श्रद्धा है, श्रद्धा की पुत्री ब्रह्माजी के तप से उत्पन्न हुई मेखला है। हे मेखला ! तू हमको भविष्य की बात सुझाने वाली मति प्रदान कर तथा सुने हुए को याद रखने में समर्थ बुद्धि हमें दे; तू हमारे लिये आत्मबल प्रदान कर ॥४॥ हे मेखले ! तुझे ऋषियों ने बांधा था। तू अभिचार के दोष को मिटा और चिरंजीवी होने को मुझ से संयुक्त हो ॥५॥

१३४ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः । देवता—वज्रः । छन्द—त्रिष्टुप्; गायत्री; अनुष्टुप्)

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपति ॥१॥
अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढ़ पृथिव्या मोत्सृपत् ।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥२॥
यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥३॥

यह दण्ड इन्द्र के वज्र के समान शत्रुओं को रोके। यह शत्रु के राज्य को नष्ट करे। जैसे इन्द्र ने वृत्र के गले और बांह की नसों को काटा था वैसे ही यह दण्ड शत्रु की नसों को काट डाले ॥१॥ ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा होता हुआ शत्रु पृथिवी पर गिर कर फिर न उठे ॥२॥ हे वज्र ! तू हानि पहुँचाने वाले शत्रु की खोजकर, उसे मार डाल और उसे सीमान्त पर गिरा कर नष्ट कर दे ॥३॥

१३५ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः । देवता—वज्रः । छन्द—अनुष्टुप्)

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे ।
स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१॥
यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः ।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥२॥
यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥३॥

इन्द्र जैसे वृत्रासुर के कन्धों को काट कर पृथक करते हैं, वैसे ही मैं शत्रुओं के कन्धों को काटने के निमित्त भोजन से बल और बल से

मन्त्र को धारण करता हूँ ।।१।। मैं जो जल पीता हूं, उससे शत्रु को पकड़ कर उसके रस को ग्रहण करता हूं । इस शत्रु के प्राणापान, व्यान, चक्षु आदि के रस को पीता हुआ अन्त में शत्रु का ही पान करता हूं ।।२।। मैं जो निगलता हूं, उससे शत्रु के रस को ही निगलता हूं । उसके प्राणापान, व्यान, चक्षु आदि रूप रस को निगल कर अन्त मे शत्रु को ही निगल जाता हूं ।।३।।

१३६ सूक्त

(ऋषि—वीतहव्यः (केशवर्धनकाम) । देवता—नितत्नी वनस्पति । छन्द—अनुष्टुप्; बृहती)

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ।।१।।
दृंह प्रत्नाञ्जनयाजाताञ्जातानु वर्षीयसस्कृधि ।।२।।
यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।
इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ।।३।।

हे ओषधि, हे काचमाची ! तू पृथिवी में उत्पन्न हुई है । तू तिरछी होकर फैलती है । हम तुझे अपने केशों को दृढ़ करने के निमित्त खोदते हैं ।।१।। हे ओषधे ! तू केशों को दृढ़ कर, जहाँ केश उत्पन्न न हुये हों, वहाँ केशों को उत्पन्न कर । हे केश-वृद्धि की इच्छा वाले पुरुष ! मैं तेरे गिरे हुये अथवा मूल सहित काट डाले गये केशों के रोग दूर करने वाली ओषधि से सींचता हूं ।।२-३।।

१३७ सूक्त

(ऋषि—वीतहव्यः (केशवर्धनकामः) । देवता—नितत्नी वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।
तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ।।१।।

अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णं स्ते असितः परि ॥२॥
दृंह मूलमाग्र यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडाइव वर्धन्तां शोर्ष्णास्ते असिताः परि ॥३॥

महर्षि जमदग्नि के यहाँ सदा प्रज्वलित अग्नि वर्तमान रहती है उन जमदग्नि ने अपनी पुत्री के केशों की वृद्धि के लिये जिस औषधि खोदा, उसे कृष्णकेश ऋषि के घर से वीतहव्य नामक ऋषि ने प्र किया ॥१॥ हे केश वर्द्धनाभिलाषिन् ! पहले तेरे केश उङ्गलियों से न जा सकते थे फिर हाथों से नापने योग्य हुये । तेरे शिर के बाल नरव नामक तृण के समान बड़े हो जायें । २॥ हे औषधे ! केशों को मूल ही दृढ़ कर और अगले भाग को अधिक बढ़ा । मध्य भाग को भी ठ प्रकार प्रवृद्ध कर । जैसे नरकट नदी के किनारों पर उत्पन्न होकर ब हैं वैसे ही तेरे शिर के बाल वृद्धि को प्राप्त हों ॥३॥

१३८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे ।
इमं मे अद्य पूरुष क्लीवमोपशिनं कृधि ॥१॥
क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो गावभ्यामुभे भिनत्वाण्ड्यौ ॥२॥
क्लीव क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमनसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥३॥
ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।
ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥४॥
यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।
एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥५॥

हे लताओं में श्रेष्ठ औषधे ! तू अमितवीर्या है । मेरे वैरी

निर्वीर्य बना ॥१॥ हे ओषधे ! तू हमारे शत्रु को पुंसत्व से हीन कर और क्लीवत्व प्रदान करती हुई उसके केशों को सम्पन्न कर फिर उस पुरुष के प्रजननात्मक दोनों अण्डकोषों को इन्द्र वज्र से चूर्ण करदे ॥२॥ हे शत्रु ! मैंने तुझे इस कर्म द्वारा पुंसत्व-रहित बना दिया है, तू वीर्य-शून्य हो चुका है। इस नपुंसक शत्रु के सिर पर हम केशों को रखते हुये स्त्रियों के आभूषण कुम्ब को धारण कराते हैं ॥३॥ तेरी वीर्यवाहिनी नाड़ियों के आश्रयभूत अण्डकोषों की दोनों नाड़ियों को कुचलता हूँ ॥४॥ जैसे चटाई बनाने के लिये नरकट को पत्थर से स्त्रियाँ कूटती हैं, वैसे ही हम तेरे अण्डकोषों पर स्थित शिश्न को पत्थर से कुचलते हैं ॥५॥

१३९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वनस्पतिः। छन्द—जगती; अनुष्टुप्)

न्यस्तिका ररोहिथ सुभगंकरणी मम।
शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥१॥
शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम्।
अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥२॥
संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि स नुद।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥३॥
यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥४॥
यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥५॥

हे सहस्रपर्णी ! तू दुर्भाग्य के लक्षणों को हटाती हुई उदय हो। तू मुझे सौभाग्य युक्त करने वाली हो। तू सैकड़ों शाखाओं वाली है। तू तैंतीस शाखाऐं नीचे की ओर फेंकती है ॥१॥ सहस्रों पत्तों से युक्त

उस सहस्रपर्णी से मैं तेरे हृदय को संतप्त करता हूं। मुझे काम से शुष्क करके तू शुष्क मुख वाली होकर चल ॥२॥ हे ओषधे ! तू पीतवर्ण वाली तथा सौभाग्य की देने वाली है। फलों की आहुति देने पर तू उसको मेरी ओर प्रेरित कर और हमारे हृदयों को अभिन्न कर दे ॥३॥ जैसे प्यासे मनुष्य का मुख सूखता है, वैसे ही काम के प्रभाव से स्त्री-पुरुष वियोगाग्नि से शुष्क होते हैं ॥४॥ जिस प्रकार न्यौला (नकुल) साँप को काट कर फिर से जोड़ देता है, उसी प्रकार हे शक्तिशालिनी ओषधे ! तू वियुक्त स्त्री-पुरुषों में पुनः संयोग करा दे ॥५॥

१४० सूक्त

(ऋषि— अथर्वा। देवता—ब्रह्मणस्पतिः, दन्ताः। छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥१॥
व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥२॥
उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ।
अन्यत्र वां घोरं तन्वः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥३॥

ऊपर की पंक्ति में नीचे मुख में प्रथम उत्पन्न होने वाले दाँत व्याघ्र के समान हिंसक होकर माता-पिता का भक्षण करने वाले हैं। हे मंत्राधिपति देव, हे अग्ने ! तुम उन्हें अहिंसक बनाओ ॥१॥ हे ऊपर के दाँतो ! तुम धान, जौ, उड़द और तिल का भक्षण करो। तुम्हारी तृप्ति के लिये व्रीहियवादि का भाग प्रस्तुत है। तुम तृप्त होओ और इस बालक के माता-पिता को नष्ट न करो ॥२॥ वे दाँत मित्र रूप एवं सुखप्रद हों। हे दाँतो ! इस बालक के शरीर से माता-पिता के नाश का घोर कर्म दूर हो जाय। तुम इसके माता-पिता को नष्ट न करो ॥३॥

१४१ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्)

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥१॥
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२॥
यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥३॥

वायु इन गौओं के झुन्ड के झुन्ड प्राप्त करावें । त्वष्टा देव पोषण के निमित्त इन गौओं को धारण करें । इन्द्र इनके प्रति स्नेहयुक्त वचन कहें पशु-पीड़क रुद्र इनको वृद्धि के निमित्त दोषों से मुक्त करें ॥१॥ हे गौओं के पालन करने वाले ! लाल रंग वाले ताँबे के शस्त्र स्वधिति द्वारा बछड़ों के कानों में नर मादा रूप चिह्न बना । अश्विनीकुमार भी वैसा ही चिह्न करें और वह चिह्न पुत्र-पौत्रादि सन्तान से समद्धि को प्राप्त कराने वाला हो । २॥ देव-दानवों ने पशुओं के कानों में जो स्वधिति से चिह्न किया है तथा मनुष्यों ने भी किया है, उसी प्रकार हे अश्विनी-कुमार ! तुम असंख्य गौओं को, पुष्टि के निमित्त चिह्नित करो ॥३॥

१४२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता - वायुः । छन्द—अनुष्टुप्)

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥१॥
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि ।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥२॥
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३॥

हे जौ, तू उत्पन्न होकर ऊँचा हो । तू अनेक प्रकार से बढ़ कर पात्रों को भर दे । आकाश का उपलात्मक वज्र तुझे नष्ट न करे ॥१॥

हमारे वचन को सुनते हुये जो रूप से वर्तमान देव ! तू अन्तरिक्ष में जैसे बढ़ता है, वैसे ही इस भूमि में वृद्धि को प्राप्त हो, समुद्र के समान कभी भी क्षीण न होने वाले रूप से बढ़ता जा ।२।। हे जो ! तेरे पास जाने वाले, कार्य करने वाले व्यक्ति अक्षय सौभाग्य प्राप्त करें । धान्य के ढेर अवश्य हों । घर में लाने वाले तथा उपभोग करने वाले मनुष्य भी क्षय रहित हों ।।३।।

।। इति षष्ठ काण्ड समाप्तम् ।।

सप्तम काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । देवता—आत्मा ।
छन्द—त्रिष्टुप्; जगती)

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ।।१।।
स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः स इदं विश्वमभवत् स आभवत् ।।२।।

जिन प्रजापति, इन्द्र और अग्नि देवताओं के स्वरूप का वर्णन परा आदि वाणी से किया गया है, वे हमारी कामना को पूर्ण करें । १।। प्रजापति ब्रह्मा जिनको परम ब्रह्म परमात्मा ने सर्व प्रथम बनाया है, अपने माता-पिता, द्यौलोक, परमात्मा तथा पृथ्वी लोक में व्याप्त प्रकृति को जानते हैं । वही ब्रह्मा सबको, सारे जगत को कर्म करने के लिये प्रेरित करते है और पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं ।।२ ।

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । देवता—आत्मा छन्द—त्रिष्टुप्)

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥१॥

प्रजापति, माता के गर्भ रूप, पिता के प्राणमय वीर्य रूप एवं नित्य तरुण देवों के बन्धु रूप में पिता के समान रक्षक हैं। ऐसे ब्रह्मा को जो मन से जानता हो, ऐसे महान् व्यक्ति को हमें बतलाइये ॥१॥

३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम) । देवता—आत्मा ।
छन्द—त्रिष्टुप्)

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्व मैरयत ॥१॥

यह प्रजापति कर्म फल को प्रदान करने वाले, वरण करने योग्य हैं। ये ही विश्वात्मा रूप से सबके भीतर व्याप्त रह कर यज्ञादि कर्म करने की प्रेरणा देते हैं।

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । देवता—वायु ।
छन्द—त्रिष्टुप्)

एकया च दशभिश्चा सुहूते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥१॥

सबको प्रेरणा देने वाले, शोभनरीति से आवाहन करने योग्य ब्रह्मा और वायुदेव ! आप एकादश, उसकी दुगनी और तीन गुनी संख्या की घोड़ियों के रथ में बैठकर हमारे यज्ञ में पधारें और हमारी मनोकामना पूर्ण करें। यज्ञ में आकर आप कहीं न जांय ॥१॥

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । देवता—आत्मा ।
छन्द—त्रिष्टुप्; पंक्तिः अनुष्टुप्)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१॥
यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥२॥
यद् देवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥३॥
यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् वि हव्येनेजिरे ॥४॥
मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥५॥

इस समय जो देवत्व को प्राप्त हो चुके हैं उन्होंने पहिले यज्ञ के द्वारा यज्ञरूप भगवान विष्णु का पूजन किया। इस महत्वपूर्ण कार्य को करने से उस सुखपूर्ण स्वर्ग लोक को प्राप्त हुए जहाँ पहले से साधन सम्पन्न देवतागण रहते हैं। १॥ यज्ञ पैदा हुआ, विस्तार को प्राप्त हुआ। वह विशेष ज्ञान का साधन बना और वृद्धि को प्राप्त होकर देवों का स्वामी बन गया। वह यज्ञ हमको धन प्राप्त करावे ॥२॥ देवता, अमर देवों का अपने हविरूप मन से नित्य यजन करते हैं। इस प्रकार अपने आत्मा में परमात्मा रूपी सूर्य का उदय होने पर उसका प्रकाश प्राप्त करते हैं ॥३॥ वह कौनसा विशेष साधन है जो देवताओं को अपने हविरूप मन के यजन से भी महान् हो सकता है? अर्थात् यही ज्ञान-यज्ञ सर्व श्रेष्ठ है ॥४॥ "अविवेकशील मूर्ख यजमान कुत्ते और गौ आदि पशुओं के अङ्गों से यजन करते हैं" यह निश्चित ही मूर्खतापूर्ण और निन्दनीय है। अपने से आत्म यज्ञ को करने वाले महापुरुष को बतलाइये! वे ही परमात्मा के स्वरूप का उपदेश करने योग्य हो सकते हैं ॥५॥

६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा ब्रह्मवर्चसकामः)। देवता—अदितिः। छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१॥
महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूची सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥२॥
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥३॥
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥४॥

यह पृथिवी ही स्वर्ग, यही अन्तरिक्ष, पैदा करने वाली माता, उत्पादक पिता तथा उत्पन्न हुआ पुत्र है। यही सब देव, और पञ्चजन भी यही है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है, हो रहा है और उत्पन्न कर रहा है वह सब अदिति पृथ्वी ही है ॥१॥ शुभ कार्य करने वालों की हितकारी, बहुत प्रकार के क्षात्र तेजयुक्त, सत्य का पालन करने वालों, अविनाशी, विशाल, सुखदाता, अन्न प्रदान करने वाली देवमाता अदिति (पृथिवी) का हम रक्षा के लिये आवाहन करते हैं ॥२॥ अच्छी तरह रक्षा करने वाली, पृथ्वी पर हमें सुख देने वाली, कुशल रखने वाली, छेद रहित, सुदृढ नौका की भाँति चढ़कर उसकी शरण में जाते हैं ॥३॥ अन्न की उत्पत्ति के लिए उस पृथ्वी माता अथवा मातृभूमि का हम गुणगान करते हैं जिसके समीप ही विस्तृत आकाश है। वह पृथिवी माता हमको तिगुना सुख प्रदान करे ॥४॥

७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः)। देवता—अदितिः। छन्द—जगती)

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम्।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन ॥१॥

दैत्यगण गम्भीर समुद्र में रहते हैं, उन्हें वहाँ से हटा कर गुणशील देवताओं को उसका अधिकार दिलाता हूँ क्योंकि इनकी आवश्यकता अधिक है और ये ही अधिक योग्य हैं ॥१॥

८ सूक्त

(ऋषि—उपरिबभ्रव: । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

भद्रादधि श्रेय: प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुम् कृणुहि सर्ववीरम् ॥१॥

हे भौतिक सुखों को चाहने वाले ! कल्याण को प्राप्त करने में प्रयत्नशील होओ । इस मार्ग पर चलने में देवगुरु महान ज्ञानी तेरा मार्ग-दर्शन करेंगे । इस पृथिवी पर स्थित इन सब वीरों को शत्रुओं से दूर करो ॥१॥

६ सूक्त

(ऋषि—उपरिबभ्रव: । देवता—पूषा । छन्द—त्रिष्टुप्; गायत्री; अनुष्टुप्)

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिव: प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१॥
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वा सो अस्मां अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥२॥
पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥४॥

पोषक पूषा देवता, स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथिवी के सब मार्गों में प्रगट होते हैं । यह पूषा देवता, पृथिवी और स्वर्ग, दोनों प्रिय स्थानों में प्राणियों के लिये कर्मों के साक्षी बन कर गमनागमन करते हैं ॥१॥ यह पोषणकर्त्ता पूषा देवता, इन सब दिशाओं को ठीक ठीक जानते हैं । वे हमें परम निर्भय मार्ग का प्रदर्शन करें । कल्याणकारी, तेजस्वी, बलवान्, कभी प्रमाद न करने वाले सूर्य देवता हमारा मार्ग-दर्शन करते हुये हमें उन्नति के पथ पर बढ़ावें ॥२॥ हे पोषक पूषा देवता ! हम आपका व्रत

लिये रहने से कभी नष्ट न हों। सदा धन, पुत्र, मित्र आदि से सम्पन्न रहें। हम आपका व्रत लेकर सदा आपकी स्तुति करते रहेंगे ।३॥ हे पोषक पूषा देवता ! इस संसार में जहाँ भी हमारे योग्य धन हो, उसे लाकर हमें प्रदान करें और हमको सहायता करें, ऐसी कृपा करें ॥४॥

१० सूक्त

(ऋषि—शौनकः। देवता—सरस्वती। छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥१॥

हे सरस्वती देवि ! आपका स्तन शान्तिदायक, सुखदाता, पवित्र मन को देने वाला पुष्टिकारक और प्रार्थनीय है, उसको हमें भी प्रदान करिये ॥१॥

११ सूक्त

(ऋषि—शौनकः। देवता—सरस्वती। छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम्।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥१॥

आपके विस्तृत, गर्जन करने वाले, सारे विश्व में व्याप्त, पताका की भाँति चलने वाले, संसार को विभूषित करने वाले विद्युत से हमारे धान्यादि नष्ट न हों, इससे हम प्रजाजनों को कष्ट न पहुँचे, सूर्य देव की प्रचण्ड किरणों से भी खेतों के धान्यों को हानि न पहुँचे, ऐसी कृपा करिए। हम यह प्रार्थना करते हैं ॥१॥

१२ सूक्त

(ऋषि—शौनकः। देवता—सभा; समितिः प्रभृति।
छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना सगच्छा उप मा स शिक्षाचारु वदानि पितरः संङ्गतेषु ॥१॥
विद्मते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।

ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२॥
एषामहं समासीननां वर्चो विज्ञानमा ददे ।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥३॥
यद् वो मनः परागतं यद् वद्धमिह वेह वा ।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥४॥

सभा व समितियाँ, प्रजापति राजा के लिये पुत्री की भाँति पोषण करने योग्य होती हैं। वे दोनों मिलकर (मुझ) राजा की रक्षा करें। राजा जिनसे मिले, वह उसे उचित सलाह दें। हे पितृगण ! मुझे ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करिये कि मैं सभा में विवेक और नम्रतापूर्वक बोलूँ ॥१॥ हे सभे ! हमें तेरा नाम ज्ञात है। तेरा 'नरिष्टा' नाम ठीक ही प्रसिद्ध है। तेरे जो कोई सभासद हैं, वे हमारे साथ समता का भाषण करने वाले होवें ॥२॥ इन सब बैठे हुये सभासदों से राज्य शासन सम्बन्धी विशेष ज्ञान के तेज को ग्रहण करता हूँ। इन्द्र देव हमें इस सब सभा का भागी करें ॥३। हे सभासदगणो ! आपका जो मन हमारी ओर से हटकर अन्यत्र अन्य-अन्य विषयों से ध्यान बट गया है, उसे हम अपनी ओर आकर्षित करते हैं। अब आप सब हमारी बात सुनें और उसी पर विचार करें ॥४॥

१३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (द्विषो वर्चोहर्तुकामः)। देवता—सूर्यः। छन्द—अनुष्टुप्)

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्यददे ।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥१॥
यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानं द्विषतां वर्च आ ददे ॥२॥

जिस प्रकार सूर्य उदय होते ही, तारों के प्रकाश को क्षीण कर देता है और अपने प्रकाश में मिला लेता है, वैसे ही मैं द्वेष करने वाले स्त्री-पुरुषों के तेज का हरण करता हूँ ॥१॥ मैं शत्रुओं में से उन सबका

जो मुझे आता हुआ देखते है, उन सुपुत असावधान शत्रुओं का सूर्य की भांति तेज क्षीण करता हूँ ॥२॥

१४ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सविता। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती)

अभित्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् १।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ॥२॥
सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै।
अथास्मभ्य सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥३॥
दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि।
पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्माणि ॥४॥

मैं द्यो और पृथिवी के सविता देव की, जो सारे जगत से रक्षक, सब के उत्पादक, जगत्कर्ता, ज्ञानी, सत्य के प्रेरक रमणीय पदार्थों के धारक, सब के प्रिय और ध्यान करने योग्य हैं, पूजा-उपासना करता हूँ ॥१॥ जिनका अपार तेज, उनकी इच्छानुसार ऊपर विकसित होता हुआ सर्वत्र प्रकाशित होता है, उत्तम कर्म करने वाले ब्रह्मा जिसकी प्रेरणा से हितकारी हाथ से, अंगुलि, आदि की कल्पना से स्वर्गदायक सोम उत्पन्न करते हैं उन सविता देव की हम प्रार्थना करते हैं ॥२॥ हे सविता देव! आप इस पालक यजमान को देह (पुत्र पौत्रादि) और अन्य प्रकार के यश प्रदान करिये। हमें आप नित्य उत्तम पदार्थ और बहुत पशु प्रदान करें ॥३॥ हे देव! आप सब के प्रेरक, श्रेष्ठ, और सब को दान देने में परायण रखने वाले हैं। आप ही पूर्वजों को धन-बल और आयु प्रदान करते हैं इस अभिषुत सोम को पियें। यह आनन्दित करने वाला है, यह गतिमान देवलोक के प्रति संचाप करता है ॥४॥

१५ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—सविता । छन्द—त्रिष्टुप्)

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥१॥

हे सविता देव ! मैं उस सत्य की प्रेरणा करने वाली, ग्रहण करने योग्य, वरणीय शोभायुक्त बुद्धि की याचना करता हूँ, जिससे अनेक धारा वाली बुद्धि को महान कण्व ऋषि ने प्राप्त किया था ॥१॥

१६ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—सविता । छन्द—त्रिष्टुप्)

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।
संशितं चित् सन्तरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१॥

हे बृहस्पति एवं सविता देव ! जो यजमान अन्य व्रतों को पालन करता है, उसे उदय काल में सोने का दोष दूर करके आगे बढ़ाइये, और भी व्रतों को पालन करने वाला बनाइये । इस यजमान को उत्तम भाग्य के लिए उद्बोधित करिये । समस्त देवता उसकी साधुता का अनुमोदन करें । १ ।

१७ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—धात्रादयो मंत्रोक्ताः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः ।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥१॥
धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥२॥
धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥३॥
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥४॥

जगत के स्वामी, विश्व को धारण करने वाले 'धाता' देवता हम को प्रचुर धन से संयुक्त करें। यह धाता देव सब प्रयोजनों को सफल करने में समर्थ हैं ॥१॥ धाता देवता मुझ यजमान को अक्षय जीवन शक्ति प्रदान करें। हम उस संपूर्ण धनों के स्वामी देवता की उत्तम बुद्धि का ध्यान करते हैं, और याचना करते हैं ॥२॥ धाता देवता, प्रजा की कामना करने वाले यजमान के लिए सारे वरणीय पदार्थों को प्रदान करें। संपूर्ण देवता अदिति देवी और अन्य देवता उसको अमृत प्रदान करें ॥३॥ सब के धारक धाता देवता, सबके प्रेरक, समस्त कल्याणों के दाता, सविता देव, प्रजा रक्षक पुरुषार्थयुक्त, वेदरक्षक, प्रकाश रूप अग्नि देव, रूपों के दाता त्वष्टा देवता, विश्व में व्यापक विष्णु भगवान हमारी हवि को प्राप्त करें और प्रजा के साथ अपने-अपने फल देकर यज्ञकर्ता यजमान को धन प्रदान करें ॥४॥

१८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—पृथिवी, पर्जन्यः। छन्द-उष्णिक्, त्रिष्टुप्)

प्र नभस्व पृथिवी भिन्द्धीदं दिव्यं नभः।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥१॥
न घ्रंस्ततापन हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥२॥

हे पृथिवी माता! हल के द्वारा जोती जाने पर भी आप भारी वर्षा को सहने योग्य रहें। हे पर्जन्य! आप दिव्य मेघों से उत्तम वर्षा को प्रदान करें ॥१॥ जहाँ सोम देव की पूजा होती है, सोमादि ओषधियाँ होती हैं, वहाँ उचित समय पर पर्याप्त वर्षा होती है और सब प्रकार कल्याण होता है। ग्रीष्म असह्य ताप नहीं देता और न ही शीत में कष्ट ... से मरती हैं। वर्षा उपयुक्त होने से भूमि समृद्धि को प्राप्त

होती है ॥२॥

१९ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–प्रजापतिः; धाता । छन्द–जगती)

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥१॥

प्रजापति ब्रह्मा, प्रजाओं को उत्पन्न करें और धाता देव उनका पोषण करें। यह सब प्रजायें (भावी सन्तान) संगठित एक मत होकर विवेकशीलता से कार्य करें। पुष्टि के देवता हमको प्रजा सम्बन्धी पुष्टि प्रदान करें।

२० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अनुमतिः । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती)

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥१॥
अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥२॥
अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।
तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥३॥
यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥४॥
एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।
भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥५॥
अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ॥६॥

हमारे यज्ञ को सब कर्मों के अनुमन्त्री चन्द्रमा देवता हमारे अनुकूल होकर सब देवों तक प्रकाशित कर दें। अग्नि देव भी हमारे द्वारा समर्पित हवि का भाग प्रत्येक देवता को प्राप्त कराने की कृपा करें ॥१॥

हे अनुमति नाम की देवि ! हमको सुबुद्धि प्रदान कर। हमें कल्याण-कारक कार्य करने की बुद्धि प्राप्त हो। आप अग्नि में होमी हुई हवि का उपभोग करके, हमें उत्तम सन्तान प्रदान करें ॥२॥ हम अनुमन्ता पुं देव के क्रोध के भाजन न बनें, अपितु उनकी सुखदायक, सुमति से लाभ प्राप्त करें। वे हमसे प्रसन्न होकर हमें पुत्र आदि सन्तान से सम्पन्न करें और अक्षय धन प्रदान करें ॥३॥ हे अनुमति देवि, आपका नाम अनेक प्रकार के यशों से प्रसिद्ध है। आप यजमान के धन में प्रेम करने वाली हैं। आप हमारे यज्ञ को सफल बनाइये और उत्तम वीरों सहित धन प्रदान करिये। ४॥ हमारे इस सब प्रकार से सम्पन्न यज्ञ की रक्षा करते हुये, हे अनुमति देवी ! आप सुक्षेम, पुत्रादि फल देने के लिये आइये। आपकी कृपा से ही श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होती है ॥५॥ हे अनुमति देवा ! आप स्थावर जंगम, अबुद्धि द्वारा तथा सुबुद्धि द्वारा कार्य करने वाले सभी मे व्याप्त रहती हैं। आप हमको सुबुद्धि प्रदान करें ॥६॥

२१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा; । देवता—आत्मा । छन्द—जगती)

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥१॥

हे बन्धुओ ! जन्म वाले नवजात प्राणियों के स्वामी, अतिथि के समान पूज्य और स्वर्गलोक के स्वामी सूर्य देवता की सुन्दर स्तुति करो। हे सूर्यदेव ! आप इस नवजात प्राणी को अपना समझकर उसका कल्याण करें। आप सभी सम्मानों के संचालक हैं ॥१॥

२२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—लिंगोक्ताः, (ब्रध्नः) । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्)

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥१॥
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् ।
अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥२॥

सब में आत्मा रूप से व्याप्त यह सूर्यदेव हमें सहस्त्र वर्ष तक स्वस्थ होकर जीने की शक्ति प्रदान करें। यह सूर्य देव ही सब ज्ञानी पुरुषों के माननीय और उन्हें सत्कर्म और कर्म फल में टिकाये रखने वाले हैं। हे भगवन्! आप सत्कार्य करने के लिये हमें आयु प्रदान करें ॥१॥ ज्ञान देने वाली, पापहारिणी, तेजयुक्त उषायें उस सूर्य भगवान की ओर हमको प्रेरित करती रहें। २॥

२३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—यमः। देवता—दुःष्वप्ननाशनम्। छन्द - अनुष्टुप्)

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षा अभ्व मराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥१॥

बुरे स्वप्न, कष्ट वा जीवन हिंसकों का उपद्रव, दरिद्रता, भय, बुरे नाम का उच्चारण और बुरे भाषण के दोषों को हम त्याग करते हैं ॥१॥

२४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—सविता। छन्द—त्रिष्टुप्)

यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः।
तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥१॥

इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेवा एवं तेजस्वी मरुत आदि देवता जो फल हम को प्रदान करते हैं, वह फल हमको सत्यधर्मा प्रजापति, अनुमति देवी एवं सर्यदेव भी प्रदान करें ॥१॥

२५ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि; । देवता—विष्णुः। छन्द—त्रिष्टुप्;
गायत्री; शक्वरी)

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यै र्वीरतमा शविष्ठा।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥१॥
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः।

पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥२॥

जिन दोनों विष्णु और वरुण के बल से यह लोक-लोकान्तर स्थित हैं, जिन दोनों के बल से वे अपने कर्तव्य और फल को विशेषतया दखते हैं, जिनके पराक्रम से यह संसार तीनों कालों में चेष्टायुक्त है, उनको यह होता हवि प्रदान करे ॥१॥ जिन विष्णु और वरुण की आज्ञा में यह विश्व प्रकाशित होरहा, प्राण धारण कर रहा है और अपने-अपने कर्तव्य और फलों को विशेष रूप से देखता है, उन विष्णु और वरुण को यह पूर्वाह्वान होता हवि प्रदान करे ॥२॥

२६ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः। देवता—विष्णुः। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, शक्वरी)

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥
प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥२॥
यस्योरुषु त्रिषु वि क्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतयोने पिव प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥३॥
इदं विष्णु विचक्र मे त्रेधा नि दधे पदा।
समूढमस्य पांसुरे ॥४॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
इतो धर्माणि धारयन् ॥५॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रय युज्यः सखा ॥६॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिवी व चक्षुराततम् ॥७॥
दिवो विष्णा उत वा पृथिव्या महो विष्णा उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥८॥

सर्व व्यापक विष्णु के पराक्रम को मैं ठीक-ठीक बतलाता हूं कि उन्होंने ही पृथिवी, स्वर्ग और आन्तरिक्ष की रचना की है, इनको उन्होंने तीन पैर रख कर निर्माण किया है और इनमें से सब से श्रेष्ठ स्वर्ग को स्वयं अपनाया ॥१॥ उन महान विष्णु के पराक्रमों की प्रशंसा यह है कि जैसे सिंह सर्वत्र घूमता हुआ वन में जहाँ चाहे क्षण मात्र में पहुँच जाता है, उसी प्रकार बहुत दूर होते हुए भी वे स्तुति मात्र से यहां आगमन करें ॥२॥ हे भगवान्! तीनों में विचरण करके आप हमें भी निवास की सुविधा और धनादि दें। हे अग्नि रूप विष्णु भगवान्! इस यज्ञ में होमे हुए घृत को ग्रहण करिये और यजमान को समृद्धिशाली बनाइये ॥३॥ सर्व व्यापक विष्णु ने इस संसार में विक्रमण किया। उन्होंने इसके ऊपर तीन पैर रखे और यह सारा जगत उनके तीन पैरों में ही समाप्त हो गया ॥४॥ रक्षक, दूसरों के प्रभाव में न आने वाले भगवान विष्णु ने तीन पैर रखे और तीन में ही इन तीनों लोकों को धारण कर लिया ॥५॥ सर्व व्यापक विष्णु भगवान् के कार्यों को देखो कि जिनसे वह तुम्हारे गुण धर्मों को देखता है। वह इन्द्र के योग्य सखा हैं ॥६॥ ज्ञानी, बुद्धिमान लोग उन भगवान् विष्णु के परम स्थान को देखते हैं। जैसे द्यौलोक में फैला हुआ चक्षुरूपी सूर्य है, उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त उस प्रकाश तत्व को ज्ञानी पुरुष जानते हैं। ७॥ हे विष्णु भगवान्! द्यौलोक, पृथिवी लोक और विस्तृत आन्तरिक्ष से लाये हुए धनों को अपने हाथों में ग्रहण करिये और उसे दाहिने और बाँए दोनों हाथों से प्रदान करिए ॥८॥

२७ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः। देवता—इडा। छन्द—त्रिष्टुप्)

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥१॥

जिस धेनु के चरणों में देवताओं से कामना करने वाले यजमान पवित्र होते हैं, वह सोमपृष्ठा, घृतपदी फल देने में समर्थ, संपूर्ण देवताओं से सम्बन्धित इडा (धेनु) हमारे यज्ञ को सर्वत्र प्रकाशित करें। जिस प्रकार भी हमारे किये हुए कर्म, फल को प्राप्त हों, यह धेनु वैसा ही प्रयत्न करें। २८॥

२८ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथिः। देवता-वेदः। छन्द-त्रिष्टुप्)

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥१॥

(वेद) दर्भ की मुठी हमारे लिए कल्याणकारक हो। पेड़ और घास काटने के हथियार फरसा, गड़ास हमारे लिए कल्याणकारी हों। ये देवात्मक वेदद्रुघण हवि प्रदान करने वाले यजमान के सहायक हों ॥१॥

२९ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथिः। देवता-अग्नाविष्णू। छन्द-त्रिष्टुप्)

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥१॥
अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥२॥

हे अग्नि और विष्णु! आप दोनों का यह महान् यश है कि आप दोनों गुह्य घृत को पीते हैं। आप यजमानों के घर गौ, अश्व आदि सात पशु-रत्नों को धारण करते हैं। आप दोनों की जिह्वा होमे हुए घृत को प्राप्त करें ॥१॥ हे अग्नि और विष्णु! आप दोनों का स्थान बड़ा प्रिय है। आप घृत के सांनाय्य चरु पुरोडाश आदि स्वरूपों का पान करते हैं। आप प्रत्येक घर में उत्तम स्तुति से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। आप दोनों इस घृत का पान करें ॥२॥

३० सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा:। देवता—द्यावापृथिवी, मित्र; ब्रह्मणस्पति। छन्द—बृहती)

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम्।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पति: स्वाक्तं सविता करत्॥१॥

द्यावा-पृथिवी मेरी दोनों आँखों में उत्तम अञ्जन करें। सूर्यदेव, ब्रह्मणस्पति और सविता देवता सभी हमारी आँखों की स्वस्थता के लिये प्रयत्न-शील होकर अञ्जन करें॥१॥

३१ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा:। देवता—इन्द्र:। छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य थावच्छ्रेष्ठामिद्यवञ्छूर जिन्व।
यो नो द्वेष्ट्यधर: सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु॥१॥

हे इन्द्र! आप अनेक प्रकार की रक्षाओं से हमें सुरक्षित रखें। हे धनी, शूरवीर! जो हमसे द्वेष करता हो, वह पतन को प्राप्त हो। हम जिस शत्रु से द्वेष करते हों, वह मृत्यु को प्राप्त हो॥१॥

३२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आयु:। छन्द—अनुष्टुप्)

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायु: कृणोतु मे॥१॥

सबके प्रिय, स्तुति के योग्य तरुण और आहुतियों से वृद्धि को प्राप्त होने वाले अग्नि देव के पास हम नम्रतापूर्वक हवि रूप अन्न लेकर जाते हैं। वे मेरी दीर्घ आयु करें॥१॥

३३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—मरुत: पूषा; बृहस्पति; अग्निश्च। छन्द—पंक्ति

सं मा सिञ्चन्तु मरुत: सपूषा सं बृहस्पति:।

सं मयमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

मरुत् देवता हमको पुत्रादि प्रजा और धन प्रदान करें। पूषा, ब्रह्मणस्पति और अग्नि देवता भी हमको सुसन्तति और धन धान्य से पूर्ण करें। हमें भी दीर्घायु करें ॥१॥

३४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—जातवेदाः। छन्द—जगती)

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान्जातवेदो नुदस्व।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥१॥

हे अग्नि देव! हमारे शत्रुओं को नष्ट करिये। हे जातवेद अग्ने! जो अभी हमारे प्रकट में शत्रु नहीं हैं किन्तु आन्तरिक शत्रुता रखते हैं उन्हें भी नष्ट कर दीजिये। जो हमसे युद्ध करना चाहते हैं उन्हें पतन को प्राप्त करें। आप सब देवों के प्रताप से हम सब निष्पाप होकर अदीनता से रहने योग्य हों ॥१॥

३५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—जातवेदाः। छन्द—त्रिष्टुप, अनुष्टुप्)

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान्जातवेदो नुदस्व।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१॥
इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥२॥
परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः।
अस्वं त्वा प्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥३॥

हे जातवेद अग्नि देव! आप ऐसे शत्रुओं को, जो हमारे विरुद्ध व्यवहार करते हैं, उन्हें नष्ट कर दीजिये। ऐसे शत्रु जो अभी प्रकट नहीं हुए हैं, उन्हें भी समूल समाप्त कर दें। इस राष्ट्र को समृद्धि और सौभाग्य से पूर्ण

करिये। सब देवतागण इसका अनुमोदन करें ॥१॥ हे स्त्री! तेरी सौ नाड़ियाँ और सहस्र धमनियाँ हैं, उनके मुख को पत्थर से बन्द करता हूं, दबाता हूं, तेरी जननेन्द्रिय से जो परे हैं उन्हें समीप करता हूं, जिससे संतान तेरा तिरस्कार न करे। तुझे प्राणवान संतान देता हूँ और तेरा आवरण पत्थर करता हूं ॥२॥

३६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अक्षि, मनः। छन्द—अनुष्टुप)

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥१॥

हे पत्नी! तेरे और मेरे दोनों के नेत्र मधुर भाव से युक्त हों। हम दोनों के नेत्र के आगे के भाग में अञ्जन लगे और तू मुझे अपने हृदय में धारण कर। हम दोनों समान मन वाले हो जाँय ॥१॥

३७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वासः। छन्द—अनुष्टुप्)

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥१॥

हे स्वामिन्! तुम मेरे ही रहो, इसलिए मैं इस मंत्र द्वारा धारण किये हुये वस्त्र से तुम्हें बाँधती हूं। तुम मुझे छोड़ अन्य स्त्री का नाम भी न लो ॥१॥

३८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वनस्पतिः, (आसुरी)। छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्)

इदं खनामि भेषजं मांपश्यमभिरोरुदम्।
परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥१॥
येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि।
तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥२॥

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।
प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥३॥
अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद ।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥४॥
यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्य स्तिरः ।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥५॥

इस सोवर्चल नाम की ओषधि को वशीकरण के लिए खोदती हूँ। यह ओषधि पति को वशीभूत करने में समर्थ है। यह पति के अन्य नारी-गमन को रोकती हुई उसे वापिस बुलाती है ॥१॥ इस आसुरी नामक ओषधि ने जिस गुण द्वारा सब देवों के ऊपर इन्द्र को अधिक प्रभावशाली बनाया, उसी से मैं तुझे प्रभावशाली बनाती हूँ, जिससे मैं तेरी प्रिय धर्मपत्नी बन कर रहूँगी ॥२॥ हे ओषधे! (शङ्खपुष्पी) तू सोम को वश करने के लिए जाती है तथा सूर्य की ओर भी जाती है। तू सभी देवताओं को वश करने में समर्थ है। पति को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये इस ओषधि से निवेदन करती हूं ॥३॥ हे स्वामिन्! तुम यहाँ कुछ मत कहो विद्वानों के समाज में ही बोलो। तुम मुझे असाधारण रूप से प्राप्त हो। तुम मेरे सामने अन्य स्त्री का नाम भी न लो ॥४॥ हे स्वामिन्! यदि तुम्हें कहीं जाना पड़े अथवा कोई नदी मेरे और तुम्हारे मध्य में आकर मुझसे तुम्हें पृथक कर दे तो यह शङ्खपुष्पी तुम्हें आबद्ध करती सी मुझ स्नेहमयी के सामने ले आवे ॥५॥

३९ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—प्रस्कण्वः। देवता—मंत्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्।)

दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥१॥

सुन्दर गमन वाले, ओषधियों को प्रवृद्ध करने वाले, जलों में मध्य

रूप, विश्व को तृप्त करने वाले, वर्षा की कामना वाले प्राणियों को तृप्त करने वाले सरस्वान् देवता को इन्द्र हमारे गोष्ठ में प्रतिष्ठित करें ॥१॥

४० सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः । देवता—सरस्वान् । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥१॥
आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वांसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥२॥

जिनके कर्म से सब जल मिलते हैं, सब पशु जिनका अनुगमन करते हैं, वृष्टि और पुष्टि के जो आश्रय रूप हैं उन सरस्वान् देवता को हम रक्षा के लिए आहूत करते हैं ॥१॥ हविदाता के संतोष के लिए उसके सामने जाने वाले, उसे इच्छित फल देने वाले, धन स्थान में प्रतिष्ठित, धन को पुष्ट करने वाले, यजमानों को अन्न देने की इच्छा वाले सरस्वान् देव को हम आहूत करते हैं ॥२॥

४१ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः । देवता—श्येन । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥१॥
श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥२॥

सब प्राणियों के द्रष्टव्य, प्रशंसनीय गति वाले, कर्म फल दिखाने वाले सूर्य मरुदेशों में भी जलवृष्टि करें। वे अपने मित्र इन्द्र सहित हमारा मंगल करने वाले हों, नवीन गृह बनाने के स्थान में आगमन करें ॥१॥ अनन्त रश्मियों वाले, सुन्दर गति वाले, अपरिमित फलों से युक्त

करने वाले, प्रशधारक सूर्य हमको चिरस्थायी करे। हमने जो धन अग्नि में होमा है, वह पितरों को स्वधा के समान हो ॥२॥

४२ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः। देवता—सोमारुद्रौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥१॥
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु कृतमेनो अस्मत् ॥२॥

हे सोम! हे रुद्रो! हमारे घर में व्याप्त अमीवा रोग और विपूचिका को नष्ट करो। रोग की कारण भूत पिशाची को हमसे दूर ले जाओ और हमारे पाप को भी पृथक् करो ॥१॥ हे सोम, हे रुद्रो! हमारे शरीरों में व्याप्त पाप को हमसे पृथक् करो, रोगों को दूर करने के लिए ओषधियों को शरीर में रमाओ ॥२॥

४३ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः। देवता—वाक्। छन्द—त्रिष्टुप्)

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् ॥१॥

हे पुरुष! तू व्यर्थ ही निंदित हुआ है। तेरे सम्बन्ध में स्तुति रूप और निंदा रूप जो दो प्रकार की वाणी कही जाती है, तू उन दोनों प्रकार की वाणियों को प्रसन्न मन से ग्रहण कर। उन दोनों वाणियों की तीन अवस्थायें वाणी प्रयोग करने वाले में होती हैं और सम्बन्धित व्यक्ति में उनकी एक अवस्था होती है ॥१॥

४४ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः। देवता—इन्द्रः, विष्णु। छन्द—त्रिष्टुप्)

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥१॥

हे इन्द्र ! हे विष्णो ! तुम्हारा पराभव कभी नहीं हुआ, तुम सदा विजय पाते हो। इन इन्द्र और विष्णु में एक भी नहीं हारा। हे इन्द्र, विष्णो ! तुम राक्षसों से जिस लोक, वेद, वाणी, वस्तु के लिये युद्ध करते हो, उसे अपने अधिकार में कर लेते हो ॥१॥

४५ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः। देवता—ईर्ष्यापनयनम्। छन्द—अनुष्टुप्)

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम्।
दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥१॥
अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक्।
एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥२॥

सब के हित साधक जनपद, समुद्र और दूर देश से प्राप्त हुई सक्तमथ औषधि को मैं जानता हूँ। वह औषधि क्रोध को दूर करने में समर्थ है ॥१॥ ईर्ष्या का निवारण करने वाले हे देव ! तुम मेरे सब कार्यों को भस्म करते हुये, जैसे अग्नि को जल से शान्त करते हैं, वैसे ही इस ईर्ष्यालु की ईर्ष्या को शान्त करो ॥२॥

४६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सिनीवाली। छन्द—अनुष्टुप, त्रिष्टुप्)

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१॥
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥२॥
या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥३॥

हे सिनीवालि ! तुम अमावस्या की अधिष्ठात्री हो। तुम देवताओं

की स्वसा और समान कार्य वाली होने के कारण देवताओं की बहिन हो। तुम हमको पुत्र आदि दो। तुम हमारी हवि को ग्रहण करो ॥१॥ हे ऋत्विज ! हे यजमान ! यह सिनीवाली सुन्दर हाथ और सुशोभित उंगलियों से युक्त है। उस प्रजा का पालन करने वाली को हवि प्रदान करो ॥२॥ यह सिनीवालि इन्द्र के सामने जाकर उनकी पूजा करती है। यह प्रजाओं के पालने वाली है। हे देवपत्नि ! तू अपने स्वामी इन्द्र को धन की प्रेरणा कर। हमने तुझे हवि प्रदान की है ॥३॥

४७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—कुहूः। छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१॥

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥२॥

चन्द्रमा हीन अमावस्या सुन्दर कर्म और श्रेष्ठ आह्वान वाली है, मैं उसे यज्ञ, कर्म आदि में आहूत करता हूं। वह मुझे वरणीय धन और पराक्रमी पुत्र प्रदान करे ॥१॥ वह कुहूदेवी सब भूतों का और अमृत का पोषण करने वाली है, वह अमृत रूप जल को पुष्ट करती है। वह हमारे यज्ञ को जानती हुई हमारे आह्वान को सुनें और हम में धन का पोषण करें ॥२॥

४८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—राका। छन्द—जगती)

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१॥
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ॥२॥

पूर्णचन्द्र वाली पूर्णिमा को राका कहते हैं। मैं उस राका को सुन्दर मंत्रों से आहूत करता हूँ। वह हमारी स्तुति सुनें और हमारे अभिप्राय को जानें। जैसे वस्त्र आदि सीने का कार्य योग्यता से होता है वैसे ही यह प्रजनन कर्म को करती हुई मुझे यशस्वी पुत्र दे ॥१॥ हे राके! तुम अपनी कल्याणमयी सुबुद्धियों द्वारा हविदाता को धन देती हो। तुम उन्हीं बुद्धियों सहित हमारे पास आकर धनों की पुष्टि करो ॥२॥

४९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—देवपत्न्यः। छन्द – जगती; पंक्ति)

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥१॥
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥२॥

देवपत्नियाँ हमको अन्नादि प्राप्त कराने की और हमारी रक्षा की इच्छा सहित आवें। पृथिवी पर जो देवी निवास करती हैं और जो अन्तरिक्ष में रहती हैं, वे हमको सुख प्रदान करें ॥१॥ देवपत्नियाँ हमारी रक्षा करें। इन्द्राणी, वरुणानी, रोदसी, अग्न्यानी और अश्विनीकुमारों की पत्नी हमारे आह्वान को सुनें और पत्नियों के ऋतुकाल में हवि ग्रहण करें ॥२॥

५० सूक्त

(ऋषि—अंगिराः (कितववधकामः)। देवता—इन्द्र।
छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्; जगती)

यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति।
एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति ॥१॥
तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम्।
समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥२॥
ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥३॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्नाकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥४॥
अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।
अवि वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥५॥
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः॥६॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुध पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम् ॥७॥
कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो में सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥८॥
अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।
स मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ॥९॥

जैसे वैद्युत अग्नि वृक्षों को नित्य प्रति भस्म करता है, वैसे ही मैं समस्त जुआरियों का पासों के द्वारा हनन करता हूं ॥१॥ जुए में जल्दी करने वाले और विलम्ब वालों में मैं श्रेष्ठ हूँ। द्यूत को न छोड़ने वालों का भाग मुझ धारण करने वाले को सब ओर से प्राप्त हो। मैं कृत नामक पासा हूं ॥२॥ स्तोताओं को अपना धन देने वाले स्वावसु अग्नि की मैं स्तुति करता हूं। वे हमको कृत (सत्कर्म) नामक पासा दें। जैसे अश्वों के द्वारा रथ से अन्न लाते हैं, वैसे ही शत्रु की सम्पत्ति को प्राप्त करूं ॥३॥ हे इन्द्र! मैं जिस का वरण करूं, उसे तुम्हारी सहायता से जीतूं। जो हमको जुए में जीतना चाहें उनका तुम उच्चाटन करो और हमारे पास बहुत-सा धन आने दो। तुम शत्रुओं की विजय को रोको ॥४॥ हे पीड़ा देने वाले शत्रु! तुझ पर मैं ही विजय प्राप्त करूंगा। भेड़ को जैसे भेड़िया मथ डालता है, वैसे ही मैं तेरे कृत-पाश का मन्थन करता हूँ ॥५॥ खिलाड़ी अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय पाता है क्योंकि वह कृत-पाश को ही खोजता है। देवताओं की कामना वाला वह पुरुष उस धन को देव-कार्य में ही लगाता है ॥६॥ हे इन्द्र! हम यवादि द्वारा भूख को शांत करें, दरिद्रता से प्राप्त दुर्बुद्धि से पशुओं के

द्वारा पार हों। हम शत्रुओं से न हारें और उन्हें पासों के द्वारा जीत लें ॥७॥ मेरे दक्षिण हाथ में कृत (पुरुषार्थ) है और वाम हस्त में विजय है। इन दोनों पासों से मैं गो, अश्व, धन, भूमि और सुवर्ण आदि का विजेता होऊँ ॥८॥ दुग्धवती गौ के समान फलवती क्रिया को कृत (पुरुषार्थ) की धारा से बाँधो। उसके द्वारा तुम मुझे विजयी करो ॥९॥

५१ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—इन्द्राबृहस्पती। छन्द—त्रिष्टुप्)

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥१॥

बृहस्पति नीचे ऊपर, पश्चिम आदि सब ओर से हमारी रक्षा करें। इन्द्र पूर्व और मध्य से रक्षा करें और सखाभूत वे इन्द्र अपनी स्तुति करने वालों को अत्यन्त ऐश्वर्य दें ॥१॥

५२ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वा। देवता-सांमनस्यम्, अश्विनौ। छन्द-जगती)

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१॥
सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२॥

हम सब एक मत हों, हमारे प्रतिकूल बात करने वाले भी हमारे अनुकूल मत वाले हों। हे अश्विद्वय! तुम अपने और पराये दोनों प्रकार के मनुष्यों को समान मति वाला बनाओ ॥ १ ॥ हम अपने मन से दूसरे के मन को जोड़ें, हम मिलकर कार्य करें, देवताओं की प्रीति वाले मन हम पृथक् न हों। मन का उच्चाटन करने वाले शब्द न हों और इन्द्र का वज्र हमारे ही ऊपर पतित न हो ॥२॥

५३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ।
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति; अनुष्टुप्)

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥१॥
सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम्।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥२॥
आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम्।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥३॥
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात्।
सप्तऋषिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसः वहन्तु ॥४॥
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥५॥
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥६॥
उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥७॥

हे अग्ने ! तुम हवि वहन द्वारा देवताओं का पालन करते हो। तुम यम के परलोक रूप भय से इस बालक को बचाने में समर्थ हो। तुम्हारे प्रभाव से अश्विद्वय इसकी मृत्यु के कारणों को हटावें ॥ १ ॥ हे प्राणापान आयु की कामना वाले इस पुरुष के शरीर में रहो। हे पुरुष ! यह प्राणापान तेरे साथ रहें। तू सौ वर्ष तक का जीवन फिर धारण कर। अग्नि देव तेरी रक्षा करें ॥२॥ हे आयु की कामना वाले पुरुष ! तेरा जीवन समाप्त होने को था, उसे प्राणापान पुनः प्राप्त करावें। मैं तेरी आयु को अग्निदेव के पास से लाई गई मंत्र शक्ति द्वारा बढ़ाता हूँ ॥३॥ आयु की कामना वाले इस पुरुष को प्राणापान न त्यागें। मैं इसे

रक्षा के लिये सप्तर्षियों को देता हूँ। वे इसे वृद्धावस्था तक सुख से रखें ॥४॥ हे प्राणापान ! जैसे बैल गोष्ठ में घुसते हैं, वैसे ही तुम इस आयुष्काम के शरीर में घुसो। यह पुरुष वृद्धावस्था तक जीवित रहे ॥५॥ हे आयु की कामना करने वाले ! तेरे यक्ष्मा रोग को हटाते हुये आयु को लाते हैं। अग्नि देवता इसे शतायुष्य करें ॥६॥ हम पाप से पार होते हुये स्वर्ग में चढ़ रहे हैं। सब देवताओं में श्रेष्ठ सूर्य के पास पहुंच रहे हैं ॥ ७ ॥

५४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा, भृगु; देवता-ऋक्सामनी; इन्द्रश्च। छन्द-अनुष्टुप्)

ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते।
एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ॥१॥
ऋचं साम यदप्राक्ष हविरोजो यजुर्बलम्।
एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ॥२॥

हम पठित ऋग्वेद और यजुर्वेद को पूजते हैं। हम ऋत्विज् और यजमान ऋग्वेद और सामवेद से यज्ञ कर्म को करते हैं। यही ऋक् और साम देवताओं को यज्ञ पहुँचाते हैं ॥१॥ मैंने ऋग्वेद से हवि को, साम से ओज को, यजुर्वेद से बल को पूछा है। हे इन्द्र ! इस प्रकार पठित वेद मुझ अध्यापक का हनन न करता हुआ इच्छित फल प्रदान करे ॥ २ ॥

५५ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता-इन्द्र। छन्द-उष्णिक्)

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥१॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे जो स्वर्गलोक के नीचे के मार्ग हैं, उनके द्वारा तुक प्राणियों को कर्मों में लगाते हो, उन्हीं मार्गों द्वारा हम को सुखी रखो ॥१॥

५६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता-वृश्चिकादयः वनस्पतिः; ब्रह्मणस्पतिः; ।
छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ।
तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥१॥
इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः ।
सा विह्रुतस्य भेषजयथो मशकजम्भनी ॥२॥
यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि ।
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥३॥
अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥४॥
अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ।
विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥५॥
न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।
अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥६॥
अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः ।
सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥७॥
य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्ये न च ।
आस्ये न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥८॥

तिरश्चिराज नामक सर्प के विष को, काले सर्प के, नाग और कंकपर्वा के विष को यह मधुक नाम्नी ओषधि दूर करदे ॥ १ ॥ यह मधुक ओषधि मधु से उत्पन्न होने के कारण ही मधुमयी है। यह क्रूर विष को दूर करने और काटने वाले जीवों को मारने में समर्थ है ॥२॥ तेरे जिस अङ्ग को सर्प ने दंशित किया है, हम उस से विष को दूर करते हैं और अल्प वीर्य मच्छर के विष को भी प्रभावहीन करते हैं। ३॥

हे ब्रह्मस्पते ! यह पुरुष अपने अंगों को विष के कारण ऐंठ रहा है, इसके जोड़ ढीले पड़ गये हैं। तुम इसके अकड़े हुये अंगों को नमाई हुई सींक को सीधा करने के समान सीधा करो और विष को दूर कर दो ॥४॥ इस शर्कोटक नामक सर्प के विष को सर्प सहित मैंने नष्ट कर दिया है ॥५॥ हे विच्छू ! तेरी भुजा, शिर और मध्य में भी किसी को संताप देने वाला बल नहीं, फिर तू दुर्बुद्धि वश उस स्वल्प विष को पूँछ में लिये क्यों फिरता है ? ॥६॥ हे सर्प ! तुझे चीटियाँ खातीं और मोरनियाँ ही टूक-टूक कर देती हैं। हे ओषधियो ! इस शर्कोटक के विष को प्रभावहीन बनाओ ॥ ७ ॥ हे बिच्छू ! तेरी पूँछ में ही थोड़ा सा विष है। फिर भी तू पूँछ और मुख दोनों से ही प्रहार करता है ॥८॥

५७ सूक्त

(ऋषि – वामदेवः । देवता — सरस्वती । छन्द — जगती)

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥१॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ॥२॥

मेरा जो अंग इच्छित वस्तु के अभाव में व्यर्थ याचना के कारण व्याकुल हो रहा है और मैं विक्षिप्त-सा हो गया हूँ, मेरे उस अंग को सरस्वती स्वाभाविक दिशा प्राप्त करावें ॥ १ ॥ वरुण के लिये सात नदियाँ प्रवाहित हैं। आकाश रूप पिता के लिये और प्रमुख देवताओं के लिये पुत्ररूप मनुष्य हवि प्रदान आदि कर्म करते हैं। आकाश-पृथिवी मनुष्यों के मंगल के लिये सदा यत्नशील रहते और अन्न जल से सम्पन्न करते हैं ॥२।

५८ सूक्त

(ऋषि— कौरुपथिः । देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द—जगती; त्रिष्टुप्

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥१॥

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥१॥

हे सोमपायी इन्द्र और वरुण ! तुम इस प्रसन्नताप्रद सोम का पान करो । तुम्हारा रथ देवताओं की कामना करने वाले सोमयुक्त यजमान के घर के पास पहुँचा दे ॥१॥ हे वरुण, हे इन्द्र ! तुम इच्छित फल की वर्षा करने वाले हो । तुम्हारे लिये यह सोम रस चमस आदि पात्रों में सींचा गया है, तुम इस बिछाये हुये कुशा रूप आसन पर बैठ कर इच्छित फल की वर्षा करने वाले सोम को पियो । २ ।

५६ सूक्त

(ऋषि—बादरायणि । देवता—अरिनाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्)

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
वृक्षइव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥१॥

हम निंदनीय बात नहीं करते, परन्तु जो कोई हमको निंदनीय वाक्य कहे और कठोर वाक्यों द्वारा हमारी बारम्बार निन्दा करे, वह शत्रु विद्युत से सूखे हुए वृक्ष के समान अपने मूल सहित सूख जाय । पिता पुत्र आदि सभी शुष्क हो जाय ॥१॥

६० सूक्त (छठवां अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-गृहाः; । वास्तोष्पतिः । छन्द-त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभित मत् ॥१॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥२॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥३॥

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥४॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूता गृहेषु नः ॥५॥
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥६॥
इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेण सह भूयांसो भवता मया ॥६॥

मैं मित्र भाव से युक्त स्नेहमय नेत्रों से देखता हुआ, अन्न को धारण किये हुये धन का धारण करने वाला शोभन बुद्धि से धनादि सम्पत्ति से प्रसन्न हो स्तुति करता हुआ अपने घरों को प्राप्त हो रहा हूँ। हे गृहो ! मुझ गृह स्वामी के साथ सुखी होओ। मुझ दूर से आने वाले से भय मत मानो ॥१॥ अन्न, रस, दुग्धादि से समृद्ध यह सुखदायक घर मुझ प्रवास से आने वाले को अपना स्वामी मानें ॥२॥ घर से दूर गया मनुष्य अपने जिन सुन्दर पदार्थों से सम्पन्न घरों की याद करता है, हम उन घरों को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं। वे घर मुझ प्रवास से आने वाले को अपना स्वामी मानें ॥ ३ ॥ हे गृहो ! तुम बहुत से धन और मधुर पदार्थों से सम्पन्न होओ। भूख प्यास की व्याकुलता को व्याप्त न करो। अनुज्ञा के लिये प्रार्थना किये गये तुममें रहने वाले मनुष्य धनादि से सम्पन्न रहें तुम प्रवास से आने वाले मुझसे भयभीत न हो ॥४॥ हमारे गृहों में भेड़, बकरी, गो, अन्नादि सभी उपभोग्य वस्तुयें उपहूत हों। ५॥ ॥५॥ हे गृहो ! तुम सुन्दर भाग्यशाली होओ, अन्न धन से सम्पन्न होओ ! तुममें बोली जाने वाली वाणी सत्य और प्रिय हो। तुममें निवास करने वाले हर्ष और मोद में रहें। भूखे प्यासे मनुष्य तुममें न रहें। तुम हमसे भयभीत न हो ॥६॥ हे गृहो ! तुम मुझ प्रवासी के अनुगामी न बनो, तुम इसी प्रदेश में स्थित रहो। तुम पुत्रादि को पुष्ट करो। मैं कल्याण करने वाले धन को देश-देशान्तर से कमा कर लाऊँगा। तुम उस धन के साथ अधिक तेजस्वी होना ॥७॥

६१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता-अग्निः छन्द-अनुष्टुप्)

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥१॥
अग्ने तपस्तप्यामह उपः तप्यामहे तपः।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधस ॥२॥

हे अग्ने ! तुम्हारे समिधादान आदि से जो कर्म करना है, उसे हम तुम्हारे पास करते हैं। कृच्छ्रचान्द्रायण आदि हम आपकी सेवा करते हुये सम्पन्न करते हैं। हम उस कर्म द्वारा सुन्दर धारणा शक्ति वाले, वेद शास्त्रों का अध्ययन करने वाले और प्रसन्न मन वाले और दीर्घायु हों ॥१॥ हे अग्ने! तुम्हारे पास ही हम शरीर को सुखाने वाले तप को करते हैं, उसके द्वारा हम स्मृतियों को सुनते हुये धारणा शक्ति से सम्पन्न और दीर्घ आयु वाले हों ॥२॥

६२ सूक्त

(ऋषि—मरीचिः काश्यपः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती)

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥१॥

यह गार्हपत्य अग्नि प्रवृद्ध बल से युक्त है। वे हविर्दान द्वारा बड़े-बड़े देवताओं का पालन करते हैं। वे सचराचर विश्व के स्वामी ऋत्विजों द्वारा आगे स्थापित किये जाते हैं। जैसे रथ वाला पुरुष प्रजा को स्वाधीन कर सकता है, वैसे ही यह प्रजा को स्वाधीन करते हैं। यह उत्तर वेदी में विराजमान अग्नि मेरे शत्रुओं को पद-दलित करावें ॥१॥

६३ सूक्त

(ऋषि—मरीचिः काश्यपः देवता—जातवेदाः। छन्द—जगती)

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात्।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः । १ ।

यजमान के हविर्भाग को देवताओं के लिए सहने वाले, शत्रुओं पर विजय पाने वाले, द्युलोक में निवास करने वाले अग्नि देव को हम उक्थों द्वारा आहूत करते हैं। वे हमें विपत्तियों से पार करें और दुर्गति देने वाले पापों को पूर्ण रूप से भस्म कर डालें ।।१।।

६४ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—आपः; अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

इद तत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ।।१।।
इद यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ।।२।।

आकाश-मार्ग से आने वाले कौए ने मेरे अंगों पर आघात किया, उसके कारण प्राप्त हुए दुर्गतिप्रद पाप से यह अभिमंत्रित जल मुझे बचादे ।।१।। हे मृत्यु ! इस कौए ने तेरे मुख से मेरे देह को छुआ है, उससे प्राप्त पाप से अग्नि मुझे छुड़ावें । २।।

६५ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः । देवता—अपामार्गः । छन्द—अनुष्टुप्)

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ।।१।।
यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ।।२।।
श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत्सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ।।३।।

हे अपामार्ग ! तू पाप को धोने का साधन रूप और प्रतीचीन फल में प्रवृद्ध है। मेरे सब दोषों को पूरी तरह मिटा ।।१।। हे अपामार्ग ! जो

पाप हमने हो गया है, जिस पाप बुद्धि से हम दुःखदायक पाप को कर चुके हैं, उसे हम सब ओर से तेरे द्वारा दूर करते हैं ॥२॥ हे चिरचिटे! कुत्सित नख वाले, काले पीले दाँत वाले और व्याधिग्रस्त पुरुष के साथ हमने जो भोजनादि किया है, उससे उत्पन्न दोष को तेरे द्वारा दूर करते हैं ॥३॥

६६ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-ब्राह्मणम्। छन्द-त्रिष्टुप्)

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु।
यदस्रवन् पशवं उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥१॥

मेघाच्छन्न अन्तरिक्ष में जो वेद पढ़ा गया, तीक्ष्ण आँधी में वृक्ष के नीचे बैठ कर, हरे धान्यों के पास, अथवा पशुओं के पास पढ़ा गया वेद (फल नष्ट होने पर) हम वेदपाठियों को पुनः प्राप्त हो ॥१॥

६७ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आत्मा। छन्द—बृहती)

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥१॥

मुझे इन्द्रियाँ पुनः प्राप्त हों, जीवात्मा मुझ में फिर प्रवेश करे, धन मुझे फिर प्राप्त हो, वेद भी मुझ में पुनः व्याप्त हो और हवन वेदियों में रमने वाली अग्नियाँ फिर समृद्ध हों ॥१॥

६८ सूक्त

(ऋषि-शन्तातिः। देवता-सरस्वती। छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्; गायत्री)

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥१॥
इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत्।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥२॥

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ॥३॥

हे सरस्वते ! तुम गार्हपत्य आदि स्थानों में आहुत हव्य को सेवन करो और हम को पुत्रादि प्रदान करो ॥१॥ हे शारदे ! तुम्हारे लिये जो घृतयुक्त हवि दी जा रही है, उसे पितरों को प्रेरित करो । तुम्हारे लिए दी गई मंगलमय हवि से हम मधुमय अन्न से समृद्ध हों ॥२॥ हे वाणी की देवी सरस्वति ! हम तुम्हारे दर्शन से कभी वंचित न हों । तुम हमको सुन्दर सुख देने वाली होओ, तुम हमारे रोगादि को पूरी तरह शमन करने वाली बनो ॥३॥

६९ सूक्त

(ऋषि शन्तातिः । देवता—सुखम् । छन्द—पंक्तिः ।

शं नो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥१॥

हे वायो ! हमारे लिये सुख देते हुए विचरो । सुख के देवता हम को सुख देने वाला ताप प्रदान करें । दिन, रात्रि और उषा हमारे लिये कल्याण करने वाले हों ॥१॥

७० सूक्त

ऋषि—अथर्वा । देवता—श्येनादयो मंत्रोक्ताः । छन्द त्रिष्टुप् जगती; अनुष्टुप्)

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥१॥
यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् ।
इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति ॥२॥
अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव ।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥३॥

अपाञ्चौ य उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥४॥
अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥५॥

जो शत्रु अभिचार मंत्रों से होम कर रहा हो, जो हमारी हिंसा का संकल्प कर रहा हो, तो उस शत्रु को, मन, वाणी, देह से किये हुए कर्म के सत्य होने से पूर्व ही पाप देवता निर्ऋति मृत्यु के सहयोग से नष्ट करें ॥१॥ पाप देवता निर्ऋति और राक्षस उस शत्रु के कर्म के यथार्थ फल को असत्य करदें। इस शत्रु के कर्म को इन्द्र के प्रेरित देवता नष्ट करदें और शत्रु का हम को हिंसित करने वाला कर्म फलप्रद न हो ॥२॥ अजिर और अधिराज नामक मृत्यु-दूत युद्ध चाहने वाले शत्रु के होम को नष्ट करें। जो हमारे सामने आकर हमारी हिंसा करना चाहता है उसके घृतयुक्त कर्म को असत्य करदें ॥३॥ हे अभिचार कर्म में प्रयुक्त शत्रो! हवनादि में युक्त तेरी दोनों भुजाओं को पृष्ठ भाग में बांधता हुआ, तेरे मंत्रोच्चारण वाले मुख को भी बांधता हूं। इस प्रकार भुजा और मुख बंध जाने पर मैं तेरे कर्म को भी अग्नि के कोप से नष्ट करूंगा ॥४॥ हे अभिचार कर्म में प्रयुक्त शत्रो! होम में लगी हुई तेरी दोनों भुजाओं को पीठ की ओर बांधता हूं। तेरे मंत्रयुक्त मुख को भी बांधता हूं। हवियों से सिद्ध होने वाले तेरे अभीष्ट को भी मैं अग्नि के विकराल क्रोध से नष्ट करूंगा ॥५॥

७१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्)

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥१॥

हे मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्ने! तुम यज्ञादि के बाधक राक्षसों को प्रतिदिन मारते हो। अतः राक्षसों को मारने के लिए ही हम तुम्हें सब ओर से धारण करते हैं ॥१॥

७२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप; त्रिष्टुप्)

उत् तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ।१॥
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ।२॥
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रृतं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥

हे ऋत्विजो ! बैठे न रहो । बसंत आदि ऋतु में होने वाले यज्ञ में इन्द्र के भाग को देखो । यदि वह न पका हो तो, जब तक वह पके तब तक इन्द्र को स्तुतियों से तृप्त करते रहो और पक गया हो तो अग्नि में इन्द्र के लिये आहुति दो ॥१॥ हे इन्द्र ! दधिधर्म नामक हवि पक गई अत शीघ्र यहाँ आओ । आधे से कुछ ही कम मार्ग में सूर्य पहुंच चुके हैं । अभिषुत सोमों को लिये हुये ऋत्विज, पुत्रों द्वारा गृहपति की उपासना करने के समान तुम्हारी उपासना करते हैं ॥२॥ यह हवि दुध रूप से गौ के ऐन में पकती है । इस समय दही की अवस्था को प्राप्त होने के लिये भी यह अग्नि में पक रहा है । मैं जानता हूं कि यह दधि-कर्म ठीक प्रकार पका है । हे कर्मवान् वज्रिन् ! तुम इस सोम युक्त हवि का पान करो ॥३॥

७३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—घर्मः अश्विनौ, प्रत्यृचं मंत्रोक्ताः वा ।
छन्द—जगती; बृहती; त्रिष्टुप्)

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु ।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥१॥
समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥२॥

स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ।३।
यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥४॥
तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पात पयस उस्रियायाः ।५।
उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥६॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ।७।
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥८॥
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥९॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥१०॥
सूयवसाद् भगवती हि भूया अथा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥११॥

हे अश्विद्वय ! तुम इच्छित फलवर्षक हो । तुम आकाश में स्थित देवताओं के नेतारूप हो । पात्र में रखा हुआ घृत भले प्रकार पक गया है और अध्वर्युओं ने दूध भी दुह लिया है । अब हम स्तोता तुम्हें हवि से पूर्ण यज्ञों में आहूत करते हैं ॥१॥ हे अश्विद्वय ! अग्नि प्रदीप्त हो गए, तुम्हारे लिये रखा गया घृत उनके द्वारा तप गया । इसलिये हवि-भक्षणार्थ यहाँ आओ हे इच्छित फलवर्षक अश्विद्वय ! इस कर्म में गौऐं बहुत-सा दूध दे रही हैं । तुम्हारी स्तुति करते हुये होता आनन्द विभोर हो रहे हैं ॥२ । प्रवर्ग्य नामक यज्ञ अश्विनीकुमारों के लिये हुआ है ।

अश्विनीकुमारों के पीने का जो चमस रूप पात्र है, प्रत्येक देवता उसी को अग्नि के मुख से चाटते हैं ।।३।। हे अश्विद्वय ! घृत को उत्पन्न करने वाला दूध यज्ञ पात्र में डाल दिया है, यह दूध तुम्हारा भाग है । इसलिये तुम यहाँ आकर इस यज्ञ के पूर्ण करने वाले होओ और इस तपे हुये घृत का पान करो ।।४।। हे अश्विद्वय ! तुम दोनों में यह घृत व्याप्त हो । अध्वर्यु तुम्हें हवि प्रदान करे । तुम दूध, दही और घृत देकर मधु के समान तृप्त करने वाले दूध का पान करो ।।५।। हे अध्वर्यो ! तुम धर्मदुघा गौ के दूध को तप्त घृत में डालो । वरण करने योग्य सूर्य ने दुःख से रहित स्वर्ग को प्रकाशमय किया है, वह उषा के जाने को ध्यान में रखते हुये अत्यन्त तेजस्वी लग रहे हैं ।।६।। मैं भले प्रकार दुही जाने योग्य गौ को बुलाता हूँ, मंगलमय हाथ वाला अध्वर्यु उसका दोहन करे । सर्व प्रेरक सविता देव उस सव उपनाम वाले दूध को हमारे लिये दें ।।७।। धनों का पोषण करने वाली गौ बछड़े की कामना से युक्त हुई 'हिं' शब्द करती हुई आवे और अश्विनीकुमारों के लिये दूध का दोहन करे । वह गौ हमारे ऐश्वर्य के निमित्त समृद्धि को प्राप्त हो ।।८।। हे अग्ने ! तुम सब याज्ञिकों के घर जाते रहते हो । सब तुम्हारी सेवा करने वाले हैं । तुम मेरी भक्ति की ओर लक्ष्य कर आओ और शत्रु-सेनाओं को नष्ट कर उसके धन को हमारे निमित्त लाओ ।९।। हे अग्ने ! हमको बहुत-सा ऐश्वर्य प्रदान करने को उदार बनो । तुम्हारे तेज उच्चगामी हों । पति-पत्नी के कर्म को तुम समान बनाओ ।।१०।। हे धर्मदुघे ! तू सुन्दर तृण भक्षण करती हुई भाग्यवती हो । हम भी भाग्यवान हों । तू तृण भक्षण करती हुई विचरण कर और शुद्ध जल का पान कर ।।११।।

७४ सूक्त (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः । देवता—मंत्रोक्ताः, जातवेदाः ।
छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम ।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ।।१।।

विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् ।
इदं जघन्या मासमा च्छिनद्मि स्तुकामिव । २॥
त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम् ।
अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि ॥३॥
व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥४॥

हम सुनते हैं कि गण्डमालाओं की माता काले रंग की पिशाची है । इन कष्टसाध्य गण्डमालाओं को मैं अथर्वा के रुद्रात्मक शर से बींधता हूं ॥१॥ मुख्य उभरी हुई कष्टसाध्य गण्डमाला को भी बींधता हूँ, सुसाध्य गण्डमाला को तथा स्वल्प प्रयत्न से दूर हो जाने वाली गण्ड-माला को भी मैं बींधता हूँ ॥२॥ हे ईर्ष्यावान् पुरुष ! मैं तेरे स्त्री विषयक क्रोध को शांत करता हूं ॥३॥ हे अग्ने ! इस अनुष्ठीयमान कर्म द्वारा पूजित होकर हमारे घर में प्रदीप्त रहो । हम अपने पुत्र पौत्रादि के सहित तुम्हारी आराधना करते हैं ॥४॥

७५ सूक्त

(ऋषि—उपरिबभ्रवः । देवता—अघ्न्याः । छन्द—त्रिष्टुप्; पंक्तिः

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥१॥
पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः ।
उप मा देवीर्देवेभिरेत । इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥२॥

हे धेनु ! तुम सुन्दर तृण वाले भूखण्ड में तृण भक्षण करती हुई, पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न हुई, निर्मल जल पान करती हुई, चोरों द्वारा हरण न की जाती हुई. व्याघ्र आदि से अहिंसित रहो । ज्वराभिमानी देवता रुद्र का बाण तुम पर न पड़े ॥१॥ हे गौओं ! तुम दूध देकर प्रसन्न करने वाली हो । तुम अपने गोष्ठ को जानती हो । तुम सब अपने बछड़ों सहित मेरे पास आओ और हमारे घर, गोष्ठ और गृहपतियों को भी दूध-घृत से युक्त करो ॥२॥

७६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अपचिद् भैषज्यम्; प्रभृति।
छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप् उष्णिक्)

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः।
सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥१॥
या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः।
विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः ॥२॥
यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्य मवतिष्ठति।
निरास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः ॥३॥
पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम्।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ॥४॥
विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे।
कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ॥५॥
धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥

गन्डमालाऐं पूययुक्त और पीड़ाप्रद होती हैं। यह मन्त्र और औषधि के द्वारा नाश को प्राप्त हों। यह तूलादि रूप सेहू से भी अधिक निर्वीर्य हैं और लवण से भी अधिक बहने वाली हैं। यह अपचियाँ अधिक बह कर नष्ट हों ॥१॥ ग्रीवा की गन्डमालाऐं, बगल की कखराइयाँ और गुह्य प्रदेश में जो व्रण पड़ जाते हैं, वे सब मन्त्र और औषधि के प्रभाव से स्वयं बहें ॥२॥ जो यक्ष्मा अस्थिओं में व्याप्त होता और माँस का भी क्षय कर डालता है, ककुद में जो यक्ष्मा हो जाता है तथा अधिक संभोग द्वारा जो क्षय रोग प्राप्त होता है, उसे नष्ट करें ॥३॥ अधिक सम्भोग द्वारा प्राप्त क्षय पुरुष-देह में सर्वत्र व्याप्त होता है वह स्वल्प काल से या चिरकाल से प्राप्त रोग मन्त्राभिमन्त्रित वीणा तन्त्री खण्ड से दूर हो जाता है ॥४। हे समागमजन्य क्षय! हम तेरे

कारण को जानते हैं। हम जिस यजमान के घर में रोग दूर करने वाले इन्द्रादि देवताओं के लिये हवि कर रहे हैं, उस घर मे तू किस प्रकार घुस आया है ? ॥५॥ हे इन्द्र ! इस कलश स्थित सोम का पान करो। तुम वृत्र का संहार करने वाले हो। हम को धनों से युक्त करो। मध्यन्दिन सवन में सोम-सेवन करते हुये हमको ऐश्वर्य में स्थापित करो ॥६॥

७७ सूक्त

(ऋषि - अङ्गिराः देवता —मरुतः। छन्द – गायत्री; त्रिष्टुप्; जगती)

सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। अस्माकोती रिशादसः ॥१॥
यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां स तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम्। २।
संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः।
ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥३॥

हे मरुतो ! तुम शत्रुओं को बाधा देने वाले हो। यह हवि तुम्हारे निमित्त है, हमारी रक्षा के लिये हवि का सेवन करो ॥१॥ हे मरुतो ! जो शत्रु दुर्भावपूर्ण क्रोध से हमसे छुपकर हमारे मनों को क्षुब्ध करे, वह वरुण के पाश को प्राप्त हो। तुम उस हिंसा-कामना वाले शत्रु को अपने संतप्त करने वाले बाण से नष्ट कर दो ॥२॥ मरुद्गण अन्तरिक्ष में निवास करने वाले, प्रत्येक संवत्सर में आविर्भूत होने वाले, मन्त्रों से स्तुत्य, मनुष्यों के हितकारी सबको संतापित करने वाले हैं, वे हमको पाप के पाश से छुड़ावें ॥३॥

७८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः। छन्द—उष्णिक; त्रिष्टप्)

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्।
इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने। १॥
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन।

दीदिह्य स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥२॥

मैं तुम्हारी रोग रूपी रस्सी को खोलता हूँ। कण्ठ, बगल, मध्य प्रदेश और नीचे प्राप्त गांठ रूप बन्धन को खोलता हूँ। हे अग्ने! तुम इस रोगी के अनुकूल होते हुये प्रवृद्ध होओ ॥१। हे अग्ने! मैं तुम्हें हवि वहन करने के लिये नियुक्त करता हूँ। तुम मुझे पुत्र और धन आदि का सुख दो। तुम यजमान को शक्ति देने वाले हो। इस यजमान की कामना इन्द्रादि देवताओं से कहो ॥२॥

७६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अमावस्या। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥१॥
अहमेवास्म्यमावास्या मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥२॥
आगन् रात्री सगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥३॥
अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥

हे अमावस्ये! देवताओं ने तुम्हारे महत्व को मानते हुये जो हविभाग दिया है, उसे ग्रहण कर हमारे यज्ञ को सम्पन्न करो। तुम हमको सुन्दर पुत्रादि से युक्त धन प्रदान करो ॥१॥ मैं अमावस्या का अभिमानी देवता हूं श्रेष्ठ कर्म वाले देवता मुझमें निवास करते हैं और साध्य सिद्ध नामक इन्द्रज्येष्ठ और इन्द्र प्रमुख देवता मुझमें मिलते हैं ॥२। काल सम्पन्न तिथि वाली अमावस्या, हमको ऐश्वर्ययुक्त करने को आगमन करे। वह अन्न रस और धन को पुष्ट करती हुई हमारी ओर आवे। हम इस अमावस्या को हवि द्वारा पूजते हैं ॥३॥ हे अमावस्ये!

कोई देवता तेरे बिना सृष्टि रचना करने में समर्थ नहीं हुआ। हम भी जिस फल की इच्छा से हव्य देते हैं हमारी वह इच्छा पूर्ण हो और हम धनपति हों ॥४॥

८० सूक्त

(ऋषि – अथर्वा। देवता – पौर्णमासी, प्रजापतिः।
छन्द - त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥१॥
वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥२॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥३॥
पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ॥४॥

पूर्णिमा श्रेष्ठ रूप से पूर्व में रहती है और पश्चिम में तथा मध्य आकाश में दमकती है। उस पूर्णिमा में अग्नि, सोम आदि की महिमा से वास करते हुये हम अन्न से पुष्ट हों ॥१॥ अभीष्ट फल की वर्षा करने वाली पूर्णिमा की हम पूजा करते हैं वह अविनाशी और क्षय रहित धन को हममें स्थापना करे ॥२॥ हे प्रजापते! तुम सब रूपों की सृष्टि करने में समर्थ हो। ऐसा अन्य कोई नहीं कर सकता। हम जिस अभीष्ट से हवि देते हैं, हमारा वह अभीष्ट प्राप्त हो और हम धनपति बनें ॥३॥ पूर्णिमा यज्ञ-योग्य है। वह रात्रि व्यतीत होने पर उत्पन्न होने वाली तृतीय सवनव्यापी तथा सोमादि हवियों से पूर्ण है। हे यज्ञिया पूर्णिमे! जो ऋत्विज और यजमान तुझसे कर्म द्वारा अभीष्ट फल चाहते हैं, वे याज्ञिक स्वर्ग में स्थान प्राप्त करते हैं ॥४॥

८१ सूक्त

(ऋषि - अथर्वा। देवता—सावित्री, सूर्यः; चन्द्रश्च।
छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; पंक्ति)

पूर्वापरं चरतो मायये तौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।

विश्वान्यो भुवन. वि चष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥१॥
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२॥
सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनून दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ॥३॥
दर्शोऽसि समग्रोऽसि दर्शतोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजाया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥४॥
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वय प्यासिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥५॥
यं देवा अंशुमाप्यायायन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्यायायन्तु भुवनस्य गोपाः ॥६॥

आकाश में विचरणशील सूर्य और चन्द्रमा जलयुक्त अन्तरिक्ष में घूमते हैं। इनमें से सूर्य सब भुवनों के प्राणियों को देखता है और चन्द्रमा ऋतुओं के अवयव रूप पक्षों को उत्पन्न करता हुआ स्वयं नित्य उत्पन्न होता है ॥१॥ हे चन्द्र ! तुम एक-एक कला बढ़ते हुये प्रतिदिन प्रकट होते हो, सब तिथियां तुम्हारे ही आधीन हैं। तुम रात्रियों के कर्ता और अग्रगण्य हो। या तुम दिनों के करने वाले हो। शुक्लपक्ष में पश्चिम में दिखाई देते हो और कृष्णपक्ष में रात्रि के समाप्त होने में पूर्व ही अन्तर्हित होते हो। तुम देवताओं के लिये हवि का विभाग करने वाले हो और दीर्घ आयु देने वाले हो ॥२॥ हे चन्द्रमा के पुत्र रूप बुध! तुम वीरों के पालनकर्त्ता हो। तुम द्रष्टव्य हो। हव्यादि देकर तुम्हें प्रसन्न करने वाला मैं पुत्रादि धन से युक्त होऊँ ॥३॥ हे सोम ! तुम द्रष्टव्य हो। तृतीयादि में स्फुट दर्शन होकर पूर्णिमा को प्राप्त होने पर समग्र होते हो। मैं भी इसी प्रकार गवादि से समग्र होऊँ ॥४॥ जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं उसके प्राण को हे चन्द्र! तुम हरण करो और हम गौ, अश्व प्रजा और धन से सम्पन्न हों ॥५॥ जिस एक कलात्मक सोम को देवता बढ़ाते हैं और जिस क्षय रहित सोम

का नितर आदि सेवन करते हैं, इन दोनों ही सोमों के साथ इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, विश्वेदेवा आदि हमारी वृद्धि करें ॥६॥

८२ सूक्त (आठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—शौनकः, (संपत्कामः)। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्; बृहती, जगती)

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥१॥
मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥२॥
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृता ॥३॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीनन्नु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥४॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥५॥
घृतं त अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥६॥

हे गौओ ! सुन्दर स्तुतियों के योग्य अग्नि की पूजा करो। हममें मंगलमय धनों को प्रतिष्ठित करो। इस यज्ञ में अग्नि आदि देवताओं को लाओ। घृत की मधुर धारायें उन देवताओं को प्राप्त हों ॥१॥ आहुतियों के आधार अग्नि को धारण करता हूँ। शारीरिक बल पाने के लिये उन्हें अपने आधीन करता हूँ, फिर मैं प्रजा आदि को धारण करता हूं। आरोग्य के लिये वैश्वानर अग्नि को धारण करता हूं। अग्नि में यह समिधा भले प्रकार सुहुत हो ॥२॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारी सेवा करने वाले हैं। हममें ही ऐश्वर्य प्रतिष्ठित करो। हमसे द्वेष करने वाले तुम्हें अपने आधीन न कर सकें तुम अपने रूप में अपने बल

सहित बढ़ो। तुम्हारा सेवक भी किसी से कम न होता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो ।।३।। उषा के साथ ही अग्नि प्रदीप्त होते हैं। दिनों के साथ भी वह अग्नि प्रज्ज्वलित होते हैं और यह सूर्य बनकर उषा को भी प्रकाशित करते हैं। यह सूर्य रूप वाले अग्निदेव आकाश-पृथिवी में सर्वत्र ही प्रकाशित होते हैं ।।४।। यह अग्नि प्रत्येक उषाकाल में प्रकाशित होते हैं, प्रत्येक दिन के साथ प्रकाशित होते हैं। यह सूर्य रूप से रश्मियों में भी स्वयं व्याप्त रहते हैं। यह आकाश पृथिवी में अपना प्रकाश फैलाते हैं ।।५।। हे अग्ने ! तुम्हारा घृत आकाश में है। मनु तुम्हें घृत के द्वारा प्रदीप्त करते हैं। तुम्हारे नप्ता जल घृत को तुम्हारे सामने लावें और गौऐं तुम्हारे लिये घृत का दोहन करें ।।६।।

८३ सूक्त

(ऋषि—शुनःशेपः। देवता—वरुणः। छन्द—अनुष्टुप्;
पंक्तिः, त्रिष्टुप)

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ।।१।।
धाम्नोधाम्ना राजन्नितो वरुण मुञ्च नः।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ।।२।।
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ।।३।।
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये।
दुःष्वप्न्यं दुरितं निःष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ।।४।।

हे वरुण ! जलों में असाधारण सुवर्णमय गृह है, वह अन्य किसी को नहीं मिल सकता। वे वरुण हममें स्थापित अपने घरों को छोड़ दें ।।१।। हे वरुण ! हमारे शरीर में स्थित अपने सब रोग स्थानों से हमको मुक्त करो। पाप से हमको छुड़ाओ। हम अपने द्वारा कहे शाप-वचनों के दोष से भी मुक्त हों ।।२।। हे वरुण ! हमारे शरीर के ऊपर के भाग में स्थित, नीचे के भाग में स्थित और मध्य भाग में स्थित पाश को निकाल कर नष्ट करो। फिर हम सब पापों से छूट कर अविनाशमय स्थित में

रहने वाले हों ।।३। हे वरुण ! सब पापों से हमें मुक्त करो। जो तुम्हारे उत्तर और अधम पाश हैं उनसे छुड़ाओ। दुःस्वप्न युक्त पापों से बचाओ इसके पश्चात् हम पुण्यलोक को पावें ।।४।।

८४ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता— अग्निः; इन्द्रः। छन्द— जगती; त्रिष्टुप्)

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।।१।
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम्।
अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ।।२।।
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ।।३।।

हे अग्ने ! तुम उत्पन्न प्राणियों के जानने वाले हो। तुम अमरणशील हो, बल को धारण करने वाले हो। तुम इस कर्म में प्रदीप्त होओ और अपने मङ्गलमय रक्षा साधनों सहित हमारी रक्षा करो ।।१।। हे इन्द्र ! तुम क्षय से रक्षा करने वाले बल सहित प्रकट हुये हो। हे अभीष्टवर्षक अग्ने ! तुम प्रकट होकर शत्रु के समान व्यवहार करने वाले लोगों का नाश करो और देवताओं के निवास योग्य स्वर्ग को प्राप्त कराओ ।।२।। वे सिंह के समान विकराल इन्द्र स्वर्ग से आवें और हे इन्द्र ! तुम अपने तीक्ष्ण वज्र से हमारे शत्रुओं को नष्ट करो और युद्ध के लिये प्रस्तुत शत्रुओं को दबाओ ।।३।।

८५ सूक्त

(ऋषि— अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः। देवता—तार्क्ष्यः। छन्द—त्रिष्टुप्)

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ।।१।।

हम तृक्ष पुत्र सुपर्ण को स्तुति के लिये बुलाते हैं। देवता इनके लिये ही सोम को लाये थे, यह तिरस्कार करने वाले बल से युक्त करते हैं। यह

[ऋ अरिष्टनेमि के पिता, शत्रु-सेनाओं के विजेता और द्रुतगामी हैं। ह इन लोकरूप रथों को सोम प्राप्त करने के समय शीघ्र ही पार कर ये ॥१॥

८६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः)। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्)

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणातु ॥१॥

प्राप्त भयों से रक्षा करने वाले इन्द्र को मैं आहूत करता हूँ। सब युद्धों में आह्वानीय इन्द्र को आहूत करता हूँ, शक्र पुरुहूत इन्द्र को बुलाता हूँ, वह इन्द्र हमारा मंगल करें ॥१॥

८७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—रुद्रः। छन्द—जगती)

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥१॥

जो रुद्र देव हव्यवाहक रूप से अग्नि में, वरुण रूप से जल में और सोम रूप से लताओं में प्रविष्ट हैं, वे सब प्राणियों को रचते हैं। उन रुद्रात्मक अग्नि और अग्न्यादि गुण वाले रुद्र को हम नमस्कार करते हैं ॥१॥

८८ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान। देवता—सर्पविषापाकरणम्। छन्द—बृहती)

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि। विषे विषमपृक्था विषमिद् वा अपृक्थाः
अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि ॥१॥

हे विष! तू दंशित पुरुष से दूर हो। तू सबका शत्रु है, इसलिये विष वाले सर्प में ही प्रवेश कर। तू जिसका विष है, उसी सर्प को प्राप्त होता हुआ उसे नष्ट कर ॥१॥

८९ सूक्त

(ऋषि सिन्धुद्वीपः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१॥
स माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥२॥
इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् ।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥३॥
एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय ।
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥४॥

मैं दिव्य जल का संग्रह करता हूँ, उनमें औषधि रस सम्मिलित करता हूँ। इस प्रयोग से मैं तेजस्वी बनूँगा। हे अग्ने ! मैं दूध लेकर तेरे पास आया हूं। उसे तू अपने तेज से युक्त कर ॥१॥ हे अग्ने ! मुझे बलयुक्त करो पुत्र, पौत्र आदि प्रजा तथा जीवन से युक्त करो। देवता और ऋषियों सहित इन्द्र मुझे पवित्र समझें। २॥ हे जलो ! मेरे पापों को दूर करो। पिता आदि का उचित आदर न करना, ऋण को न चुका सकना अथवा अन्य असत् आचरणों के फल रूप पापों को मुझसे पृथक करो ॥३॥ हे अग्ने ! जैसे तुम प्रदीप्त होते हो, वैसे ही मैं भी फल से तेजस्वी होऊँ। तुम तेजरूप हो, मुझमें तेज को प्रतिष्ठित करो ॥४॥

९० सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—मंत्रोक्ता । छन्द—गायत्री; बृहती; जगती)

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम् । ओजो दासस्य दम्भय ॥१॥
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहे ।
म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥२॥
यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयः ।

अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः।
यदाततमव तत्तनु यदुत्ततं नि तत्तनु ॥३॥

हे अग्ने ! प्राचीन शत्रुओं के समान इस हिंसकरूप शत्रु को, उसके बल को और वीर्य को भी नष्ट करदो ॥१॥ हम उनके धर्म को इन्द्र के बल से ग्रहण करते हैं। हे दुष्ट ! सन्तानोत्पादन में समर्थ तेरे वीर्य को मैं वरुण के शस्त्र से क्षीण करता हूँ ॥२॥ नीच गाली देने जैसे व्यवहार करने वाले, और पीड़ा देने वाले मनुष्य का दुष्कृत्य नष्ट हो जाय, उसकी उद्धतता हीन पड़ जाय, ये दुष्ट स्त्रियों के प्रति कोई दुष्कर्म करने में समर्थ न हों ॥३॥

६१ सूक्त (नौवाँ अनुवाक)

(ऋषि--अथर्वा। देवता--चन्द्रमाः, इन्द्रः। छन्द--त्रिष्टुप्)

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१॥

रक्षक इन्द्र हमको सुख प्रदान करें, हमारे रक्षक हों, हमारे शत्रुओं को नष्ट करें। वे हमारे भय को दूर करें। हम सुन्दर वीर्ययुक्त धन के स्वामी हों ॥१॥

६२ सूक्त

(ऋषि--अथर्वा। देवता—चन्द्रमाः, इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥१॥

वे रक्षक इन्द्र हमारे शत्रुओं को दूर से ही भगा दें। हम उन इन्द्र की कृपारूप मति में रहते हुये उनसे मंगल प्राप्त करते रहें ॥१॥

६३ सूक्त

(ऋषि--भृग्वङ्गिराः। देवता--इन्द्रः। छन्द--गायत्री)

इन्द्रेण मन्युना वयमभि स्याम पृतन्यतः। घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥१॥

युद्ध की कामना वाले शत्रुओं को हम इन्द्र की सहायता से वश में करें, वे इन्द्र उनमें से किसी को भी न छोड़ें और मार डालें। १॥

६४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सोमः। छन्द—अनुष्टुप्)

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ॥१॥

हम राजा सोम को स्थासीन करके लाते हैं। इन्द्र हमारी सन्तानों को समान मन वाली बनावें ॥१॥

६५ सूक्त

(ऋषि—कपिञ्जलः। देवता—गृध्रौ। छन्द—अनुष्टुप्)

उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः।
उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥१॥
अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव।
कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥२॥
आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत।
अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमाञ्जभार ॥३॥

शत्रु के ओष्ठ विदीर्ण हों या उसके प्राणापान, आकाश में गिद्धों के उड़ने के समान, उड़ जांय। मृत्यु-दूत इस शत्रु के हृदय को शोक से संतप्त करें ॥१॥ जैसे बैठे हुये थकित बैलों को उठाते हैं और भूंकते कुत्तों को भगाते हैं, जैसे गौओं के पालक भेड़ियों को भगा देते हैं वैसे ही मैं शत्रु के प्राणों को पृथक् करता हूं ॥२॥ जिस स्त्री या पुरुष ने हमारे धन का हरण किया है, मैं उसके मर्म स्थानों को बांधता हूं। मैं शत्रु के प्राणों को पृथक् करता हूं ॥३॥

९६ सूक्त

(ऋषि -कपिञ्जलः । देवता —वयः । छन्द—अनुष्टुप्)

असदन् गावः सदनेऽपप्तद् वसतिं वयः ।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥१॥

जैसे पक्षी घोंसलों की ओर जाते हैं, गौएं गोष्ठ की ओर जाती हैं पर्वत अपने स्थान में स्थित हैं, वैसे ही मैं शत्रु के स्थान में वृक्क, वृक्कों को स्थित करना चाहता हूँ ॥१॥

९७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता–इन्द्राग्नी । छन्द—त्रिष्टुप्; गायत्री; प्रभृति)

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥१॥
समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥२॥
यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥३॥
सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥४॥
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥५॥
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सुवीर्यः स्वाहा ॥६॥
वषड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः ।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥७॥
मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥८॥

हे अग्ने ! हम तुम्हारा होता रूप से वरण करते हैं। तुम्हारा होता रूप से हमने वरण किया है अतः तुम देवताओं का पूजन करो। हमारे इच्छित फल के उपाय को जानते हुये हमारी हवि के पास आओ ॥१॥ हे इन्द्र ! हम को स्तुति रूप वाणियों से युक्त करो। हमको पशुओं से सम्पन्न करो। हे हर्यश्ववान् इन्द्र। तुम हमको वेदार्थ-ज्ञान और अनुष्ठान से युक्त करो। देवताओं का हित करने वाले अग्निहोत्र और देवताओं की कृपापूर्ण बुद्धि से हमको सम्पन्न करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुमने जिन हवि की कामना वाले देवताओं का आह्वान किया है, उन देवताओं का सधस्थ में प्रेरित करो। हे वसुओ ! तुम इस यजमान को धन प्रदान करो ॥३॥ हे देवताओं ! हमने तुम्हारे मार्गों को सरल कर दिया है, क्योंकि तुम्हारे लिये भवन निर्मित कर दिये हैं। तुम हम को धन दिलाते हुये आदित्य पर और फिर स्वर्ग पर चढ़ो ॥४॥ हे यज्ञ ! तुम जिन विष्णु द्वारा प्रतिष्ठा को प्राप्त हुये हो, उन्हीं पूजनीय के पास जाओ। फिर यज्ञपालक यजमान के पास फल से युक्त होकर आओ। फिर संसार की कारणभूत शक्ति रूप योनि को प्राप्त होओ। यह घृताहुति तुम्हारे लिये हो ॥५। हे यज्ञपते ! यह सुन्दर कर्म वाला यज्ञ तुम्हारे कल्याण के लिये सामर्थ्यवान हो। यह घृताहुति अग्नि के लिये हो ॥६॥ जिन देवताओं की पूजा पहले नहीं की गई, उनके लिये यह घृताहुति हो, जिनकी पूजा कर चुके हैं उनको भी यह घृताहुति प्राप्त हो। हे देवगण ! तुम जिस मार्ग से इस यज्ञ में आये थे, कर्म की सम्पन्नता पर उसी मार्ग से अपने स्थान को लौटो ॥७॥ हे मन के स्वामिन् ! हमारे इस यज्ञ को स्वर्ग स्थित देवताओं में स्थापित करो फिर अन्तरिक्ष, पृथिवी और आकाश में स्थापित करो। यह वाकदेवी सरस्वती का कथन है ॥८॥

६८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता— मंत्रोक्ताः। छन्द—विराट्)

स बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥१॥

यह स्रुवा आदि रखने का स्थान बर्हि, पुरोडाश, घृत आदि से तथा वसुदेवताओं से, इन्द्र से, मरुद्गण से और विश्वेदेवताओं से भी समक्त हो गया है। ऐसा हवि-प्रावन बर्हि सब देवताओं में मुख्य इन्द्र को प्राप्त होता हुआ स्वाहुत हो ॥१॥

९९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वेदिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके ॥१॥

हे दर्भस्तम्ब ! वेदी पर फैल जाओ, उसे सब ओर से ढक लो। इस वेदी के पुत्र रूप यजमान को नष्ट मत करो। यह दर्भ हरे रंग वाला, सुन्दर और होताओं के लिये आसन रूप है। यह यजमान के पुण्य भोग के स्थान में सुवर्णयुक्त हों। हे दर्भ ! तुम वेदी पर फैल जाओ। १॥

१०० सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्)

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१॥

मैं दुःस्वप्न जनित पाप से निवृत्त होता हूँ, सम्पत्ति हीनता से दूर होता हूँ। दुःस्वप्न के निवारण करने वाले मंत्र को मैंने समर्थ कर लिया है। उसे कवच के समान मैंने धारण कर लिया है। इसलिये मेरे शोकादि भाग जाँय ॥१॥

१०१ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्।

यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥१॥

स्वप्न में जिस अन्न को खाता हूं, वह सवेरा होने पर दिखई नहीं देता। वह स्वप्न और भोजन अखाद्य भक्षण आदि सब अन्न मेरे लिए कल्याण करने वाले हों ॥१॥

१०२ सूक्त

(ऋषि–प्रजापतिः। देवता–द्यावापृथिव्यादयो मंत्रोक्ताः। छन्द–बृहती)

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मा हिंसिषुरीश्वराः ॥१॥

आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष और मृत्यु को नमस्कार करता हुआ मैं इसी लोक में दीर्घ काल तक स्थिर रहूं। आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष के स्वामी अग्नि, वायु और सूर्य मुझे हिंसित न करें और मृत्यु भी मुझे न मारे ॥१॥

१०३ सूक्त (दसवाँ अनुवाक)

(ऋषि – ब्रह्मा। देवता—आत्मा। छन्द—त्रिष्टुप्)

को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन्।
का यज्ञकामः क उ पूर्तिकाम को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ॥१॥

कौन राजा इस दुर्गति रूप पिशाची से हमको बचावेगा? हमारे अनुष्ठित यज्ञ की कामना कौन करता है? कौन हमारे धन की पूर्ति करेगा? दीर्घायु देने वाला देवता कौन है? ॥१॥

१०४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आत्मा। छन्द—त्रिष्टुप्)

यः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम्।
बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥१॥

विभिन्न वर्ण वाली, वत्सयुक्त, दुहाने वाली अथर्वा द्वारा वरुण को दी हुई गौ को बृहस्पति के सखा प्रजापति शरीर की शक्ति दें ॥१॥

१०५ सूक्त

(ऋषि – अथर्वा । देवता-मंत्रोक्ता: । छन्द-अनुष्टुप्)

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्त स्व विश्वेभिः सखिभिः सह ।।१।।

हे माणवाक ! मनुष्यों के लौकिक कर्मों से दूर हटता हुआ, देवात्मक वाक्य को कहता हुआ स्वाध्याय के लिये अपने सहपाठियों के साथ वेद सिखाने वाली प्रणीतियों का आश्रय प्राप्त कर ।।१।।

१०६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता-जातवेदा; वरुणश्च । छन्द-त्रिष्टुप्)

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ।।१।।

हे अग्ने ! हम ने जो कुछ विस्मरण कर्म किया है और जो कर्म हम से लुप्त हो गया है, उस पाप से हमारी रक्षा करो । तुम्हारी कृपा से हमारा सांग कर्म पूर्ण होने पर अमरत्व प्राप्त हो ।।१।।

१०७ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता-सूर्यः, आपश्च । छन्द-अनुष्टुप्)

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्य-मसिस्रसन् ।।१।।

कश्यप नामक सूर्य से सम्बन्धित सात रश्मियां जल रूप धाराओं को नीचे उतारती हैं । हे व्याधिग्रस्त पुरुष ! वे उतारे हुये वृष्टि जल तेरे पीड़ा दायक कासादि रोगों को नष्ट करें ।।१।।

१०८ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।

प्रतीच्येत्वरणो दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ॥१॥
यो न सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥२॥

हे अग्ने ! जो हम को मारना चाहता है, जो हम को अंतर्हित कर हमारे प्रकाश को नष्ट करना चाहता है, अथवा जो हमारा बांधव हमें नष्ट करने की इच्छा करता है, उनको पीड़ा देने वाली राक्षसी सामने हो । यह शत्रु, गृह पुत्र आदि से विहीन हों ॥१॥ हम को सोते, जागते, बैठते, घूमते हुये जो मारने की इच्छा करता है, उन शत्रुओं को वैश्वानर अग्नि के सहयोग से मार डालो ॥२॥

१०६ सूक्त

(ऋषि–बादरायणिः । देवता-अग्न्यादयोः मंत्रोक्ताः । छन्द-त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षषु तनूवशी ।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥१॥
घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥
अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ॥३॥
आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥४॥
यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।
स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ॥५॥
संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥
देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम ।
अक्षान् यद् बभ्रू नालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ॥७॥

विजय प्राप्त कराने वाले देवताओं को नमस्कार है। यह बभ्रु पाशों से विजय प्राप्त कराने वाले हैं। मैं मन्त्र से अभिमंत्रित घृत से पाशों को व्याप्त करता हूँ। वे बभ्रु देवता इस जय विजयात्मक कर्म में हमें सुखी करें।।१।। हे अग्ने! अन्तरिक्ष स्थित अप्सराओं को घृत पहुँचाओ। हमारे प्रतिद्वन्दियों को जल और धूल दो। इन्द्रादि देवता हवि भक्षण करते हुये तृप्त हों।। २।। अप्सराएँ मेरे खेलने वाले हाथों को घृत के समान विजय रूप फल प्राप्त कराते हुये मेरे प्रतिद्वन्दी को आधीन करें।।३। हे देव! मैं अपने प्रतिद्वन्दी का पराभव करने के लिए खेलता हूँ। मुझे जय रूप फल से सम्पन्न करो। जो हमसे प्रतिद्वन्दिता करता है उसे विद्युत से भस्म वृक्ष के समान नष्ट कर डालो।४।। जिन देव ने प्रतिद्वन्दी के धन को जितवाया है, जिनने शत्रुओं के अक्षों पर विजय प्राप्त कराई है, वे देवता हमारी हवि का भक्षण करें और गन्धर्वों सहित प्रसन्न हों।।५।। हे गन्धर्वो! तुम धन प्राप्त कराने वाले हो। इस लिए तुम्हारा संवसव नाम है। यह गन्धर्व राष्ट्रभृत् नामक अप्सराओं के सम्बन्धी हैं। हम उन गन्धर्वों की सोमयुक्त हवि से पूजा करते हैं। फिर हम धन के अधिपति हों।। ६।। मैं धन प्राप्ति के लिये अग्नि आदि देवताओं को आहूत करता हूँ। हम बभ्रु द्वारा अधिपति पाशों को ग्रहण कर रहे हैं। अतः वे देवता विजय रूप सुख प्रदान करें।।७।।

११० सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता—इन्द्राग्नी। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति। उभा हि वृत्रहन्तमा ।।१।।
याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ।।२।।
उप त्वा देवो अगृभीच्चमसेन बृहस्पतिः।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ।।३।।

हे अग्ने! हे इन्द्र! तुम वृत्र का हनन करने वाले हो। तुम

हविदाता यजमान के पापों को निःशेष करो ॥१॥ जिन अग्नि और इन्द्र की सहायता से देवताओं ने स्वर्ग प्राप्त किया, जो इन्द्राग्नि अपनी महिमा द्वारा सब भूतों में व्याप्त हैं, जो कर्मों के द्रष्टा हैं, ऐसे इच्छित फल सींचने वाले वज्रधारी इन्द्राग्नि को मैं विजय की कामना से आहूत करता हूं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुमको बृहस्पति ने सोम पात्र द्वारा अपने वश में कर लिया है इसी प्रकार सोम को सिद्ध करने वाले यजमान का धन आदि पालन करने के लिए स्तुतियों के प्रति आओ । ३॥

१११ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-वृषभः । छन्द-त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् ॥१॥

हे वृषभ ! तुम सोम धारक हो, मनुष्यों के देवता रूप हो। तुम इस लोक में प्रजाओं की उत्पत्ति करो । इस गौ और यजमानादि में जो प्रजायें स्थित हैं, सुख पूर्वक विहार करने वाली हों ॥१॥

११२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-आपः । छन्द—अनुष्टुप्)

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्या दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्विषात् ॥२॥

यह आकाश पृथिवी अत्यन्त शोभामयी है, इनमें चेतन अचेतन जीव रहते हैं, इनमें जल भी प्रवाहमान है । यह विशाल कर्म वाली द्यावा-पृथिवी और जल हमको पाप से छुड़ावें ॥१. ब्राह्मण के आक्रोश से यह जल मुझे दूर रखें, मिथ्याभाषण रूप पाप से भी दूर रखें । यमाधिकार पादबंधन और सभी देव सम्बन्धी पापों से मेरी रक्षा करें ॥२॥

११३ सूक्त

(ऋषि—भार्गवः। देवता—तृष्टिका। छन्द—अनुष्टुप्; उष्णिक्)

तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके।
यथा कृयद्द्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते ॥१॥
तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि।
परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥२॥

हे काम तृष्णा! हे धन तृष्णा! तू स्त्री-पुरुषों में कलह कराने वाली है। इसी के प्रभाव से स्त्री अपने वीर्यवान पुरुष से भी द्वेष करने लग जाती है ॥१॥ हे तृष्णा! तू दाहक एवं विष स्वरूप है। जैसे वंध्या गौ बैल से परित्यक्त रहती है, वैसे ही तू भी परित्यक्त है ॥२॥

११४ सूक्त

(ऋषि—भार्गवः। देवता—अग्नीषोमौ। छन्द—अनुष्टुप्।

आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे।
आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे ॥१॥
प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः।
अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥२॥

हे द्वेषकारिणी अधम स्त्री! उरु, कटि, विकटि, पाँव आदि तेरे अङ्गों से मैं सौभाग्य रूप तेज को ग्रहण करता हूँ और सबको प्रसन्न करने वाले तेरे मुख-सौन्दर्य को छीनता हुआ, सब अंगों से वर्तमान आभा को दूर करता हूँ ॥१॥ तेरी विभिन्न पीड़ाएँ दूर हों। राक्षसादि के स्मरण विस्मृत हों। परकृत निन्दाएँ मिट जाँय। अग्निदेव राक्षसियों और पिशाचियों का संहार करें, सोम देवता भी पर अनिष्ट चिंतन करने वाली पिशाचियों का नाश करें ॥२॥

११५ सूक्त

(ऋषि-अथर्वाङ्गिरा: । देवता—सविता, जातवेदा: । छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

प्र पतेत: पापि लक्ष्मि नश्येत: प्रामुत: पत ।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ।१।
या मा लक्ष्मी: पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराण ॥२॥
एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाता: ।
तासां पापिष्ठा निरित: प्र हिण्म: शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥३॥
एना एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्या: पापीस्ता अनीनशम् ॥४॥

हे पाप देवि ! इस प्रदेश से प्रस्थान कर, सुदूर देश में जा । हम तुझ सुदूर जाती हुई को लोह-शूल सहित शत्रु से मिलाते हैं ॥१॥ जो पापदेवी मुझे सुखा रही है, उस अलक्ष्मी को यहाँ से दूर भेजते हुए हे सूर्य ! अपने हाथ में सुवर्ण लेकर हमको प्रदान करो ॥२॥ मनुष्य के जन्म के साथ एक सौ एक लक्ष्मी उत्पन्न होती है । उनमें से जो पाप पूर्ण हैं, उन्हें हम दूर करते हैं । हे अग्ने ! कल्याणमयी लक्ष्मियों को हम में स्थापित करो ॥३॥ जैसे गौओं का स्वामी गोष्ठ में स्थित गौओं को विभक्त कर लेते हैं, वैसे मैं उन एक सौ एक लक्ष्मियों को दो भागों में बाँटता हूं । इनमें से कल्याण करने वाली लक्ष्मियाँ मेरे पास रहें और पापयुक्त नष्ट हो जांय ॥४॥

११६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वाङ्गिरा । देवता—चन्द्रमा:; ज्वर: । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

नमो रूराय च्यवनाय चोदनाय धृष्णवे ।
नम: शीताय पूर्वकामकृत्वने ॥१॥
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रत: ॥२॥

उष्ण ज्वरके अभिमानी रूर ज्वर को नमस्कार, शरीर तोड़ने वाले शीत ज्वर को नमस्कार है ॥१॥ तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर उस मण्डूक पर उतर जायें ॥२॥

११७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती)

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा के चिद् वि यमन् वि न पाशिनोऽति धन्वेव तां इहि ॥१॥

हे इन्द्र ! तुम मदयुक्त मोरों के रोम के समान रोमयुक्त अश्वों से यहाँ आओ। जैसे बहेलिया पक्षी को बांध लेता है, वैसे तुम्हें कोई न रोक पावे। प्यासा पुरुष मरुभूमि को शीघ्र ही लांघता है, वैसे ही अन्य स्तोताओं को लाँघते हुए तुम शीघ्र यहाँ आगमन करो ॥१॥

११८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः। देवता—सोम; वरुण; देवश्च। छन्द—त्रिष्टुप्)

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु। १॥

हे राजन् ! तुम जय की आकांक्षा करते हो। मैं तुम्हारे मर्म स्थानों पर कवच धारण कराता हूं राजा सोम तुम्हें अक्षीण तेज से तेजस्वी बनावें। इन्द्र तुम्हें शत्रु-सेनाओं पर विजय प्राप्त करने में प्रोत्साहन दें। वरुण देवता तुम्हें अत्यन्त सुख देने वाले हों ॥१॥

॥ इति सप्तम काण्डं समाप्तम् ॥

अष्टम काण्ड

—+—

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–आयुः । छन्द–त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; प्रभृति)

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥१॥
उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ।२।
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥३॥
उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥४॥
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५॥
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ।६।
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ।७।
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ।८॥
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥९॥

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं देयथ तं ब्रवीमि।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भय परस्तादभय ते अर्वाक् ॥१०॥

मृत्यु देवता को नमस्कार ! प्राणापान इनकी कृपा से शरीर में बिहार करें। यह प्राण-त्याग की शंका वाला पुरुष सूर्य के भाग रूप पृथिवी पर प्राण और प्रजा से युक्त हुआ निवास करे ॥१॥ भग देवता ने मूर्छा में प्रवेश करते हुए इस पुरुष का उद्धार किया है। चन्द्रमा और मरुतों ने भी इसकी रक्षा की है तथा इन्द्राग्नि ने भी इसे रक्षार्थ स्वीकार कर लिया है ॥२॥ हे आयुष्काम पुरुष ! तेरा प्राण इस शरीर में रहे। तेरी आयु और मन भी इसी में रमा रहे। अधोगति के पाशों में बंधे हुए तुझे हम मंत्ररूप वाणी द्वारा छुड़ाते हैं ॥३॥ हे पुरुष ! तू मृत्यु के फंदे से निकल, इसके बंधनों को काट दे, अग्नि और सूर्य के दर्शन से रहित न हो और पृथिवी को भी न त्याग ॥४॥ हे पुरुष ! अन्तरिक्ष में श्वास लेने वाले वायु तेरे लिये सुखमय हो, जल तेरे लिये पीयूषवर्धक हो, सूर्य तुझे सुख पहुंचाने वाले ताप से तपें। मृत्यु देवता की दया से तू मरण से बचा रह ॥५॥ हे पुरुष ! तू मृत्यु के पाश से ऊपर ही उठे। मैं तेरे जीवन के निमित्त औषधि प्रयुक्त करता हूँ। तेरे लिये बल देता हूं। तू इन्द्रिय सुख के कारण रूप शरीर पर चढ़ता हुआ कह कि मैं होश में हूं ॥६॥ तेरा मन यम की ओर न जाय; तू बन्धुरूप मनुष्यों से विरक्त न हो। तू पितरों के पास न जा। इन्द्रादि देवता सब ओर से तेरे शरीर की रक्षा करें ॥७॥ पितरों के मार्ग का ध्यान न कर। वे मरे हुए भी तुझे फिर न लौट कर आने के लिये जा सकते हैं। तू अंधेरे से निकल कर प्रकाशरूप ज्ञान पर चढ़। हम तेरे हाथ को पकड़ते हैं॥८॥ हे पुरुष! यम के मार्गरक्षक काले और सफेद दोनों श्वान [दिन-रात] तुझे बाधा न दें। तू उन कुत्तों का ग्रास न होता हुआ यहाँ आ। विषयों से निवृत होकर यहाँ निवास मत कर ॥९॥ हे पुरुष! तू मृतकों के मार्ग का अनुसरण कर, यह भयंकर मार्ग मृत्यु से पूर्व नहीं जाना जाता। तू मरणात्मक तन्द्रा को प्राप्त न हो, यम का घर भयावह है और हमारा मार्ग भय से मुक्त है ॥१०॥

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥११

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् सङ्कसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्ष रक्षतु देवहेत्याः ॥१२॥

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३॥

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥१५॥

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वाबर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥१६॥

उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७॥

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥१८॥

उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ॥१९॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥२०॥
व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥२१॥

जो वड़वानल जलों में रहते हैं, वह तेरी रक्षा करें । आह्वानीय अग्नि और वैश्वानर अग्नि भी तेरी रक्षा करें । हे रक्षा की कामना वाले

पुरुष ! वैद्युत अग्नि भी तेरी हिंसा न करे ॥११॥ क्रव्याद् अग्नि तुझे अपना आहार न माने। तू संकुसुक नामक अग्नि से भी दूर ही रह। सूर्य, चन्द्र आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी भी तेरी रक्षा करें ॥१२॥ बोध, प्रतिबोध, अस्वप्न, अनिद्रा गोपायान् और जागृवि ऋषि तेरी रक्षा करें ॥१३॥ वे बोध आदि तेरा पालन करते हुए रक्षा करें ! उन देवताओं को नमस्कार है। वह हव्य स्वाहुत हो ॥१४॥ वायु, इन्द्र, धाता और सूर्य तुझे मृत्यु मुख से निकालकर तेरे पुत्रादि को दें। प्राण और बल तेरा त्याग न कर। तेरे प्राण को हम बुलाते हैं ॥१५॥ जभ नामक राक्षस भक्षणार्थ तुझे न पावे। राक्षस की जिह्वा भी तेरे पास न पहुँचे और अज्ञान भी तेरे पास न रहे ॥१६॥ धाता, अष्टावसु, इन्द्र, अग्नि, आकाश और पृथिवी तुझे मृत्यु के मुख से निकालें। प्रजापति तुझे मरण से बचावें और औषधियाँ तेरा पोषण करें ॥१७॥ हे देवगण ! यह पुरुष इसी लोक में रहे, स्वर्ग में न जाय। हम अत्यन्त शक्तिशाली रक्षा-साधन द्वारा इसे मृत्यु के पास से खींचते हैं ॥१८॥ हे आयु की कामना वाले पुरुष ! आयु का पोषण करने वाले देवता तुझे धारण करें। तेरे बन्धुओं की स्त्रियाँ बाल खोलकर अश्रुपात न करें। तेरे बांधव भी रुदन से रहित हों ॥१९॥ हे पुरुष ! मैंने तुझे मृत्यु के मुख से खींचकर पाया है। तेरा पुनर्जन्म हुआ है अतः फिर नवीन हो गया है। तेरे लिए सौ वर्ष आयु प्राप्त करली है। अब तेरी सब इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य में सूक्ष्म हों ॥२०॥ हे चैतन्यताहीन पुरुष ! तेरा अज्ञान मिट गया, अन्धकार दूर हो गया। हम तेरे पास से पाप निर्ऋति की ओर प्राणों का हरण करने वाली मृत्यु को दूर कर चुके हैं। अतः तेरे बाह्याभ्यंतर के सभी रोग नष्ट हो चुके हैं ॥२१॥

२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आयुः। छन्द—भुरिक्, त्रिष्टुप्ःअनुष्टुप् पंक्तिः, जगतीः बृहती)

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥१
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय।

अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्ति द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥२
वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं विश्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥३
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥४॥
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥५॥
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये । ६॥
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥७॥
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो यमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत त्वा
मृत्योरपीपरम् । आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं
दधामि ॥९॥
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥१०॥

हे आयु की कामना वाले पुरुष ! हमारे द्वारा की हुई अमृतत्व की अनुभूति कर । यह मन्त्रों द्वारा छिन्न न की जा सके और वृद्धावस्था तक स्थायी रहे तू रज और तम को प्राप्त न होता हुआ अहिंसक रह । तेरे लिए मैं मृत्यु द्वारा अपहरित प्राण और आयु को पुनः प्राप्त करता हूं ॥१॥ हे पुरुष ! तू हमारे सामने होता हुआ जीवित मनुष्यों की चैतन्यता को प्राप्त हो । तू निन्दा रहित ज्वरादि रोगों का त्याग करता हुआ प्राप्त हो । मैं तुझमें दीर्घ आयु की स्थापना करता हूँ ॥२॥ हे पुरुष ! इसने ही [illegible] मैंने तेरे प्राणों को पा लिया है ।

सूर्य से तेरे नेत्र को पा लिया है। तेरा जो मन मृत्यु के समय निकल गया था उसे तेरे देह में पुनः प्रविष्ट करता हूँ। तू सर्वाङ्ग सम्पन्न होकर स्पष्ट वाणी बोल ॥३॥ हे पुरुष ! जैसे अग्नि को मुख की वायु से सिलगाते हैं वैसे ही तुझे सब प्राणियों के प्राणों से प्रभूत प्राणवान् करता हूँ। मृत्यो ! तेरे प्राण, बल और क्रूरदर्शन शक्ति को नमस्कार है। ४॥ यह पुरुष मृत्यु को प्राप्त न हो। हम इसे सचेष्ट करते हैं। हे मृत्यो ! तू इसे न मार ॥५॥ पाठा नामक ओषधि को मैं शान्ति-कर्म के लिए आहूत करता हूँ। यह जीवनदायिनी, कभी न सूखने वाली है। मैं इसे इस पुरुष के अमरतत्व के निमित्त ग्रहण करता हूं॥६॥ हे मृत्यो! इसे हिंसित करना प्रारम्भ न करो। यह तुम्हारा ही है, अतः इसके प्राणों को मत लो। यह इस पृथिवी पर सब प्रकार की गति करे। हे भव, शर्व ! इसे सुख दो, इसके रोगादि पाप को दूर कर आयुष्मान् बनाओ ॥ ७ ॥ हे मृत्यो ! इसे अपना कृपा-पात्र कहो। इस पर कृपा करो। यह मरणहीन और सब अंगों से सम्पन्न रहे। यह वृद्धावस्था को प्राप्त होता हुआ सौ वर्ष की आयु वाला हो ॥८॥ हे पुरुष ! देवताओं का अस्त्र तुझ पर न पड़े तेरी हिंसा न करे। मैं तुझे मृत्यु से बचाता हूँ। तेरे जीवन के निमित्त देवयजन अग्नि की स्थापना करता हूँ ॥९॥ हे मृत्यो ! तेरे रजोमय मार्ग का घर्षण करने में कोई समर्थ नहीं है। इस मूर्छित पुरुष की ऐसे मार्ग से रक्षा करते हुए हम, इस मंत्र रूप कवच को धारण कराते हैं ॥१०॥

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥११॥
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तमइवाप हन्मसि ॥१२॥
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥१३॥
शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ।

शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥१४॥
शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यो रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥१५॥
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥१६॥
यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥१७॥
शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥१८॥
यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥१९॥
अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥२०॥

हे आयु की कामना वाले पुरुष ! तेरे देह में प्राणापान को स्थित करता हूँ तेरे लिये दीर्घ आयु करता हुआ जरा मृत्यु से अस्पृश्य बनाता हूँ । मैं यम दूतों को मंत्र शक्ति से दूर करता हुआ, तेरे लिये स्वस्ति करता हूँ ॥११॥ हम पाप देवता निऋंति को हिंसित करते हैं और मस्तक पिशाचों की हिंसा करते हैं । राक्षसत्व को नष्ट करते हैं और अन्धकारावरण को दूर करते हैं ॥१२॥ हे पुरुष ! निऋंति आदि के द्वारा तेरे प्राण अपहृत हुए हैं । मैं अमृतत्व वाले अग्नि से तेरे प्राण माँगता हूँ । तू जिस प्रकार मृत्यु को प्राप्त न हो, वैसे ही शांति कर्म करता हूँ । यह कर्म तेरे लिये समृद्धकारी हो ॥१३ । हे बालक ! तेरे लिए आकाश-पृथिवी मंगलमयी हों, श्री वृद्धि करने वाली हों । सूर्य भी तुझे सुख करने वाला ताप दें । वायु भी तेरे अनुकूल बहें । जल स्वादयुक्त और कल्याण करने वाला होता हुआ प्रवाहित हो ॥१४॥ हे

बालक ! व्रीहि आदि ओषधियाँ तुझे सुखी करें। तुझे नीची पृथिवी और उत्तर पृथिवी से उद्धृत किया है। सूर्य चन्द्रमा तेरे रक्षक हों ॥१५॥ हे बालक ! तेरा ढकने वाला वस्त्र है उसे तू नीवीं करता है। तेरे वस्त्रों को हम सुखदायक बनाते हैं। वे कोमल स्पर्श वाले हों॥१६॥ हे संस्कारक ! जब तुम सुन्दर और तीक्ष्ण उस्तरे से शिर और मुख के बालों को मूंडते हो, तब गोदान उपनयन आदि संस्कारों को प्राप्त हुए बालक के मुख को तेजस्वी बनाओ। हमारे पुत्र की आयु को मत छीनो ॥१७॥ हे बालक ! तेरे भक्षण करने योग्य अन्न सुखकारी हों। यह तेरे शारीरिक बल को क्षीण न करें। यह धान, जो शिर को प्राप्त रोग के बाधक हैं। यह इस बालक को पाप से रक्षा करें ॥१८॥ हे बालक ! इस धान्य को तुम कठिनाई से सेवन करते हो और दूध के समान अन्न को पीते हो। अब तुम सरलता से भक्षण करने योग्य अन्न का सेवन करते हो। मैं तुम्हारे सब प्रकार के अन्नों को विष-रहित करता हूँ ॥१९॥ हे बालक ! हम तुझे रात्र्याभिमानी देवता और दिन के अभिमानी देवता को रक्षा के निमित्त सौंपते हैं। हे सब देवताओ ! तुम इस बालक की धन का अपहरण करने वाले तथा भक्षण-कामना वाले प्राणियों से रक्षा करो ॥२०॥

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥२१॥
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥२२॥
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः ॥२३॥
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥२४॥
सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥२५॥

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥२६॥
ये मृत्यव एकशत या नाष्ट्रा अतितार्याः।
मुञ्चन्तुः तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥२७॥
अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥२८॥

हे बालक ! तेरी आयु को सौ वर्ष की करते हैं। हम तेरे लिये दाम्पत्य रूप एक युग, संतान रूप द्वितीय युग और इससे भी अधिक युगों को करते हैं। देवगण इस निवेदन पर अनुमति दें ॥२१॥ हे बालक ! रक्षा के लिए हम तुझे शरद, हेमंत, वसंत और ग्रीष्म ऋतुओं के अर्पण करते हैं। वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन तुझे सुख देने वाले और औषधियों को भी बढ़ाने वाले हों ॥२२॥ मृत्यु दुपाये,चौपाये आदि सभी प्राणियों के स्वामी हैं। मैं उन मृत्यु रूप ईश्वर के पाश से तुझे छुड़ाता हूँ, इसलिये मृत्यु से भयभीत हुआ तू भय को त्याग॥२३॥ हे पुरुष ! तू मृत्यु का भय न कर। इस शांति-कर्म के कारण मनुष्य मृत्यु से बच जाते हैं उन्हें मूर्च्छा नहीं होती। शांति कर्म को करने वाले नीचे के लोकों में स्थित अंधकार को प्राप्त नहीं होते ॥२४॥ जहाँ राक्षस, पिशाचादि को रोकने के परकोटे के रूप में शांति कर्म किये जाते हैं, वहाँ गवादि पशु और मनुष्य सब प्राणमय रहते हैं।२५॥ हे शांति कर्म के इच्छुक पुरुष ! मेरा कर्म तुझे सब ओर से रक्षित करे। समान पुरुषों, समान बांधवों आदि द्वारा किये गये अभिचारादि से यह शांति कर्म तुझे बचावे। तेरे चक्षु आदि प्राण तेरे देह से न निकलें तू दीर्घजीवन प्राप्त करे ॥२६॥ एक सौ मृत्यु हैं, और नाष्ट्रा शक्ति हैं, इनको पार नहीं किया जा सकता। उन मृत्यु और नाष्ट्रा शक्तियों से इन्द्रादि देवता रक्षा करें और वे तुझे वैश्वानर अग्नि से भी बचावें ॥२७॥ हे पूतद्रुनामक वृक्ष ! तू अग्नि का शरीर है, तू राक्षसों और शत्रुओं का संहारक है। तू रोग-नाशक और औषधि रूप है। वह पूतद्रु हमारी कामना को पूर्ण करे ॥२८॥

३ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

[ऋषि—चातनः। देवता—अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, जगती, गायत्री]

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥४

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६

उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

मैं सूक्त में वर्णित फल की कामना वाला, अग्नि पर सब ओर से घी सींचता हूं। मैं अग्नि को प्रदीप्त करके सुख के लिये उनकी शरण

लेता है। वह अग्नि घृत से अपनी ज्वालाओं को तीक्ष्ण करते हुए दिन के समय हिंसा करने वालों से हमारी रक्षा करें ॥१॥ हे अग्ने ! हमारे घृतादि से भले प्रकार प्रवृद्ध हुए तुम राक्षसों का अपनी ज्वालाओं से स्पर्श करो और अभिचार करने वाले को भस्म कर डालो । राक्षस पिशाचादि का भी भक्षण करो ।२। हे अग्ने ! तुम मारने योग्य और रक्षा योग्य को जानने वाले, तीक्ष्ण ज्वालायुक्त, शक्ति सम्पन्न हो। हम से श्रेष्ठ और निकृष्ट शत्रुओं की हिंसा के लिए अपनी ऊपर नीचे की दाढ़ी को बन्द करो और आकाश में विचरण करते हुए राक्षसों को भी अपने दांतों से चबा डालो ॥३॥ हे अग्ने ! राक्षस की बाहरी त्वचा को चीर दो। इसे तुम्हारा तीक्ष्ण वज्र तेजहीन करे। तुम राक्षसों के जोड़ों को छिन्न-भिन्न करो। मांस भक्षी शृगाल इसे चारों ओर खींचता फिरे ॥४॥ हे अग्ने ! तुम जहाँ कहीं भी उपद्रवी राक्षसों को बैठ या घूमते हुए देखो, तो उसे वहीं फेंक दो और तीक्ष्ण होकर हिंसात्मक ज्वालाओं से बींध डालो ॥५॥ हे अग्ने ! हमारे अनुष्ठानों से अपने बाणों को निकालते हुए तथा मन्त्रों से उन्हें तीक्ष्ण करते हुए शत्रुओं के हृदयों को विदीर्ण कर डालो। इन राक्षसों को हमारी ओर बढ़ती हुई भुजाओं को भी तोड़ दो ॥६॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारे स्तोता हैं, तुम हमारा पोषण करो। राक्षसों को अपने आयुधों से नष्ट करो। तुम्हारे द्वारा हिंसित उन राक्षसों के कच्चे मांस को श्वेत रंग के मांसभक्षी पक्षी भक्षण करें ॥७॥ हे अग्ने। जो राक्षस इस शांत कर्म मे शरीर पीड़न आदि कर रहा है उसे बताओ। अपनी भस्म करने वाली ज्वाला से उसे छूओ ! उस पापी को अपनी कर्म साक्षि-रूप दृष्टि के वश में करो ॥८॥ हे अग्ने ! अपने विकराल नेत्र द्वारा यज्ञ की रक्षा करो। हमारे यज्ञ को वसुदेवताओं को शीघ्र पहुँचाओ। यज्ञ की रक्षा करते हुए तुम राक्षसों को मारो और वे तुम्हें अपने वश न कर पावें ॥९॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के दण्ड तथा अनुग्रह योग्य कार्यों के द्रष्टा हो। तुम प्रजा पीड़क राक्षसों के ऊपर के तीन अंगों को काटो। अपने तेज से उनकी पसलियां और पांव के तीन अंगों को भी काट दो ॥१०॥

त्रियातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति।

तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नियुङ्ग्धि ॥११॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योमनसः शरव्या जातते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१२॥
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् परागने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि॥१३॥
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेन शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः॥१४॥
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५॥
विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवा ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६॥
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८॥
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्यात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशूचतो दहन्तु॥१९॥
पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं नः ॥२०॥

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालाओं को यातुधान तीन बार प्राप्त हों। जो मेरे सत्य यज्ञ को छल से नष्ट करता है उसे मेरे सामने ही पकड़ कर अपनी ज्वाला से नष्ट कर दो ॥११॥ हे अग्ने ! जिस यातुधान के कारण स्त्री-पुरुष आक्रोशमय हैं और स्तोता कटु वाणी में मंत्रोच्चार कर रहे हैं, उस यातुधान पर अपने ज्वालायुक्त क्रोधित मन से आघात करो ॥१२॥

हे अग्ने ! यातुधानों को नीचा दिखाकर नष्ट करो । अभिचार कर्म करने वालों को अपनी तेजोमय ज्वालाओं से भस्म करो । दूसरों के प्राण लेकर संतुष्ट होने वाले राक्षसों को मारो ॥१३। अग्नि आदि सब देवता उस राक्षस को ऐसा मारें कि वह फिर न लौट सके। उस राक्षस द्वारा प्रेरित शाप, उसे ही प्राप्त हों। वह अग्नि के ज्वालारूप आयुध को प्राप्त हो। उस मिथ्याभाषी के हृदय को देवताओं के आयुध छेद डालें ॥ १४ ॥ जो राक्षस घोड़े के मांस से अथवा मनुष्य के मांस से अपना पोषण करता है, जो गौ के दूध को छीनता है, उन सब प्रकार के राक्षसों के शिरों को हे अग्ने ! अपनी ज्वाला से काट डालो ॥१५॥ गौ दुग्ध की कामना वाले राक्षस गौओं का विष प्राप्त करें, दुर्गमन करने वाले यातुधान पृथिवी पर उपलब्ध पदार्थों से हीन हों। सविता इन्हें व्रीहि आदि का भाग न लेने दें और इन्हें हिंसकों को सौंप दें ॥ १६॥ हे अग्ने ! हमको वर्ष भर तक प्राप्त होने वाले हमारी गौ के दूध को राक्षस न पी सकें जो राक्षस गौ-घृत से अपने को तृप्त करने की इच्छा करता है उसके मर्म स्थल को बींध दो ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम राक्षसों का सदा संहार करते रहे हो। कोई भी राक्षस तुम्हें वश में नहीं कर सका है। इसलिये मांसभक्षी राक्षसों का समूल नाश करो। वे तुम्हारे बाण से मुक्त न हो सकें ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! दक्षिण, उत्तर, पश्चिम, पूर्व दिशाओं में रहने वाले राक्षसों से हमारी रक्षा करो। तुम्हारी लपटें हिंसक यातुधानों का नाश करने में समर्थ हों ॥ १९ ॥ हे अग्ने ! तुम चारों दिशाओं में व्याप्त असुरों से अपने रक्षण-साधनों द्वारा निर्भय करो। तुम मेरे सखा रूप हो, मुझ सखा की रक्षा करो। तुम अजर और अमर्त्य हो, अतः मुझ जीर्ण और मरणधर्म वाले को बचाओ ॥२०॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्वज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥ २१॥
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥२२॥
विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।

अग्ने तिग्मेन शोचिशा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥२३॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणु ते महित्वा।
प्रादेवं मायाः सहते दुरेवाः शिशीते श्रृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥२४
ये ते श्रृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व। २५॥
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईडयः ॥२६

हे अग्ने ! राक्षस को भस्म करो, पशु रूप बना कर पीड़ा देने वाले राक्षसों को अपने नेत्र से देखो और अथर्वा अपने जिस मंत्र-बल से राक्षसों को भस्म कर चुके हैं, वैसे ही अपने दिव्य तेज से उन्हें भस्म करो ॥२१॥ हे अग्ने ! तुम कामनाओं की पूर्ति करने वाले, घर्षकवर्ण वाले, मंथन से उत्पन्न होने वाले और अनेक तरह से तृप्त करने वाले हो, तुम राक्षसों को अपने दर्शन मात्र से बल-हीन कर हिंसित करने वाले हो ॥२२॥ हे अग्ने ! विष के समान भयंकर तेज से भंगशील राक्षसों को मारो और ज्वालाओं के तेज से भस्म करदो। २३॥यह अग्नि अपने महान् तेज से तेजस्वी हैं, उसी के द्वारा सब भूतों को स्पष्ट करते हैं। राक्षसों की माया का नाश करने में यह समर्थ हैं। यातुधानों के संहार के लिये यह अपनी ज्वाला को प्रवृद्ध करते हैं ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे प्रसिद्ध सींग आयुध रूप एवं जरा रहित हैं। हमारे मन्त्रों द्वारा तीक्ष्ण वे सींग दुष्टों का क्षय करने वाले हों। तुम उनके द्वारा छिन्द्रान्वेषी यातुधानों का संहार करो ॥२५॥ वह अग्नि सब प्रकार के संताप देने वाले राक्षसों को मारते हैं। यह अमरण धर्म वाले हैं, इनका प्रकाश दमकता रहता है। यह स्तुति के पात्र, स्वयं शुद्ध तथा अन्यों के शोधक हैं ॥ २६ ॥

४ सूक्त

(ऋषि—चातनः। देवता—इन्द्रासोमादयो मंत्रोक्ताः।
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयत वृषणा तमोवृधः।

पराशृणीतमचितो न्योपतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥१
इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमांइव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदने ॥२॥
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३॥
इन्द्रासोमा वर्तयत] दिवो वधं सं पृथिव्या अघशं साय तर्हणम् ।
उत् वक्षत स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधान निजूर्वथः ॥४॥
इन्द्रासोमा वर्तयत दिवस्पर्यग्नितप्ते भियुवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरात्रिणो नि पर्शाने विध्यतु यन्तु निस्वरम् ॥५
इन्द्रासोमा वर्तयत दिवस्पर्यग्नितपे भियुवमश्महन्मभिः ।
यां वां होत्रा परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीइविजिन्वतम् ॥६
प्रति स्मरेथां तु जयद्भिरेवंहतं द्रुहो रक्षसो भंगुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥७
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आपइव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८॥
ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूपयन्ति स्वधाभि ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ व दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि प हीयतां तन्वा तना च ॥१०।

हे इन्द्र ! हे सोम ! राक्षसों को दुःख दो, उन्हें नष्ट कर डालो। तुम अभीष्टों के वर्धक हो, माया से वृद्धि को प्राप्त राक्षसों को भस्म कर दो। भक्षण करने वाले राक्षसों को मार कर हमारी ओर धकेलो और उनके पक्ष को अत्यन्त निर्बल करदो ॥ १ ॥ हे इन्द्र, सोम, देवताओ ! पापियों को हराओ जैसे अग्नि के ताप से चरु तपता है, वैसे ही राक्षसों

को तपाओ । मांसभक्षी विकराल नेत्र वाले राक्षसों में परस्पर द्वेष और शत्रु-भाव उत्पन्न करो ॥२॥ हे इन्द्र, सोम देवताओ ! दुष्ट कर्म वाले राक्षसों को आश्रयहीन कर ताड़ित करो। इन राक्षसों में से एक भी अन्धकार से न निकल पावें। इनका तिरस्कार करने के लिये तुम्हारा बल क्रोध से पूर्ण हो जाय ॥३॥ हे इन्द्र, सोम देवताओ! पाप को बढ़ाने वाले राक्षस पर आक्रोश और पृथिवी से हिंसा-साधन आयुधों को भजो। पर्वत और मेघों से उदय होते राक्षसों का संहार करने के लिये अपने वज्र को तीक्ष्ण करो ॥४॥ हे इन्द्र और सोम देवताओं ! तुम अग्नि से तपे हुये लोहायुधों को अन्तरिक्ष में सब ओर घुमाओ और उनकी पसलियों को तोड़ दो तब वे शब्दहीन होकर गिर पड़ें ॥५॥ हे इन्द्र और सोम देवताओ ! जैसे बलवान रस्सी अश्वों को बाँध लेती है वैसे ही हमारी स्तुति तुम्हें बाँध लें जिस आह्वान योग्य बुद्धि से तुम को प्रेरित करता हूँ वह तुम्हें बांध ले। जैसे बंदीजनों की स्तुतियां राजाओं को हर्षित करती हैं, वैसे ही यह मन्त्र आपको हर्षित करें ॥६॥ हे इन्द्र और सोम देवताओ ! गमन साधन अश्वों का स्मरण करो, उनके द्वारा यहाँ आकर हमारे द्रोहियों का संहार करो। दुष्कर्म करने वालों का जीवन दुःखमय हो। हमारा जो वैरी हमको एक बार भी दुःख पहुँचा चुका है उसका जीवन सदा दुःख से पूर्ण रहे ॥७॥ हे इन्द्र ! जो असत्य वचनों द्वारा मुझे शाप देता है, उस दुष्ट के असत्य वचन उसी प्रकार निकल जाँय जैसे हाथ में लिया हुआ जल उंगलियों की संधि से निकल जाता है ॥८॥ जो अपने अभिप्राय से मुझ सत्य कहने वाले को पीड़ित करते हैं और जो मुझे मंगलकारी स्वधा से दूषित करते हैं उन्हें सोम देवता सर्प को सौंप दें या निर्ऋति की गोद में फेंक दें ॥९॥ हे अग्ने ! जो हमारे शरीर के या हमारे पशु पुत्र आदि के शरीर के रस का हरण करना चाहते हैं, वे दुष्ट हिंसित होते हुये अपने ही शरीर से तथा पुत्रादि से बिछुड़ जांय ॥१०॥

परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ।११

सुविज्ञान चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥
यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४
अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं गूहमाना ।
वव्रम नन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७।
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८
प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥
उत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वध नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०।

हे देवगण ! जो शत्रु रात या दिन में हमारा वध करना चाहता है, वह अपने शत्रु और पुत्र से बिछुड़ जाय। वह तीन पृथिवियों के नीचे स्थित तम लोक जा पहुँचे ॥ ११ ॥ इसे विद्वान जनता है कि सत् और असत् वचन परस्पर प्रतिद्वन्दिता करते हैं। उनमें सत्य वचन की रक्षा सोम करते हैं। तथा वे असत्य वचन वाले को हिंसित करते हैं। इसमें मिथ्याभाषी कौन है यह भले प्रकार ज्ञात हो जाता है ॥१२॥ पापयुक्त असुर को और मिथ्या आचरण वाले को सोम देवता नहीं छोड़ते। वे पापी असुर की हिंसा करते हैं। उपरोक्त दोनों प्रकार के दुष्ट इन्द्र के बंधनों में जकड़े रहते हैं ॥१३॥

हूँ अग्ने ! मैं देवताओं से रहित होऊँ, उनका व्यर्थ आह्वान करता होऊँ, मिथ्याचरण में रत होऊँ, ऐसा मैं नहीं हूँ। फिर मुझसे रुष्ट क्यों हैं ? जो देवताओं के द्रोही हैं, वे दुष्ट बुरी गति को प्राप्त हों ॥१४॥ मैं यदि किसी को संताप देने वाला होऊँ तो आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊँ। हे आरोपक ! यदि तू मुझ पर व्यर्थ ही आरोप करता हो तो तू दश पुत्रों का विछोह प्राप्तकर ॥१५॥ जो दुष्ट अपने को साधु कहता है और मुझ यथार्थ आचरण वाले को दुष्ट बताता है, ऐसे मिथ्याभाषी को इन्द्र अपने विकराल हिंसात्मक वज्र द्वारा नष्ट करें। वह दुष्ट सब प्राणियों से नीचे और गिरा हुआ हो ॥१६॥ उलूकी के समान जो राक्षसी रात्रि में हमको मारने के लिए दौड़ती है और अपने को अदृश्य रखे हुए आती है, वह अथाह गर्त में पतित हो और सोम कूटने वाले पाषाण के शब्द से दुष्ट राक्षस स्वयं ही नाश को प्राप्त हों ॥१७॥ हे मरुतो ! तुम प्रजाओं में अनेक प्रकार से व्याप्त रहते हुए दुष्टों का हनन करने का विचार करो। पकड़ कर उन्हें चूर्णित कर दो। जो राक्षस पक्षी रूप से रात्रि में उड़ते और यज्ञ में बाधक होते हैं, उन सब को पीस डालो ॥१८॥ हे वज्रिन ! आकाश से वज्र को प्रेरित करो। उसे सोम से तीक्ष्ण करो। उस वज्र से पूर्वादि दिशाओं में रहने वाले राक्षसों को नष्ट कर दो ॥१९॥ श्वान के समान भक्षण करने वाले जो राक्षस अहिंसक इन्द्र की हिंसा करने के इच्छुक हैं, उनकी हिंसा के लिये इन्द्र वज्र को तीक्ष्ण करते हुए उन्हें मार दें ॥२०॥

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥२१॥
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥
मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥२३॥
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।

विग्रीवासो मूर देवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४॥
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५॥

हवि को मथने के लिए सामने आने वाले इन्द्र राक्षसों को अपने आयुध से नष्ट करें। जैसे कुल्हाड़ा वृक्ष को काटने को आता है, डंडा मिट्टी के बर्तन को फोड़ने को आता है, वैसे ही इन्द्र यातुधानों को नष्ट करते हुए आयें ॥२१॥ हे इन्द्र! जैसे मिट्टी के बर्तन को फोड़ते हैं, वैसे ही उलूक, उलूक के शिशु, श्वान, चकवा, गरुड़ आदि के रूप में आते हुए इस राक्षस का हनन करो ॥२२॥ यातना देने वाली यातुधान जाति हमारे पास न आवे। किमीदिन नामक राक्षस स्त्री-पुरुष दूर हों। अन्तरिक्ष हमको संताप से मुक्त करे और पृथिवी रोग, दस्यु आदि से हमारी रक्षा करे ॥२३॥ हे इन्द्र! संताप देने वाले राक्षस और मोह में डालने वाली हिंसिका राक्षसी का नाश करो। अभिचार कर्म वाले दुष्ट की ग्रीवा कट कर गिर पड़े और वह सूर्योदय को देखने वाला न हो ॥२४॥ हे सोम! हे इन्द्र! प्रत्येक हिंसक दस्यु पर दृष्टिपात करो। हमारी रक्षा के लिए चैतन्य रहो और दुष्टों पर वज्र का प्रहार करो ॥२५॥

५ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—शुक्रः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—बृहती; गायत्री; जगती; अनुष्टुप्; पंक्तिः, त्रिष्टुप्, शक्वरी)

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥१॥
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२॥
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥३॥

अयं स्राक्त्यो मणिःप्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥४॥
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥५॥
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥६॥
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥
स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः ।
स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः ।
उभयीस्ता परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ॥९॥
अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१०॥

यह तिलक वृक्ष की मणि कृत्या करने वाले के कर्म का प्रतिकार करने वाली है। यह वीर कर्म वाली शत्रुओं को भगाने में समर्थ है। यह यजमान की रक्षा करने वाली है और सुन्दर कल्याणमयी है। यह अधिकारी पुरुष के ही बाँधी जाती है ॥१॥ यह मणि शत्रुओं की नाशक और पुत्रादि सुन्दर वीरों के देने वाली है, यह बलवती शत्रुओं को दबाने वाली और कृत्या को कृत्याकारी पर ही प्रेरित करने वाली मेरी भुजा पर बँधने के लिए यहाँ आ रही है ॥२॥ इस मणि के प्रभाव से ही इन्द्र ने विजय प्राप्त कर असुरों को नष्ट किया और इसी के प्रभाव से वत्र को पराभूत किया। इसी के द्वारा वे आकाश-पृथ्वी के स्वामी हुए और इसी के प्रभाव से चारों दिशाओं को प्राप्त किया ॥३॥ यह मणि विद्वेषियों को लौटाने वाली, रोग की प्रतिकारक

और शत्रुओं को दबाने वाले तेज से तेजस्वी है। इसके धारणकर्त्ता को देखते ही शत्रु पलायन कर जाते हैं। यह सबको वशीभूत करने वाली मणि हमको तिरस्कार से बचावे ॥४॥ अग्नि का कथन है कि स्रावत्य मणि का बांधना सब सम्पत्तियों को प्राप्त कराने वाला है। यही बात बृहस्पति, सूर्य और इन्द्र ने भी कही थी। सर्व फलों की प्राप्ति को कहने वाले यह अग्नि शत्रुओं द्वारा मेरे निमित्त की गई कृत्या को उसके कर्त्ता के पास ही अपने प्रभाव से लौटावें ॥५॥ मैं आकाश-पृथिवी, दिवस और दिवाकर को अपने और कृत्या के मध्य में दीवार रूप से स्थापित करता हूं। वे हितकर फल वाले देवता प्रतिसर मन्त्रों के बल से कृत्या को उल्टा लौटा दें ॥६॥ जो मनुष्य स्रावत्य मणि को कवच रूप से धारण करते हैं उनके निमित्त की गई कृत्या का परिहार करने वाली यह मणि सूर्य द्वारा अन्धकार को मिटाने के समान शत्रु द्वारा की गई कृत्या का नाश कर देती है ॥७॥ मैं साधक, महर्षि अथर्वा के समान इस मणि के द्वारा शत्रु-सेनाओं पर विजय प्राप्त कर चुका। इसी मणि के प्रभाव से राक्षसों का हनन कर रहा हूँ॥८॥आंगिरा-कृत्य कृत्या, राक्षसों और शत्रुओं के द्वारा की हुई कृत्या और अपने ही द्वारा की गई निष्फल कृत्या—यह सभी कृत्याएं नब्बे नदियों के भी पार जाकर पड़ें ॥९॥ कृत्या का प्रतिकार की इच्छा वाले इस यजमान के लिए, रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, विष्णु, प्रजापति, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ विराट् और समस्त ऋषिगण अन्य कृत कृत्या को नष्ट करने वाली मणि रूप कवच को धारण करावें ॥१०॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वाञ्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११॥
स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१२॥
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१३॥
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत।

अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणि सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४॥

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओस्वान्त्संजयोमणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६॥

असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासानि ॥१९॥

आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०॥

अस्मिन्निन्द्रो वि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत् ॥२१॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवां अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा । स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२॥

हे मणि के कारण रूप वृक्ष ! तू अल्प फल देने वाली ओषधियों में श्रेष्ठ है। भारवाहक पशुओं में जैसे वृषभ श्रेष्ठ है, वन पशुओं में सिंह श्रेष्ठ है, वैसे ही तुझ श्रेष्ठ से जिस बल को हम पाना चाहते थे, वह प्राप्त कर लिया है ॥११॥ उक्त महिमा वाली मणि को जो बांधता

है, वह सिंह के समान बली होता है। गौओं में जैसे वृषभ स्वेच्छाचारी होता है वैसे ही मणि बाँधने वाला शत्रुओं का वध करने वाला होता है ॥१२॥ इस मणि के धारणकर्त्ता पर गन्धर्व और अप्सराएं प्रहार नहीं करते। वह सब दिशाओं में सुशोभित होता है ॥१३॥ हे मणे! तुझे प्रजापति कश्यप ने बनाकर सबके उपकार के लिये प्रेरित किया, तुझे इन्द्र ने वृत्र के हनन कार्य के लिए धारण किया, अतः जो पुरुष तुझे धारण करता है वही युद्ध में जीतता है। इस स्रावत्य मणि को देवताओं ने कवच के समान रक्षात्मक प्रभाव वाला किया था ॥१४॥ हे शान्ति की इच्छा वाले पुरुष! जो व्यक्ति हिंसक कृत्याओं, दीक्षाओं और श्येन-याग आदि के द्वारा तेरी हत्या करना चाहता है, हे इन्द्र! उस हत्यारे पर अपना सौपर्व वाला वज्र प्रहार करो ॥१५॥ यह परमशक्तिशालिनी मणि कृत्यादि को निर्वीर्य करने वाली और विजयात्मक साधनों से सम्पन्न है। यह मणि सब ओर से मेरे लिये रक्षक सुन्दर कल्याणों की साधन रूप है। यह मेरी संतानादि तथा सम्पत्ति की रक्षा करे ॥१६॥ हे इन्द्र! हमारे उत्तर, पश्चिम दक्षिण में शत्रु का नाश करने वाली ज्योति रहे। तुम उस ज्योति को हमारे सामने करो ॥१७॥ आकाश-पृथिवी, सूर्य अग्नि, इन्द्र और धाता मुझे कवच प्रदान करें ॥१८॥ इन्द्राग्नि का जो मणि रूप प्रचंड कवच है उसका वे ही देवता पालन करते हैं। वह कवच सब ओर से मेरा रक्षक हो, जिससे मैं वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला होऊँ ॥१९॥ मेरे मंगल के लिये इन्द्रादि देवता की यह मणि मेरी भुजा पर चढ़ी है। हे मनुष्यो! ऐसी मणि को शत्रु के उत्पीड़न, शरीर रक्षक और बल के लिये धारण करो ॥२०॥ इन्द्र इस मणि में हमारे इच्छित सुखों को व्याप्त करें। हे इन्द्र! इस मणि में स्वयं व्याप्त होओ। इस मणि को इस प्रकार मंगलकारिणी करें जिससे यह यजमान को सौ वर्ष की आयु पाने वाला तथा वृद्धावस्था तक निरोग रहने वाला बनावें ॥२१॥ अपने सेवकों का मंगल करने वाला देवता, मनुष्यादि के स्वामी, वृत्र हननकर्त्ता इन्द्र तुझे मणि धारण करावें और वे ही सब ओर से दिन और रात्रि में भी तेरी रक्षा करें ॥२२॥

६ सूक्त

(ऋषि—मातृनामा । देवता—मंत्रोक्ताः, मातृनामा, ब्रह्मणस्पति ।
छन्द — अनुष्टुप्; बृहती, जगती, पंक्तिः, शक्वरी)

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥१॥

पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥२॥

मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥३॥

दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः ।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥४॥

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥५॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायाञ्छ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥६॥

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥७॥

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥८॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥९॥

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय॥१०॥

हे गर्भिणी ! तेरी उत्पत्ति पर पति को प्राप्त कराने वाले जो उन्मार्जन तेरी माता ने किये, उनमें त्वचा दोष तेरी इच्छा न करे, 'आलि' नामक रोगों के देवता और सम्वर्त नामक रोगों के देवता वत्सप भी तुझे बाधा न दें ॥१॥ गर्भिणी को पीड़ा देने वाले 'पलाल' के समान अति सूक्ष्म राक्षस को, अनुपलाल को, शुक्र को, कोक को, मलिम्लुच को, पलीजक को, आश्रेष को वव्रिवास, प्रमीलिन और ऋक्षग्रीव नामक राक्षसों को मारता हूँ ॥२॥ हे दुर्नाम नामक रोग के देवता ! तू इस गर्भिणी के ऊरुओं और अन्तः प्रदेश को संकुचित न कर तथा ऊरुओं में नीचे की ओर भी न खिसक। मैं इस दुर्नाम रोग-नाशिनी सरसों रूप ओषधि को प्राप्त करता हूँ ॥३॥ दुर्नाम और सुनाम इन दोनों में से हम दुर्नाम को नष्ट करते हैं और सुनाम स्त्रियों की इच्छा करने वाला हो ॥४॥ केशी, स्तम्बज, तुण्डिक नामक व्याधियाँ दुर्भाग्य रूप हैं उन्हें गर्भिणी के मुष्कों और कटि सन्धि स्थान से दूर हटाते हैं ॥५॥ स्पर्श द्वारा मारने वाला प्रमृश को, सूँघकर मारने वाले अनुजिघ्र को, चाट कर मारने वाले रेरिह को, क्रव्यादि तथा सभी व्याधि-राक्षसों का यह पीली सरसों नाश करे ॥६॥ पिता के समान या भाई के समान बन कर जो शरीर में प्रविष्ट हो, हिजड़े के रूप में या अलक्षित रूप में आने वाले दुष्टों को यह सरसों नष्ट करे ॥७॥ सोते में, जागते में राक्षस तेरी हिंसा करना चाहता है, उसे सूर्य द्वारा तम का नाश के समान ही यह सरसों नष्ट करदे ॥८॥ हे ओषधे ! जो दुष्ट इस स्त्री को मरे हुए बच्चे वाली करे या जो इसके गर्भ को विपत्ति ग्रस्त करे तू उसे नष्ट करती हुई इसके गर्भ को पुष्ट करने वाली हो ॥९॥ जो राक्षस गधे के समान रेंकते हुए, जो कुसूलाकर भयंकर प्रकृति वाले शाला के सब ओर नृत्य-सा करते हैं, उन्हें हे श्वेत और पीली सरसों ! तू अपनी गन्ध के द्वारा ही नाश को प्राप्त करा ॥१०॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबाइव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥११

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥१२॥

य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥१३॥
ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृंगाणि बिभ्रतः।
आपकेस्थाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशया
॥१४॥
येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णी पुरो मुखा।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाश
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥१५॥
पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपति स्त्रियम् ॥
उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम्।
उपेषन्तमुदुम्बल तुण्डेलमुन शालुडम्।
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गोरिव स्पन्दना ॥१७॥
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥१८॥
ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥१९॥
परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत्।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥२०॥

मुर्गे के समान बांग देने वाले, दूषित कर्म वाले, पागलों के स
अङ्गों को चलाने वाले ऐसे-ऐसे सब प्रकार के पिशाचों को हम
गर्भिणी के पास से भगाते हैं ॥११॥ जो सूर्य के ताप को सहन न क
वाले, बकरी के चर्म को धारण करने वाले, कच्चे मांस को खाने व
रक्त से सने मुख वाले, हड्डी आदि को अलंकार रूप से धारण क
वाले राक्षसों का नाश करते हैं ॥१२॥ जो पिशाच गर्भ से अ
स्थूलता प्राप्त स्त्री को भी कन्धे पर लेकर नाचते हैं, उन स्त्रियों के व
प्रदेश को व्यथित करने वाले पिशाचों को हे इन्द्र! तुम मार डालो। १

जो पिशाच स्त्रियों के आगे सींग लिये घूमें पाकशाला में जाकर अट्टहास करें, जो गीली वस्तुओं में अग्नि उत्पन्न करें उन सब पिशाचों को हम गर्भिणी के रहने के स्थान से दूर करते हैं ॥१४॥ उल्टे पैर वाले, खल, गोबर, लीद आदि से उत्पन्न होने वाले, छिन्नमस्तक, घड़ के समान अण्डकोश वाले और शीघ्रगामी राक्षसों को सरसों के प्रभाव से बृहस्पति दूर करें ॥१५॥ जो राक्षस विस्फरित नेत्र और क्षीण ऊरु वाले हैं, जो स्त्रीद्वेषी हैं वे नष्ट हो जांये । हे सरसों! इस सोती हुई स्त्री को वशीभूत करने वाले राक्षस का नाश कर ॥१६॥ मुनिकेश, मरीमृश, उदुम्बल, शालड नामक पिशाचों को,दुष्ट गौ दुहाने के बाद जैसे दूध के वर्तन में लात मारती है, वैसे ही सरसों पैर से कुचल दे ॥१७॥ हे गर्भिणी! तेरे गर्भ को पीडित करने वाले या उत्पन्न शिशु को मारने की इच्छा वाले पिशाच को यह औषधि पांव से कुचले। हे श्वेत सरसों! गर्भ को नष्ट करने वाले उस राक्षस को व्यथित कर ॥१८॥ जो पिशाचादि आधे उत्पन्न गर्भों को नष्ट कर देते हैं, जो स्त्री का छद्मवेश बनाकर सूतिका रूप से सोते हैं उन गर्भिणियों को अपना भाग मानने वाले गन्धर्व-राक्षस, पिशाच इस श्वेत सरसों के जल रहित मेघ के वायु द्वारा ताड़ित करने के समान हत हों ॥१९॥ हवनादि से बचे हुए सरसों को गर्भिणी धारण करे। हे गर्भिणी, नीवी में धारण करने पर दोनों सरसों तेरी रक्षक हों ॥२०॥

पवीनसात् तङ्गल्वाच्छायकादुत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥२१॥
द्वया स्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनगुरेः ।
वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥२२॥
य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥२३॥
ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४॥

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥२५॥
अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६॥

हे गर्भिणी ! यह पीली सरसों वज्र के समान नाक वाले, तंगल्व, सायक और नरक नामक असुरों से तुझे बचावे ॥२१॥ हे औषधे ! दो मुख, चार नेत्र, पाँच पाँव वाले, अंगुलियों से हीन पांव वाले, निम्न मुख वाले, सर्वांग व्याप्त पिशाच से इस गर्भिणी को बचा ।२२॥ जो राक्षस कच्चे नवीन मांस का भक्षण करते और माया पूर्वक गर्भों को भी खा जाते हैं; उन राक्षसों को इस गर्भिणी के समीप से दूर करते हैं ॥२३॥ श्वसुर की आज्ञा से पुत्र के पास जाने वाली पुत्र वधू के समान सूर्य की आज्ञा से पृथिवी के प्राणियों को पीड़ा देने के लिये आने वाले पीड़कों को यह पीत श्वेत सरसों ताड़ित करे ॥२४॥ हे श्वेत सरसों ! उत्पन्न होते हुए गर्भ को भूत-बाधा से बचा और उत्पन्न हुई संतान की रक्षा कर ! इन राक्षसों को गर्भिणी के पास से अन्यत्र भेज ॥२५॥ हे श्वेत सरसों ! इस गर्भिणी की संतान हीनता, मृतवत्सता रुदन और पाप-जालों को शत्रु के ऊपर इस प्रकार डाल जैसे अपने किसी प्रिय पर पुष्प माला को डालते हैं ॥२६॥

७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

[ऋषि–अथर्वा । देवता–भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः । छन्द–अनुष्टुप्; बृहती; उष्णिक्, जगती, पंक्ति, शक्वरी]

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥१॥
त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥२॥
आपो अग्रं दिव्या ओषधयः ।

तास्ते यक्ष्ममेनस्य मंगादङ्गादनीनशन् ॥३॥
प्रस्तृणती स्तम्बिनोरकेशुङ्गाः प्रतन्वतीरोपधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनोर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥४।
यद् वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोपधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६॥
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम ।
यथेम पारयामसि पुरुष दुरितादधि ॥७॥
अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेपजीः सन्त्वाभृताः ॥८॥
अवकोल्वा उदकात्मान ओपधयः ।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णश्रृगयः ॥९॥
उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा विषदूपणीः ।
अथो बलासनाशनोः कृत्यादूपणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोपधीः । १०

विभिन्न वर्ण और विभिन्न आकार वाली ओपधियों के सामने उपस्थित होकर रोग-नष्ट करने की प्रार्थना करते हैं ॥१॥ आकाश जिनका पिता, पृथिवी जिनकी माता तथा समुद्र मूल है, वे ओपधियाँ यक्ष्मा रोग से रक्षा करें ॥२॥ हे रोगिन् ! तेरे यक्ष्मा रोग को जल और दिव्य ओपधियाँ अङ्ग-भङ्ग से खींच लें ॥ ३ ॥ हे रोगिन् ! टहनी, गुद्दे, अनेक शाखा वाली, फैली हुई, स्तम्ब वाली, नल वाली, जीवन, दायिनी, देवात्मक ओपधियों को तेरे लिये ग्रहण करता हूँ ॥ ४ ॥ हे रोग को नष्ट करने वाली ओपधियो ! तुममें जो रोग-नाशक बल है, उससे इसे यक्ष्मा रोग से बचाओ। मैं मंत्र-युक्त ओपधि को करता हूँ॥५॥ कल्याण के निमित्त जीवनदायिनी, क्रोध रहित, रोपण वाली पुष्पमती

जीवन्ती का मैं आह्वान करता हूँ ॥६॥ चैतन्यतायुक्त मंत्ररूप ओषधियाँ इस पुरुष के रोग को नष्ट करने के लिये यहाँ आवें ॥७॥ जिनका जल गर्भ है, अग्नि के लिये जो भक्ष्य हैं, जो सदा नवीन रहती हैं, इस प्रकार की सहस्रों नाम वाली ओषधियाँ यहाँ लाई जावें ॥८॥ सिवार जिनका गर्भावरक, जन जिनका आत्मा सींग के आकार के गंधमय दो फल वाली जो ओषधियाँ हैं, वे इसके पाप का नाश करें ॥ ९ ॥ जलोदर आदि रोगों की नाशक, विष-शामक, रोगों पर प्रबल, कासादि नाश करने वाली और कृत्याओं का खण्डन करने वाली ओषधियाँ यहाँ आवें ॥१०॥

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥११॥
मधु मन्मूल मधुमदग्रामासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य-
भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥१२॥
यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः ।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥१४॥
सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥१५
मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि ।
भूमिं सतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥१६॥
यो रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।
ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥१७॥
याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥१८॥

सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥१९॥
अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः ।
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥२०॥

स्वयं लाई गई, रोगों को दबाने में समर्थ, मंत्र द्वारा अभिमंत्रित ओषधियाँ इस ग्राम के गौ, अश्व आदि पशु और मनुष्यों की रक्षक हों ॥११॥ वीरुधों का मूल, अग्र भाग, मध्य भाग, पत्ते पुष्प, फल आदि सभी मधुर होते हैं। जो इस मधु का सेवन करता है वह अमृत का सेवन करता है। वह निरोग, पुत्र-पौत्रादि वाला तथा गौ से घृत अन्न आदि का दोहन करता है ॥१२॥ पृथिवी में उत्पन्न असंख्य पत्तों वाली ओषधियाँ मुझे मरणात्मक पीड़ा देने वाले पाप से बचावें ॥१३॥ यह वैयाघ्रमणि रोग रूप पापों से रक्षा करने वाली है, वह हमारे रोगों को अन्यत्र ले जाती हुई नष्ट करे ॥१४॥ जैसे अग्नि के प्रचण्ड रूप से प्राणी भयभीत होते और सिंह की दहाड़ से घबराते हैं वैसे ही इन ओषधियों द्वारा व्यथित किया गया, पशु एवं मनुष्यों का रोग नदियों को लाँघ कर सुदूर चला जाय ॥१५॥ जो ओषधियाँ पृथिवी को आच्छादित कर लेती हैं, जिनका स्वामी वनस्पति है, वे वैश्वानर अग्नि से भी श्रेष्ठ ओषधियाँ रोग से छुड़ाने वाली हैं ॥१६॥ महर्षि अंगिरा द्वारा कही गई कल्याण-कारिणी ओषधियाँ पर्वतों और समतल प्रदेशों में उत्पन्न होती हैं, वे दूध के समान सार वाली होकर सुख प्रदान करें ॥१७॥ जो ओषधियाँ नेत्रों के सामने हैं, जिनमें रोग-नाशक तत्व विद्यमान हैं, जो अज्ञात हैं, उन सभी ओषधियों को हम जानते हैं ॥१८॥ वे सब ओषधियाँ मेरे अभिप्राय को जान कर मुझे इस योग्य करें कि मैं इस पुरुष को रोग रूप पाप से मुक्त कर सकूँ ॥१९। ओषधियों का दर्प पीपल, राजा सोम और हवि अमृत है। धान और जौ रूप ओषधियाँ अंतरिक्ष से वृष्टि होने के कारण अन्तरिक्ष की सन्तान रूप और अमृतत्व से युक्त हैं ॥२०॥

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः ।

यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥२१॥

तस्यामृतस्येम बल पुरुषं पाययामसि ।
अथो कृणोमि भेजष यथासच्छतहायनः ॥२२॥

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२३॥

याः सुपर्णा अङ्गिरसादिव्या या रघटो विदुः ।
वयांसि हसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२४॥

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥२५॥

यावतीषु मनुष्यां भेषजं भिषजो विदुः ।
तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥२६॥

पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलनीरफला उत ।
समातरइव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥२७॥

उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।
अथो यमस्य पड्बीशाद् विश्वस्मद् देवकिल्बिषात् ॥२८॥

विद्युत की कड़क से, मेघ के गर्जन से और वर्षा रूप वीर्य से वायु और पर्जन्य तुम्हारी रक्षा करता है तब तुम विभिन्न प्रकार से गतिशील रहती हो ॥२१॥ ओषधियों के अमृतरूप बल को इस पुरुष को पिलाते हैं। मैं इस ओषधि से इसे सौ वर्ष की आयु वाला होने में समर्थ करता हूँ ॥२२॥ जिन ओषधियों को वराह, नौला, सर्प, गन्धर्व आदि जानते हैं, उन ओषधियों को इस पुरुष की रक्षा के लिये आह्वान करता हूँ ॥२३॥ अंगिरा ने जिन सुन्दर वर्ण वालीओषधियों को व्यवहृत किया, रघट जिन द्रव्य ओषधियों के ज्ञाता हैं, हंसादि पक्षी जिन ओषधियों को जानते हैं, उन सभी ओषधियों का इस पुरुष के रक्षार्थ आह्वान करता हूँ ॥२४॥ अहिंसित गौएं जिन ओषधियों का भक्षण करती हैं, जिन्हें

भेड़ बकरी खाती हैं, वे सब ओषधियां सुख प्रदान करें ॥२५॥ भिषग्गण जिन ओषधियों को तेरे कल्याण के लिए यहां ला चुके हैं ।२६॥ पुष्प-फल से युक्त ओषधियां इस पुरुष के लिये आरोग्यात्मक फल का दोहन करें ॥२७॥ हे रोगिन् ! मैंने तुझे पंच शलाका, दश शलाका वाले काष्ठ के पाद बंधन से और यम के पाद बंधन से छुड़ाने के लिये मन्त्र शक्ति से प्राप्त कर लिया है ॥२८॥

८ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः । देवता—इन्द्रः वनस्पतिः, परसेनाहननं । छन्द—अनुष्टुप्; बृहती, पंक्तिः जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥१॥

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।
धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥२॥

अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥३॥

परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ॥४॥

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥५॥

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥६॥

बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥७॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥८॥
सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥९॥
मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः ।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥१०॥

इन्द्र देवता वीर हैं, सामर्थ्य वाले और शत्रु-सेनाओं का मंथन करने वाले हैं। वे अग्नि का मंथन करें जिससे हम शत्रुओं को मारने में समर्थ होवें ॥१॥ अग्नि में गिरने वाली जीर्ण रस्सी शत्रु की सेना को जीर्ण करे। अग्नि के धुँए को देखते ही शत्रु भयभीत हो जांय ॥२॥ हे पीपल ! इन शत्रुओं की हिंसा कर। हे खदिर ! इन सब गमनशील शत्रुओं का भक्षण कर। यह एरंड के समान टूट जांय। काष्ठ इनको आघातों से नष्ट करे ॥३॥ वधक काष्ठ हिंसात्मक उपायों से इन शत्रुओं का हनन करे, परुष वस्तु इन्हें ऐंठ डाले। जैसे वृहद् जाल से बाण टूट जाते हैं, वैसे ही यह शत्रु टूट जांय॥४॥अन्तरिक्ष का जाल और दिशाओं का जाल का दण्ड रूप बना कर उसे इन्द्र ने धारण किया और उसी से दैत्य सेनाओं को उसने नष्ट कर डाला ॥५॥ महान् इन्द्रदेव का जाल अत्यन्त विशाल है। हे इन्द्र ! उस जाल के द्वारा इन शत्रुओं को पराङ्मुख करो। इनमें से कोई शेष न बचे ॥६॥ हे वीर इन्द्र ! तुम अपने विशाल जाल से शत्रुओं को पकड़ कर लाखों दस्युओं का नाश कर डालो ॥ ७ ॥ इन्द्र का विशाल जाल यह महान् लोक ही है, मैं इसी के द्वारा सब शत्रुओं को अन्धकार से ढकता हूं ॥८॥ निन्द्रा, तन्द्रा, मोह, आर्ति, निऋ ति, व्यृद्धि आदि के द्वारा उन शत्रुओं को आच्छादित करता हूं ॥९॥ यह शत्रु मृत्यु के पाश से बंध चुके हैं, मैं इन्हें मृत्यु के ही आधीन करता हूँ। इन शत्रुओं को बांध कर मृत्यु के दूतों की ओर लिये जाता हूँ ॥१०॥

नवताधून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परः सहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥११॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा ।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥१२॥

विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥१३॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१४॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१५॥

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥१६॥

घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥१७॥

मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥१८॥

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९॥

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥२०॥

सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥२१॥

दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः ।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक्
परिरथ्यम् ॥२२॥

संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् ।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥२३॥
इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥२४॥

हे मृत्युदूतो ! इन शत्रुओं को ले जाओ । हे यमदूतो ! इनके सहस्रों वीरों का हनन करो । रुद्र का आयुध इन्हें नष्ट करे ॥११॥ जाल दण्ड को ग्रहण कर साध्य देवता शत्रुओं पर जा रहे हैं । एक जाल दण्ड को रुद्र, एक को वसु और एक को आदित्यों ने उठा लिया है ॥१२॥ विश्वेदेवा बलपूर्वक ऊपर से ही मारें और रुद्र मध्य में संहार करते हुए भूमि पर गिरा दें ॥१३॥ वनस्पतियों, उनसे निर्मित होने वाली औषधियों, लताओं और दुपायों चोपायों को मंत्र शक्ति से प्रेरित करता हूँ । यह सब उस शत्रु-सेना का संहार करें ॥१४॥ गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस और पितरों को मंत्र बल से प्रेरित करता हूँ, वे शत्रु सेना का संहार करें ॥१५॥ हे शत्रो ! इन मृत्यु पाशों को तू लाँघ नहीं सकता । यह कूट इन शत्रु सेना का हर प्रकार संहार कर डालें ॥१६॥ यह हवि अग्नि मे तप रहा है यह सोम शत्रु-नाशक शक्ति से युक्त है । हे भव, शर्व देवताओ ! शत्रु सेना का संहार करो ॥१७॥ यह शत्रु भूख, अलक्ष्मी और भय को प्राप्त होते हुए मृत्यु के मुख में पड़ें । हे इन्द्र, हे शर्व ! इस शत्रु सेना का संहार करो ॥१८॥ हे शत्रुओ ! तुम मंत्रबल से हार जाओ और त्रस्त होकर भागने लगो । मन्त्रों के स्वामी बृहस्पति इनमें से किसी को भी शेष न रहने दें ॥१९॥ इन शत्रुओं के हाथ शस्त्र ग्रहण करने में समर्थ न हों, उनके शस्त्र नीचे गिर पड़ें । यह भय से व्याकुल हो जांय और इनके मर्मस्थल बिध जांय ॥२०॥ आकाश-पृथिवी, अन्तरिक्ष और देवगण इन्हें अभिशापित करें । यह प्रतिष्ठा को प्राप्त न हों । यह किसी अथर्व के विद्वान् का आश्रय न पावें । परस्पर विद्वेषयुक्त

हैं, पुरोडाश सुम हैं, अन्तरिक्ष रहने का स्थान, आकाश-पृथिवी पक्षसी और ऋतुऐं लगाम रूप हैं। वाणी परिरथ्य और अन्तर्देश किंकर रूप हैं ॥२२॥ सम्वत्सर इनका रथ, परिवत्सर रथ की गद्दी, विराट् ईषा, अग्निमुख और चन्द्रमा सारथि है। इन्द्र इनके बांये और बैठने वाले हैं ॥२३॥ हे राजन्! इधर से विजय, उधर से विजय, सब ओर से जय ही जय। हमारे यजमान विजय प्राप्त करें, शत्रु हार जांय, इन मित्रों की विजय के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। नीले और लाल डोरों से शत्रुओं को लपेटता हूं, उनके लिए आहुति दुराहुति हो ॥२४॥

९ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मंत्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप, जगती)

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥१॥
यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचः ॥२॥
यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम्।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम्
॥ ३ ॥

बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥४॥
बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५॥
वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥६॥
षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥७॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥८॥
अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥९॥
को विराजो मिथुनत्वं प्रवेक ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥१०॥

वह विराट् वत्स कहाँ से उत्पन्न हुए, किस लोक और पृथिवी से हुए? वह जल से प्रकट हुए। मैं तुम से ही पूछता हूँ कि तुमने उन्हें किस प्रकार समझा है? ॥१॥ जिन्होंने जल के आश्रय में त्रिभुज रूप से शयन किया और अपने ही महत्व से जल को व्यथित कर दिया, विराट् का वह वत्स अभीष्ट को पूर्ण करता है और उसने शरीर को अपनी गुफा बनाया है ॥२॥ तीन बृहद् महत्तावान् हैं, इनमें से चौथी जो वाणी है, उससे एकाकी होने पर ही पुरुष मिल सकता है, उसे ब्रह्म जानना चाहिए ॥३॥ बृहद् द्वारा पांच साम निर्मित हुए, उनसे पष्ठात् हुए। आकाश-पृथिवी ने बृहद् का निर्माण किया। बृहती मित कहाँ से हुई ॥४॥ माता की मात्रा बृहती की मात्रा से निर्मित है। मातलि माया से हुआ और माया से माया प्रकट हुई ॥५॥ आकाश-पृथिवी जहां तक हैं वहां तक अग्नि बाधक हो सकते हैं। वैश्वानर अग्नि पर ही द्यौ प्रतिष्ठित है। दिन के छठे भाग में स्तोम षष्ठात् हो जाते हैं ॥६॥ हे कश्यप ! तुम युक्त और योग्य को भले प्रकार जोड़ते हो। हम छः ऋषि कहते हैं कि विराट् ब्रह्मा का पिता बताया जाता है, इस लिए हमको उस विराट् का उपदेश करो ॥७॥ विराट् जब प्रच्युत होते हैं तब यज्ञ भी नहीं होते। जब विराट् को उपतिष्ठ करते हैं तब यज्ञों का भी उपस्थान करते हैं। कर्म द्वारा प्राकट्य होने पर जिसके प्रति श्रद्धा होती है, वही विराट परम व्योम स्थित है ॥८॥ हे ऋषियो ! अप्राण विराट् प्राणन कर्म वाली प्रजाओं में प्राण के रूप में प्रविष्ट होता है, फिर वह स्वराट् को प्राप्त होता है। तुझ में विराट् को देखा जा सकता है और

नहीं भी देखा जा सकता ॥९॥ प्रजापति ही विराट मिथुनत्व के ज्ञाता हैं, वही ऋतु और कल्पों के ज्ञाता हैं, वही इनके क्रमादि और स्थानों को जानते हैं ॥१०॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥११॥
छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥१२॥
ऋतस्या पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥१३॥
अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्की यजमानाय
स्वराभरन्तीम् ॥१४॥
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥१५॥
षड् जाता भूता प्रथमज ऋतस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति ।
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥१६॥
षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥१७॥
सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्त ऋतवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥१८॥
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥१९॥
कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥२०॥

यह विराट् उषा रूप में प्रथम उत्पन्न हुआ । इसी ने उषा रूप से सृष्टि का अन्धकार मिटाया । विराट सम्बन्धी उषा अन्य उषाओं में

व्याप्त होकर दमकती है । सोम, सूर्य, अग्नि आदि सब देवता विराट् के ही आश्रित हैं । विराटात्मक उषा सूर्य की वधू है । यह प्राणियों को प्रकाश प्रदान करने वाली है॥११॥जरा को प्राप्त न होने वाले छन्द पक्ष उषा रूपी विराट् के प्राकट्य : पर समान कारण का अनुसरण करते हैं । सूर्य की वधु उषा उन ज्योति रूप सूर्य के महान् वीर्य के जानने वाली है । १२ ॥ सूर्य, चन्द्र, अग्नि सत्य मार्ग में अपने वीर्य के साथ जाते हैं । इनमें से एक की शक्ति ऋत्विजों को तृप्त करती, दूसरे की शक्ति बल को पुष्ट करती और तीसरे की शक्ति की शक्ति राष्ट्र रक्षण में लगी रहती है ॥ १३ ॥ चतुर्थ शक्ति को अग्नि, सोम तथा अन्य ऋषियों ने धारण किया फिर गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टप्, जगती, अर्की और बृहत् नामक यज्ञ के पक्ष बनाये गए ॥१४॥ पंच शक्तियों के अनुकूल पाँच दोह, पांच गौ के अनुकूल पाँच ऋतुयें हैं । पांच दिशायें पन्द्रह द्वारा समर्थ होती हुई योगी के लिए समान रूप हो जाती हैं ॥१५॥ ऋतु से पूर्व छः जन्मे । दिन के छँओं विभागों का छः साम वहन करते हैं । छँओं योग सीर के अनुगामी साम हैं । आकाश-पृथिवी और उर्वियों के छः भेद कहे जाते हैं ॥ १६ ॥ छै महीने शीत ऋतु के और छँ महीने उष्ण ऋतु के कहे जाते हैं । इससे अधिक को हमें बताओ । विज्ञ-जन सप्त पर्ण सप्त छन्द और सप्त दीक्षाओं को जानते है ॥१७॥ सात होम, सात समिधा, सात मधु और सात ऋतु हैं । पुरुष को सात प्रकार के घृत मिलते हैं । इसी प्रकार सात गृध्र सुने जाते हैं ॥१८॥ सात छन्द, चार उत्तर परस्पर समर्पित हैं । उनमें स्तोम किस प्रकार स्थित है और वे किस प्रकार स्तोमों में समर्पित हैं ॥१९॥ त्रिवृत् से गायत्री किस भाँति व्याप्त है, पंचदश से त्रिष्टुप् किस प्रकार कल्पित हैं : तेंतीस से जगती, अनुष्टुप् और इक्कीस किस प्रकार है ? ॥२०॥

अष्ट जाता भूता प्रथमज ऋतस्याष्टेन्द्र ऋत्विजो दव्या ये ।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ २१॥
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वा सं चरति प्रजानन् ॥२२
अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।

अपो मनुष्या नोपधीस्तां उ पञ्चानु सेचिरे ॥२३॥
केवलीन्द्राय दुदुहे गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना।
अथातर्पयच्चतुर्धा देवान् मनुष्यां असुरानुत ऋषीन् ॥२४॥
को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकऋतुः कतमो नु सः ॥२५॥
एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेक ऋतुर्नाति रिच्यते ॥२६॥

ऋतु के प्रथम आठ भूत उत्पन्न हुये, वे आठों दिव्य ऋत्विज् हैं। हे इन्द्र! आठ पुत्र वाली अदिति अष्टमी की रात्रि में हव्य ग्रहण करती है ॥२१॥ तुम्हारे समान जन्म वालों में, तुम्हारे सख्य भाव को पाकर मैं सुखी हूँ, तुम्हारा कल्याण करने वाला ऋतु ही सबको जानता हुआ घूमता है ॥ २२ ॥ इन्द्र की आठ यम की छः, ऋषियों की सतहत्तर ओषधियाँ हैं, उन ओषधियों को और मनुष्यों को पाँच जल सींचते हैं ॥२३॥ प्रथम प्रसूता धेनु ने अमृत रूप दूध का दोहन किया। उसने इन्द्र के लिये दुहकर फिर सभी देव, ऋषि, मनुष्य और असुरों को उससे संतुष्ट किया ॥२४॥ वह धेनु कौनसी है? वह एक ऋषि कौन से हैं? धाम और आशीर्वाद क्या है? पृथिवी में एकवृत ही पूजनीय है, वह एक ऋतु कौन सी है? ॥२५॥ वह धेनु एक ही है। वह ऋषि भी एक ही है, एक ही धाम और एक ही प्रकार का आशीर्वाद है। पृथिवी में एक ही वृत् पूजनीय है, वह एक ऋतु अधिक नहीं होती है ॥२६॥

१०[१] सूक्त

(ऋषि —अथर्वाचार्यः। देवता—विराट्। छन्द—पंक्तिः, जगती; अनुष्टुप्; गायत्री; बृहती)

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जत्तायाः।
सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥१॥

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥२॥
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥३॥
सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥४॥
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥५॥
सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥६॥
यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥७॥
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥८॥
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥९॥
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥१०॥
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥११॥
सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥१२॥
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥१३॥

यह संसार प्रारम्भ में विराट् था, इसके उत्पन्न होने पर सभी को यह भय हुआ कि यही एक होगा ॥ १ ॥ उस विराट् ने जल उत्क्रम किया तो गार्हपत्य में प्रवेश कर गया ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाला गृहमेधी गृहस्वामी बन जाता है ॥३॥ फिर वही विराट् उत्क्रम करता हुआ आहवनीय अग्नि में प्रवेश कर गया ॥४॥ इसे जानने वाला देवताओं का प्रिय होता है और उसके आह्वान पर देवता आगमन करते हैं ॥५॥ फिर वही विराट् उत्क्रम करता हुआ दक्षिणाग्नि में व्याप्त हुआ ॥ ६ ॥ इसका ज्ञाता यज्ञ ऋत दक्षिणीय में वास करने वाला होता है ॥७॥ फिर वही विराट् उत्क्रम करता हुआ सभा में प्रविष्ट हुआ ॥८॥ इसका जानने वाला सदस्य होता हैं, उसकी सभा में सभी आते हैं ॥९॥ फिर वही विराट् उत्क्रम कर समिति में प्रविष्ट हुआ ॥१०॥ इसका ज्ञाता सामित्य बनता है, उसकी समिति में सैनिक आगमन करते हैं ॥११॥ फिर वही विराट् उत्क्रम करके आमंत्रण में प्रविष्ट हुआ ॥१२॥ इसका ज्ञाता बुलाने योग्य होता है, उसके बुलाने पर सभी आते हैं ॥ १३ ॥

१० [२] सूक्त

(ऋषि—अथर्वाचार्यः। देवता—विराट्। छन्द—अनुष्टुप्; बृहती; गायत्री; पङ्क्तिः)

सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥१॥
तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय
उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥२॥
तामुपाह्वयन्त ॥३॥
ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥४॥
तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥५॥
बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तानावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥६॥
ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ॥७॥
अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥८॥
ओषधीरेवास्मै रथंतरं दुहे व्यचो बृहत् ॥९॥
अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥१०॥

उस विराट् ने पुनः उत्क्रमण किया, चार रूपों में विक्रान्त हुआ। अन्तरिक्ष में प्रविष्ठित हो गया ॥१॥ देवता और मनुष्य उससे बोले कि जिससे हम उपजीवन करते हैं, यह उसे जानता है। अतः हम इसे पास में बुलावें ॥२॥ तब उन्होंने उसे आहूत किया ॥३॥ हे ऊर्जे! हे स्वधे! हे सुनृते! हे इरावति! इधर आगमन करो ॥४॥ तब इन्द्र उसका वत्स हुआ, गायत्री अभिधानी और मेघ ऐन बने ॥५॥ बृहत्साम और रथन्तर साम दो स्तन हुये। यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य साम भी दो स्तनों के रूप में ही हुए ॥६॥ देवताओं ने बृहत्साम से व्यच का और रथन्तर साम से ओषधियों का दोहन किया ॥७॥ यज्ञायज्ञिय साम से यज्ञ को और वामदेव्य साम से जल का दोहन किया ॥१८॥ ऐसा जानने वाला बृहत्साम व्यच का और रथन्तर ओषधियों का दोहन करता है ॥९॥ ऐसा जानने

वाले के लिए यज्ञायज्ञिय यज्ञ का और वामदेव्य जल का दोहन करता है ॥ १० ॥

१० [३] सूक्त

(ऋषि–अथर्वाचार्यः । देवता—विराट् । छन्द–अनुष्टुप्; त्रिष्टु पंक्तिः जगती)

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत
सा संवत्सरे समभवत् ॥१॥
तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णम पि रोहति वृश्चतेऽस्याप्रियो
भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥२॥
सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि
समभवत् ॥३॥
तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां ।
जानाति य एवं वेद ॥४॥
सोदक्रामत् स देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ॥५
तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां
जानाति य एवं वेद ॥६॥
सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या अघ्नत सा
सद्यः समभवत् ॥७॥
तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ।८॥

वह विराट उत्क्रमण द्वारा वनस्पतियों के पास गया। वनस्पतियों ने उसे हनन किया। तब वह संवत्सर में गया।।१।। वनस्पतियों का कटा हुआ अंग भी एक संवत्सर में उग आता है। इसे जानने वाले का शत्रु नाश को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ वह विराट उत्क्रम द्वारा पितरों के पास गया। पितरों द्वारा उसका हनन होने पर वह महीने में समा गया॥३॥ पितरों को प्रत्येक मास इसी लिये भोजन देते हैं। इसे जानने वाले पितृयान मार्ग का ज्ञाता होता है ॥४॥ वह विराट उत्क्रम कर देवताओं के समीप गया, देवताओं द्वारा हनन किये जाने पर वह पक्ष में उत्पन्न हुआ॥५॥इस कारण देवताओं के लिए पखवाड़े में वषट् करते हैं। इसे जानने वाला

देवयान मार्ग का ज्ञाता होता है ॥६॥ वह विराट् उत्क्रमण कर मनुष्यों के पास गया और मनुष्यों द्वारा हनन किये जाने पर वह तुरन्त ही प्रकट हो गया ॥७॥ इसीलिये मनुष्य दूसरे दिन उपहरण करते हैं। इसे जानने वाले के घर में नित्य प्रति अन्न पहुँचता है ॥८॥

१०[४] सूक्त

(ऋषि—अथर्वाचार्यः। देवता-विराट्। छन्द-जगती; बृहती, उष्णिक्; अनुष्टुप्; गायत्री; त्रिष्टुप्)

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥१॥
तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥२॥
तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक्तां मायामेवाधोक् ॥३॥
तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥५॥
तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ॥६॥
तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥७॥
तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८॥
सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या
उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥९॥
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥१०॥

उस विराट ने पुनः उत्क्रम किया तब वह असुरों के पास गया। असुरों ने उसे आह्वान करते हुये कहा—'माये आओ।' ॥१॥ उसका वत्स विरोचन हुआ और लोहे का पात्र उसका पात्र हो गया ॥२॥ द्विमूर्धा 'अर्त्व्य' ने उसका और माया का दोहन किया ॥ ३ ॥ असुर उसी माया से उपजीवन करते हैं, ऐसा जानने वाला भी उपजीवन के योग्य होता है ॥४॥ वह विराट् उत्क्रम करता हुआ पितरों के पास गया। पितरों ने आह्वान करते हुए कहा—'स्वधे ! आओ' ॥५॥ उसका वत्स यम हुआ और चाँदी का पात्र

उसका पात्र हुआ ॥६॥ मृत्यु के देवता अन्तक ने उसका दोहन करते हुए स्वधा को भी दुहा ॥७॥ पितर उस स्वधा से उपजीवन करते हैं। इसे जानने वाला उपजीवन योग्य होता है ॥८॥ यह विराट उत्क्रमण कर मनुष्यों के पास गया। मनुष्यों ने उसका आह्वान करते हुए कहा—'इरावरी आओ' ॥९॥ तब विवस्वान-पुत्र मनु उसके वत्स हुए और भमि उसका पात्र हुई ॥१०॥

तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥११॥
ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥
सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त। ब्रह्मण्वत्येहीति ॥१३॥
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥१४॥
तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥१५॥
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

वेन-पुत्र पृथु के उसका दोहन करते हुए कृषि और सस्य का भी दोहन किया ॥११॥ उसी कृषि और धान्य से मनुष्य उपजीवन करते है। इसे जानने वाला पुरुष जुते हुए पदार्थों में कुशल होता है और वह प्राणियों की जीविका चलाने वाला भी होता है ॥१२॥ वह विराट् पुनः उत्क्रमण कर सप्त ऋषियों के पास गया, उन्होंने उसका आह्वान करते हुए कहा—'हे ब्रह्मणवती आगमन करो' ॥१३॥ तब सोम उसके वत्स और छन्द पात्र हुए ॥१४॥ तब आंगरिस बृहस्पति ने उसका दोहन किया और उससे ब्रह्म और तप का भी दोहन किया ॥१५॥ उस ब्रह्म और तप से सप्तर्षि उपजीवन करते हैं। इसे जानने वाला ब्रह्मवर्चस्व से युक्त होता और प्राणियों की जीविका चलाने में समर्थ होता है ॥१६॥

१० (५) सूक्त

(ऋषि—अथर्वाचार्यः। देवता—विराट्। छन्द—जगती; उष्णिक् अनुष्टुपः; त्रिष्टुप्; गायत्री)

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥१॥
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥२॥
तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥३॥
तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥
सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥५॥
तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥६॥
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥७॥
तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८॥
सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति ॥९॥
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥१०॥

वह विराट् पुनः उत्क्रमण कर देवताओं के पास गया। देवताओं ने उसका आह्वान करते हुए कहा—'हे ऊर्जे आओ' ॥१॥ तब इन्द्र उसका वत्स और चमस उसका पात्र हुआ ॥२॥ सवितादेव ने उसका और ऊर्जा का दोहन किया ॥३॥ उसी ऊर्जा से देवता उपजीवन करते हैं। इसे जानने वाला पुरुष प्राणियों की आजीविका चलाने में समर्थ होता है ॥४॥ वह विराट् पुनः उत्क्रमण कर गन्धर्व और अप्सराओं के पास गया। उन्होंने उसका आह्वान कर कहा—'हे पुण्यगंधे! आगमन करो।' ॥ ५ ॥ सूर्यवर्चा का पुत्र चित्ररथ उसका वत्स और पुष्कर-पर्ण उसका पात्र बना ॥ ६ ॥ सूर्यवर्चा के पुत्र वसुरुचि ने उसका और पवित्र गंध का भी दोहन किया

॥७॥ उस गंध द्वारा अप्सरा और गंधर्व उपजीवन करते हैं। ऐसा जानने वाला पुण्य गंध वाला होता है,वह प्राणियों की आजीविका चलाने वाला होता है ।.८॥ वह विराट् पुनः उत्क्रमण कर इतर जनों के पास गया। उन्होंने उसका आह्वान करते हुए कहा—हे तिराधे ! आओ ॥९॥ विश्रवा के पुत्र कुबेर उसके वत्स हुए, कच्चा पात्र उसका पात्र हुआ ॥१०॥

तां रजतनाभिः कावेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् ॥११॥
तां तिरोधामतरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं ।
पात्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥
सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति॥१३
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसोदलाबुपात्र पात्रम् ॥१४॥
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् ॥१५॥
तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

रजतनाभि कावेरक ने उसका और तिरोधा का भी दोहन किया ॥११॥ उस तिरोधा से ही इतरजन उपजीविका चलाते हैं। इस प्रकार जानने वाला अपने पापों को तिरोहित करने वाला होता है। वह प्राणियों की आजीविका चलाने में समर्थ होता है ॥१२॥ वह विराट् पुनः उत्क्रमण कर सर्पों के पास गया। उन्होंने उसका आह्वान करते हुए कहा—हे विषवत्! आओ॥१३॥ वैशालेय तक्षक उसका वत्स अलाबुपात्र उस का पात्र हुआ ॥१४॥ ऐरावतीय धृतराष्ट्र नामक सर्प ने उसका दोहन कर विष का भी दोहन किया ॥१५॥ सर्प उस विष से उपजीवन करते हैं। इस बात के जानने वाले के द्वारा सब प्राणी उपजीवन के योग्य होते हैं ॥१६।

१० [६] सूक्त

(ऋषि--अथर्वाचार्यः। देवता—विराट्। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

तद् यस्मा एव विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥१॥
य च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात ॥२॥

यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्ययाहन्ति ॥३॥
विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुषिच्यते य एवं वेद ॥४॥

इस प्रकार जानने वाले को अलाबु द्वारा जो सींचता है तो वह मार देता है ॥१॥ मन से मारता हूं ऐसा न सोचे तो मार डालता है ॥२॥ मारने वाला विष को ही मारता है ॥३॥ इस प्रकार जानने वाले का शत्रु रूप अप्रिय विष अनुविसिंचित होता है ॥४॥

॥ अष्टमं काण्डं समाप्तम् ॥

नवम काण्ड

—:o:—

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मधु, अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप्: बृहती; उष्णिक, अष्टि)

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥१॥
महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥२॥
पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥३॥
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥४॥
मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।

…ं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥५॥
कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो
अक्षितः। ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥६॥
स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥७॥
हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम्।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥८॥
यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥९॥
स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥१०॥

अन्तरिक्ष, स्वर्ग, पृथिवी समुद्र और अग्नि के द्वारा मधुकशा गौ उत्पन्न हुई है। उस अग्नि को धारण करने वाली गौ का पूजन करती हुई सब प्रजायें प्रसन्न होती हैं ॥१॥ इस पयस्वती गौ के महान् दूध को ही समुद्र का जल कहा गया है। यह मधुकशा गौ, स्तुतियों से प्रेरित हुई जिधर आती है, उधर रहने वालों के प्राण अमृत में स्थापित हो जाते हैं ॥२॥ इसके चरित्र की अनेक प्रकार से व्याख्या की जाती है और मनुष्य इसे अनेक रूप वाली देखते हुये मरुद्गण की प्रचण्ड पुत्री अग्नि और वायु से उत्पन्न हुई बताते हैं ॥ ३ ॥ यह प्रजाओं की प्राण मधुकशा अमृत की नाभि रूप है, यह आदित्यों की जननी और वसुओं की पुत्री है। यह महान् तेजस्वी मधुकशा मनुष्यों में घूमती रहती है ॥४॥ मधुकशा को देवताओं ने उत्पन्न किया, विश्व रूप उसका गर्भ हुआ। उसने उत्पन्न होते ही सब प्राणियों को मोहित किया। तरुण रूप से उत्पन्न उसकी माता ने पोषण किया ॥५॥ उसे वास्तविक रूप में जानने वाला कौन है? उसका हृदय, सोम स्थापित करने के लिये कलशरूप है, वह सदा अक्षय रहता है, शोभन मति वाला ब्रह्मा इसमें आनन्दित होता है ॥६॥ उसके कभी भी क्षय न होने वाले, सहस्र धाराओं वाले

स्तन हैं। वे कभी नाश को प्राप्त नहीं होते। वे सदा दूध देते रहते हैं। इन स्तनों को भी वही ब्रह्मा जानता है।७॥ हवि धारण करने वाली, शब्दवती गौ, उच्च शब्द करती हुई कर्मक्षेत्र में आती है। वह अग्नि, चन्द्र और सूर्य इन तीनों के तेजों पर अधिकार करती हुई, देवाश्रय को प्राप्त होने वालों के शब्द को अपने दूध से शक्तियुक्त करती है॥८॥ जिस मधुकशा के पास अभीष्टों की वर्षा करने वाले उज्ज्वल जल आते हैं, वे जल मधुकशा को जानने वाले के लिए बलदायक अन्न और सुन्दर अभीष्टों के वर्षक होते हैं॥९॥ हे प्रजापते! तुम वर्षक हो, तुम पृथिवी पर जल सींचते हो। वज्र के समान गर्जना ही तुम्हारी वाणी है। अग्नि और वायु के द्वारा ही मरुतों की उग्र पुत्री मधुकशा उत्पन्न हुई है॥१०॥

यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥११॥

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥१२॥

यथा सोम स्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥१३॥

मधु जनिपीय मधु वंशिपीय।
पयस्वानग्न आगमं त मा सं सृज वर्चसा॥१४॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुपा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋपिभिः॥१५॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥१६॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम्॥१७॥

यद् गिरिपु पर्वतेपु गोप्वश्वेपु यन्मधु।

सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ।।१८।।
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ।।१९।।

स्यनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ।।२०।।

पृथिवी दण्डोन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् ।
प्रकशो हिरण्ययो विन्दुः ।।२१।।

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च
यवश्च मधु सप्तमम् ।।२२।।

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ।।२३।।

यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ।।२४।।

जैसे अश्विनीकुमारों को प्रातः सवन में सोम प्रिय होता है, वैसे ही अश्विनीकुमार मुझमें तेज की स्थापना करें ।।११।। इन्द्र और अग्नि को जैसे द्वितीय सवन में सोम प्रिय होता है, वैसे ही वे इन्द्राग्नि मुझमें स्थापित करें ।। १२ ।। जैसे ऋभुओं के तीसरे सवन में सोम प्रिय होता है, वैसे ही ऋभुगण मुझमें तेज स्थापित करें ।।१३।। हे अग्ने ! मैं दुग्धादि की हवि से युक्त हूं। मैं मधु को प्रकट कर उसके द्वारा तेजस्वी होऊँ। तुम मुझमें तेज की स्थापना करो ।।१४।। हे अग्ने ! तुम मुझे अन्न के तेज, संतान और आयु से युक्त करो। देवता और ऋषि सभी मुझे तुम्हारी सेवा करने वाला जान लें ।।१५।।जैसे मधु एकत्र करने वाले मधु पर ही मधु को गिराते हैं, वैसे ही अश्विद्वय वर्च को स्थापित करें ।। १६ ।। जैसे मधुमक्खियाँ मधु

पर मधु इकट्ठा करती रहती हैं, वैसे ही वे अश्विद्वय मुझे वर्च, तेज, बल, ओज से युक्त करें॥१७॥ जो मधु पर्वत, अश्व आदि तथा सींचे जाने वाले वृष्टि जल में है, वह मधु मुझ में स्थित हो ॥ १८ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम शोभा के लिये सुन्दर आभूषणों के धारण करने वाले हो। तुम मुझे मक्खियों द्वारा संचित मधु से युक्त करो। जैसे मैं ओजस्विनी मधुर वाणी का उच्चारण कर सकूँ, वैसे ही तुम मुझे मधु से सींचो ॥१९॥ हे प्रजापते ! गर्जना ही तुम्हारी वाणी है। तुम पृथिवी और स्वर्ग में वन सींचते हो। तुम्हीं अभीष्टों के वर्षक हो। सब पशु वर्षा से ही पेट भरते हैं और वह वर्षा ही अन्न और बल का पोषण करती है ॥ २० ॥ अन्तरिक्ष गर्भ, पृथिवी दण्ड द्युलोक कशा तथा विद्युत प्रकाश रूप है और बिन्दु हिरण्यमय हैं ॥ २१ ॥ कशा के साथ मधुओं का ज्ञाता, मधुमान हो जाता है ! ब्राह्मण, गौ, अनड्वान्, धान, जौ, मधु और राजा यह सातों मधु हैं ॥२२॥ इस प्रकार जानने वाला मधु-सम्पन्न होता है। वह मधुमय लोकों पर विजय प्राप्त करता हुआ, मधुमय भोजन प्राप्त करता है ॥२३॥ जिस आकाश में विभिन्न ग्रह नक्षत्रादि प्रकाशमान हैं, उस आकाश में जो गर्जना होती है, वही प्रजाओं के निमित्त अवतीर्ण होने वाले प्रजापति हैं। अतः यज्ञोपवीत धारी इसके लिये तत्पर हो कि 'प्रजापति मुझे जानें'। जो इस प्रकार जानता है, वही प्रजापति द्वारा अवतीर्ण समझा जाता है।

२ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता-कामः। छन्द-त्रिष्टुप्, जगती; पंक्तिः, अनुष्टुप्)

सपत्नहमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥१॥
यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति।
यद् दुःष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥२
दुःष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम्।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात्
॥ ३ ॥

नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्ति यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥४॥
सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥५॥
कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेनसवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ्छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥६॥
अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥७॥
इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥८॥
इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥९॥
जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे ते जीविषुः कतमच्चनाह ॥१०॥

शत्रु का नाश करने वाले काम वृषभ, को मैं हवि देता हुआ हूँ, हे ऋषभ ! हमारी स्तुति सुनकर मेरे शत्रुओं का पतन करो ॥१॥ जो दुःस्वप्न मेरे मन और नेत्र को अच्छा नहीं लगता, जो मुझे प्रसन्न नहीं करता, जो मुझे भक्षण करता हुआ-सा प्रतीत होता है, उस दुःस्वप्न को मैं कामदेव की स्तुति करता हुआ, शत्रु की ओर छोड़कर उसे चीरता हूँ ॥२॥ हे कामदेव ! तुम उग्र हो, तुम स्वामी हो । तुम अपने दुःस्वप्न को, निर्धनता प्रजाहीनता और दरिद्रता को उस पर भेजो जो हमको पराजय के रूप में विपत्ति में डालने की चेष्टा करता है॥३॥ कामदेव! मुझसे दरिद्रता को पृथक् करो, मेरे शत्रु ही दरिद्रता को प्राप्त करें । तुम मेरे शत्रुओं की ओर इसे शीघ्रता से भेजो । हे अग्ने ! उनके घर की वस्तुओं को भस्म करो । वे घोर अन्धकार में भर जाँय ॥ ४ ॥ जिसे कवि ओजपूर्ण

माणी कहते हैं, वह तुम्हारी पुत्री है। उसके द्वारा मेरे शत्रुओं का नाश करो। प्राण, पशु और आयु इन शत्रुओं के पास न रहें ॥५॥ जैसे वज्ररूप पतवार धारण करने वाला मल्लाह नाव को चलाता है, वैसे ही मैं काम, वरुण, इन्द्र, विष्णु, सोम के बल से और देवता के यज्ञ से अपने शत्रुओं को भगाता हूँ ॥ ६ ॥ मेरा यज्ञ मेरे नेत्रों के सामने हवि से सम्पन्न हो और मुझे शत्रु से शून्य करे। सब देवता मेरे यज्ञ में आवें और मेरे स्वामी बनें ॥७॥ हे काम की प्रमुखता में रहने वाले देवगण! इस घृतादि की हवि को घृत के समान ही सेवन करते हुये सुखी होओ और मुझे शत्रुओं से रहित करो ।८॥ हे काम, हे इन्द्राग्ने! तुम रथ पर चढ़कर शत्रुओं का पतन करो। हे अग्ने! उनके लिये घोर अन्धकार प्रकट कर उनके घर को और सब सम्पत्ति को जला डालो ॥९॥ हे कामदेव! मेरे शत्रुओं का संहार करो। वे घोर अन्धकार में पड़ें। वे सब शक्तिहीन और निर्वीर्य होते हुये मृत्यु को प्राप्त हों ॥१०॥

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यंषडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥११॥
तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात्।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥१२॥
अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः।
यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥१३॥
असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम्।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवःप्र मृणत् सपत्नान् ॥१४
च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान्।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान्
॥१५॥
यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम। तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो-जीवनं वृणक्तु ॥१६॥

येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ।१७
यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ।१८
कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥१९॥
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२०॥

कामदेव ने मेरे शत्रुओं का हनन कर डाला, मुझे बढ़ाने के लिए महान् लोक प्रदान किया। सब दिशाओं के प्राणी मुझे नमस्कार करें और छै उर्वियें मुझे घृत दें ॥११॥ बन्धन टूटने पर नाव जैसे नीचे को बहती है, वैसे ही मेरे शत्रु नीचे की ओर गिरते जाँय क्योंकि बाण द्वारा प्रेरित किये हुये पुनः नहीं लौट सकते ॥ १२ ॥ इन्द्र, अग्नि, सोम यह सभी, शत्रुओं को दूर करने में समर्थ हैं। इसलिये तुम शत्रुओं को दूर करते हुये हमारी रक्षा करो। देवगण इस शत्रु को दूर करदें ॥१३॥ इस मन्त्र के बल से प्रेरित हुआ हमारा शत्रु पुत्र, पौत्रादि और सब योद्धाओं से हीन हो जाय। वह अपने बन्धुओं द्वारा भी त्याज्य हो। विद्युत इसको टूक-टूक कर दे। यजमानो! तुम्हारे शत्रुओं को उग्र देवता मर्दित करें ॥१४॥ सब मेघों के गर्जन को पुष्ट करने वाली बिजली गिरकर अथवा अपने स्थान पर ही रहते हुये और उदय होते हुये सूर्य अपने तेजोमय ऐश्वर्य द्वारा शत्रुओं का पतन करें ॥१५॥ हे कामदेव! तुम अपने ब्रह्ममय, विशाल कवच द्वारा मेरे शत्रुओं का संहार करो। यह शत्रु प्राण, आयु और पशु सभी से हीन हो जाँय ॥१६॥ हे कामदेव! जिस शक्ति से इन्द्र ने राक्षसों को मृत्यु रूप घोर अन्धकार में डाल दिया था और जिस शक्ति से दैत्यों को देवताओं ने भगा दिया था, उस शक्ति के द्वारा इस लोक से मेरे शत्रुओं को दूर फेंक दो ॥ १७ ॥ हे कामदेव! जैसे देवताओं ने दैत्यों को भगाया था और इन्द्र ने राक्षसों

को घोर अन्धकार रूप संताप दिया था, वैसे ही तुम मेरे शत्रुओं को इस लोक से भगा दो ॥ १८ ॥ कामदेव प्रथम उत्पन्न हुये, देवता और पितर भी इनकी समता नहीं कर पाये । हे कामदेव ! तुम सब प्राणियों को प्राप्त होते हो इसलिए महान् हो । मैं नमस्कारपूर्वक तुम्हें हविरत्न प्रदान करता हूं ॥१९॥ हे कामदेव ! तुम आकाश-पृथिवी, अग्नि और जल इन सबके विस्तार से भी विस्तृत हो । तुम सब प्राणियों में व्याप्त होने से महान् हो । मैं तुम्हारे निमित्त हविरत्न प्रदान करता हूँ ॥२०॥

यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २१ ॥ यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः । ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२२॥
ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम् इत् कृणोमि ॥२३॥
न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
ततस्त्वमसि ज्यानान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २४ ॥
यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥२५॥

हे कामदेव ! जितने विस्तार में दिशा-उपदिशाएँ हैं और स्वर्ग से जितनी दिशाऐं कही गई हैं, उन सब में तुम बड़े हो तथा सब में गमनशील और महान् हो । मैं तुम्हें नमस्कारपूर्वक हवि देता हूँ ॥२१॥ हे कामदेव ! भृङ्ग, जतु कुरूरु, वृक्षसर्प और वधा जितने परिमाण में होती है तुम उससे भी बड़े और महान् हो । तुम सभी में व्याप्त हो । मैं तुम्हें नमस्कार पूर्वक हविरत्न प्रदान करता हूँ ॥२२॥ हे काम, हे मन्यो! तुम समुद्र से भी विशाल हो, पलक मारने वाले प्राणियों में तथा बड़े वृक्षों से भी बड़े हो । सब में गमनशील होने से महान् हो । मैं तुम्हें हविरत्न प्रदान करता हूँ ॥२३॥ सूर्य, चन्द्र, वायु और अग्नि भी कामदेव की समानता नहीं कर सकते । इसलिये हे कामदेव ! तुम बड़े हो ।

सब में व्याप्त होने से महान् हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥२४॥ हे कामदेव ! तुम्हारे जो कल्याणकारी शरीर हैं, उनके द्वारा तुम जिसे वरण करते हो वही सत्य है। तुम अपने उन देव रूप वुद्धियों द्वारा हमारे देह में प्रविष्ट होओ और अपनी पाप वुद्धियों को हमसे दूर कर, शत्रुओं में प्रविष्ट करो ॥२५॥

३ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा। देवता—शाला। छंद—अनुष्टुप्; पंक्ति, वृहती, त्रिष्टुप्, गायत्री)

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥१॥
यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२॥
आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान्।
परूंषि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥३॥
वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥४॥
संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥५॥
यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम्।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नि न उद्धिता तन्वेभव ॥६॥
हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः।
सदो देवानामसि देवि शाले ॥७॥
अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥८॥
यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम्।

उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९॥
अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता।
यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥१०॥

उपमति, प्रतिमित और परिमित शाला को खोलते हुए, सब के लिये वरणीय शाला के बन्धनों को खोलते हैं ॥१॥ वरणीय शाले ! जो तुझ में बँधा है, जो गांठ लगाई गई है, मैं बृहस्पति के समान बल वाला उसे मन्त्र शक्ति से खोलता हूँ ॥२॥ बनाने वाले ने तुझे ठीक लम्बी बनायी है। तुझमें दृढ़ गाँठें लगाई हैं, उन गांठों को हम इन्द्र के बल से खोलते हैं ॥३॥ हे शाले ! तू सब के द्वारा वरण योग्य है। तेरे बांसों के बन्द स्थान के आग्राह के, तृण के और पंखों के बँधे हुए बन्धनों को हम खोलते हैं ॥४॥ हम मान की पत्नी सम्बन्धी सन्देशों के पलदों के परिष्वञ्जल्य के बन्धनों को खोलते हैं ॥५॥ हे मान की पत्नी, तू कल्याण-दायिनी है, तुझमें जो सुख देने के लिए मचान बांधे गए हैं उन्हें हम खोलते हैं। तू हमारे लिए स्वर्गलोक में सुख प्रदान करने वाली हो ॥६॥ हे शाले ! तू हव्ययुक्त अग्निकुण्ड, देवताओं के बैठने के आसनों और पत्नियों के साथ बैठने के स्थानों से युक्त है ॥७॥ हे विषूवति ! शयनकक्ष के सहस्र झरोखे वाले विस्तृत अक्षु को हम मन्त्र द्वारा खोलते हैं ॥८॥ हे शाले ! जिसने तुझे बनाया है और जो तुझे ग्रहण कर रहा है, वे दोनों वृद्धावस्था तक की आयु प्राप्त करें ॥९॥ हम जिसके जोड़ों और अंगों को गांठों से रहित कर रहे हैं, ऐसी हे शाले। तू जिसके द्वारा निर्मित हुई है, उसे तू स्वर्ग में प्राप्त हो ॥१०॥

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन्।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११॥
नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥१२॥
गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१३॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१४॥
अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति
गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेहमुदरं शेवधिभ्यः ।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥१५॥
ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥१६॥
तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशना ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥१७॥
इटस्य ते वि चृताम्यपि नद्धमपोर्णुवन् ।
वरुणेन समब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥१८॥
ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥१९॥
कुलायेऽधि कुलायं कोशेः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥२०॥

हे शाले ! जो वनस्पति लाया है और जिसने तेरा निर्माण किया है,उस परमेष्टी प्रजापति ने प्रजा के निमित्त तेरा निर्माण किया है॥११॥ शाला के स्वामी को, दाता को, अग्नि और विचरण करने वाले पुरुष को तथा तुझे भी हमारा नमस्कार है ॥१२॥ शाला में उत्पन्न होने वाले गौ, घोड़ों को यह अन्न है । हे विजावति ! हे प्रजावति, हम तेरे बन्धनों को खोलते हैं ॥१३॥ हे शाले ! तू अपने में पशु, पुरुष और अग्नि को छुपा लेती है, हम तेरी गांठों को खोलते हैं ॥१४॥ आकाश-पृथिवी के मध्य जो व्यच (विस्तृत आकाश) है, उसके द्वारा तेरी इस शाला को ग्रहण करता हूँ । अन्तरिक्ष और पृथिवी की जो रचना-शक्ति

है, वह मेरे उदरस्थ है। अतः मैं ही इस शाला को स्वर्ग प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूँ ॥१५। बल देने वाली, पयस्विनी पृथिवी में तू नवीन निर्मित तथा सभी अन्नों को धारण करने में समर्थ है। हे शाले। तू प्रतिग्रहकारियों का नाश न कर ॥१६॥ तृणों से ढकी हुई, पलदों से युक्त, रात्रि के समान प्राणियों को आश्रय प्रदान करने वाली हे शाले! तू उत्तम पाँव वाली हथिनी के समान पृथिवी पर खड़ी है ॥१७॥ बीते हुए संवत्सर के समान तेरे बन्दों को पृथक् कर खोलता हूँ। तुझ वरुण द्वारा खोली गयी को प्रातःकालीन आदित्य उद्घाटित करें॥१८॥विद्वानों के मंत्र द्वारा निर्मित इस शाला की सोम पीने के स्थान में प्रतिष्ठित इंद्र और अग्नि रक्षा करें ॥१९॥ घर रूप घोंसले में देह रूप घोंसला है, उसमें गर्भकोश अधोमुख स्थित है। उसी के द्वारा मरणधर्मी मनुष्य जन्म लेता है और उसी के समस्त संसार उत्पन्न होता है ॥२०॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भइवा शये ॥२१॥
प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥२२॥
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्रसीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥२३॥
मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि ॥२४॥
प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्य
स्वाह्येभ्य ॥२५॥
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥२६॥
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥२७॥

उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥२८॥

ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥२९॥

ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥३०॥

दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥३१॥

दुमंजिली, चार मंजिली; छै, आठ तथा दश कक्ष वाली शाला निर्माण की जाती है; उस शाला में मैं जठराग्नि के गर्भाशय में शयन करने के समान सोता हूँ ॥२१॥ हे शाले ! मैं प्रतीचीन अहिंसित को प्रतीची शाला में प्रविष्ट करता हूं। ब्रह्मा से पूर्व प्रकट हुए अग्नि और जल भी मेरे साथ इसमें प्रवेश करते हैं ॥२२॥ यक्ष्मा रोग को नाश करने वाले जलों को मैं भरता हूँ और अमृतमय अग्नि सहित घरों के पास बैठता हूँ ॥२३॥ हे शाले ! वधू के समान हम तुझे पुष्ट करते हैं, तू अपने पाशों को हमारी ओर मत फैंकना। तेरा भार अधिक है, उसे कम कर ॥२४॥ शाला की पूर्व दिशा की महत्ता को नमस्कार। देवताओं को यह आहुति प्राप्त हो ॥२५॥ शाला की दक्षिण दिशा की महत्ता को नमस्कार। देवताओं को यह आहुति प्राप्त हो ॥१६॥ शाला की पश्चिम दिशा की महत्ता को नमस्कार। देवताओं को यह आहुति प्राप्त हो ॥२७॥ शाला की उत्तर दिशा की महत्ता को नमस्कार। देवताओं को यह आहुति प्राप्त हो ॥२९॥ शाला की ऊर्ध्व दिशा की महत्ता को नमस्कार। देवताओं को यह आहुति प्राप्त हो ॥३०॥ शाला की प्रत्येक दिशा की महत्ता को नमस्कार। देवताओं को यह आहुति प्राप्त हो ॥३१॥

४ सूक्त

[ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ऋषभः। छंद-त्रिष्टुप्; जगती; अनुष्टुप्; बृहती, पंक्ति]

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत्।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥१॥
अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥२॥
पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥३॥
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम्।
वत्सो जरायुः प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद् वस्य रेतः ॥४॥
देवानां भाग उपनाह एषोपां रस ओषधीनां घृतस्य।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ॥५॥
सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥६॥
आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥७॥
इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत्।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥८॥
दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९॥
बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१०

यह सहस्रों सिंचन में समर्थ कान्तिमान् ऋषभ है। यह दूध से

युक्त है। यह अपनी वीर्य वाहिनियों में अनेकों रूप धारण किये हुए है। यह बृहस्पति के मंत्र से युक्त गौओं के योग्य बैल यजमान का मंगल करता हुआ, संतानों को बढ़ावे ॥१॥ जो बैल जलों के आगे मूर्ति के समान खड़ा होता है, जो पृथिवी के समान स्वामी है, जो बछड़ों का जनक और अहिंसित गौओं का पति है, वह हमको सहस्र प्रकार की सम्पन्नता दे ॥२॥ यह बैल वसु के कबन्ध को धारण करने वाला है। यह पुमान्, अंतर्वान्, स्थविर और पय से युक्त है। इसे अग्निदेव, देवयान मार्ग के द्वारा अग्नि के समीप पहुँचावें ॥३॥ बैल बछड़ों का जनक और गौओं का पति है, मेघों का पालन कर्त्ता है। इसका वीर्य अमृत आमिक्षा, प्रतिधुक तथा घृत रूप ही है। ४॥ ओषधि और घृत-रस जलों का भाग है, उपनाह देवताओं का भाग है तथा सोम के भक्षणार्थ इंद्र ने पर्वताकार शरीर को वरण किया है ॥५॥ हे स्वधिते! तुम रूपों के बनाने वाले हो, तुम सोम से युक्त कलश के धारण करने वाले हो, तुम ही प्राणियों को उत्पन्न करते हो। तुम्हारी जो संतान है, उनको मुझे दो ॥६॥ वह बैल क्षरणशील है, घृत को धारण करने वाला है और सहस्रों पुष्टियों को प्रदान करता है। इसी को यज्ञ कहते हैं। यह इंद्र के रूप को धारण करने वाला बैल हम को कल्याण रूप में मिले ॥७॥ विद्वानों का कथन है कि इस ऋषभ का ओज इंद्र का भाग है। इसकी भुजा वरुण का, ककुद् (कोहनी) मरुतों का, अंस (कंधा) अश्विद्वय का तथा संभृत बृहस्पति का प्रिय है ॥८। हे ऋषभ! तू देवताओं को दुग्ध हविरादि से युक्त कर बढ़ाता है। इसीलिए तुझे इंद्र कहते हैं। मंत्र-युक्त यज्ञ में वृषभ का दान करने वाला, एक मुख वाली हजारों गौओं का दान करने वाला होता है ॥९॥ देवताओं के स्वामी सूर्य ने तेरे वय को धारण किया है, त्वष्टा और वायु का आत्मा तेरे सब ओर स्थित है। मैं अपने मन से अंतरिक्ष में तेरीआहुति देता हूँ। आकाश और पृथिवी दोनों तेरे बर्हि हों ॥१०॥

य इन्द्रइव देवेषु गोष्वेति विवावदत्।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥११॥
पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ।

अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥१२॥

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥१३॥

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥१४॥

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥१५॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥१६॥

शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥१८॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥१९॥

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत् सर्वमनु मन्यतां देवा ऋषभदायिने ॥२०॥

अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥२१॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥२२॥

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥२३॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।

मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥२४॥

इन्द्र जैसे देवताओं में आते हैं, वैसे ही गौओं में गर्जन करते हुए आने वाले बैल के अंगों की ब्रह्मा मंगलमय वाणी से प्रार्थना करे॥११॥ अनूवृज भग देवता के और पार्श्व अनुमति के हैं। मित्र देवता का कथन है कि टखने केवल मेरे हैं ॥१२॥ कमर आदित्यों की, पूंछ वायु की, श्रोणी बृहस्पति के हैं, वायु देवता पूंछ से ही ओषधियों को कम्पायमान करते हैं ॥१३॥ त्वचा सूर्य की गुदा सिनीवाली की और पाँव उत्थाता के हैं। वृषभ की कल्पना करने वालों का ऐसा ही कथन है॥१४॥ क्रोड़ जामिशस का था। सोम ने कलश को धारण किया। देवताओं ने इकट्ठे होकर इस प्रकार ऋषभ की कल्पना की ॥१५॥ उन्होंने सरमा के लिए कुष्ठिकाओं को धारण किया, कर्मों के लिए खुर धारण किये, ऊबध्य को कीड़ों के लिए निश्चित किया ॥१६॥ गौओं का पति प्रणय बैल सींगों द्वारा राक्षसों को भगाता है, नेत्रों से दरिद्रता को दूर करता और अपने श्रोत्रों से सौभाग्य को सुनता है ॥१७॥ ऋषभ-दान करने वाला ब्राह्मण शतयाज यज्ञ को करता है। उसे अग्नि संतापित नहीं करते और सब देवता उसको संतुष्ट करते हैं ॥१८॥ ऋषभ-दान द्वारा अपने मन को जो ब्राह्मण उदार बनाता है, वह अपने गोष्ठ में गौओं की समृद्ध देखता है ॥१९॥ गौऐं हों, प्रजा हों, शरीर में बल हो, दाता के लिए ऋषभ इन सब को दिलाने वाले हों ॥२०॥ हविर्वान् इन्द्र ज्ञान रूप धान दें। यह इन्द्र इस यजमान को स्वर्ग में सरलता से दुहाने वाली गौ दें। वह सदा बछड़ों से युक्त रहे और वश में रह कर दुहाती रहे ॥२१॥ आकाश के अन्न का धारण करने वाले इन्द्र का बल हमें प्राप्त हो रहा है, वह हमको आयु और संतान देता हुआ सब प्रकार से पुष्ट करे ॥२२॥ हे उपपर्चन ! यहाँ आओ। इस गोष्ठ में हम को संपृक्त करो। हे इन्द्र ! इस बैल का वीर्य तुम्हारा ही है ॥२३॥ हे गौओ ! यह युवा बैल तुम्हारे लिये रखा गया है। तुम इस गोष्ठ में उससे क्रीड़ा करती हुई बछड़ों सहित घूमो और हमारा त्याग मत करो। हमको धनों से पुष्ट करो ॥२४॥

५ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि – भृगुः । देवता—अजः पञ्चौदनः, । छन्द–त्रिष्टुप्; जगती, अनुष्टुप् ; गायत्री, उष्णिक् ; अष्टि, प्रकृति)

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥१॥
इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥२॥
प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन्।तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥३॥
अनुच्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥४॥
ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥५॥
उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम ॥६॥
अजा अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥७॥
पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यामानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति । ९ ।
अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवासं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥१०

(इस सूक्त में जिस 'अज' का उल्लेख किया गया है उसका अर्थ बकरा समझना ठीक नहीं, वरन् इसका अर्थ है "अजन्मा जीवात्मा" ।

इसी सूक्त में आगे जाकर कहा गया है कि "अज ब्रह्म का जानने वाला, बल का जानने वाला एवं अग्नि की ज्वाला से प्रकट होने वाला है"।)

इस अज को लाकर यज्ञ कार्य को आरम्भ करो। जिन लोकों को पुण्यात्मा जाते हैं, उनको यह अज भी जावे और अंधकारों से पार होता हुआ स्वर्ग को प्राप्त हो ॥१॥ हे विज्ञ अज ! इन यज्ञ में, मैं तुझे इन्द्र के भाग के निमित्त यजमान के समीप करता हूँ। तू हमारे वैरियों पर पाँव रख। इस यजमान के पुत्र आदि तो पाप-रहित हैं ॥२॥ हे अज ! तू स्वयंकृत पाप के कारण अपने पाँवों को पवित्र कर और शुद्ध शफों से स्वर्गारोहण कर। यह अज अंधकारों को पार करता हुआ, विभिन्न लोकों को देखता हुआ, तृतीयनाक स्वर्ग को प्राप्त हो॥३॥ हे विशस्ता ! इस श्याम के द्वारा इसको ठीक करो। इसके जोड़ों को कष्ट न हो, इसको हर जोड़ पर कल्पित करता हुआ तृतीयनाक (सुखपूर्ण पद) की ओर प्रेरित कर। (रोगी और दूषित अंगों को ठीक करने के लिये इस प्रकार की काट-छाँट करने की आवश्यकता होती है) ॥४॥ मैं ऋचा द्वारा कुम्भी को आँच पर चढ़ाता हूँ। तू जल छिड़क कर इसे रख। हे शमिताओ ! इसे रखो। वह परिपक्व होकर पुण्यात्माओं के लोक को प्राप्त हो ॥५॥ तू इस तपे हुए चरु के द्वारा स्वर्ग-गमन के लिए चढ़। तू अग्नि के द्वारा अग्नि रूप हो गया है, इसलिये उस ज्योतिर्मान लोक पर विजय प्राप्त कर ॥६॥ अज ही ज्योति है, यही अग्नि है, जीवित पुरुष अज का दान करे। श्रद्धा सहित इस लोक में दिया हुआ अज पापों को दूर करता हुआ स्वर्ग का साधन है ॥७॥ पंचौदन के पाँच क्रम हों। वह सूर्य, चन्द्र और अग्नि-इन ज्योतित्रय पर चढ़े। हे पंचौदन ! तू यज्ञात्मक सुकर्मों के मध्य में जाकर स्वर्ग को प्राप्त हो ॥८॥ हे अज ! जहाँ शरभ नहीं जा सकता, जो दुर्लभ पदार्थों से युक्त है, ऐसे पुण्यात्माओं के लोक में आरोहण कर। ब्रह्मा के निमित्त किया हुआ पंचौदन दाता को तृप्त कर देता है ॥९॥ यह अज दाता को तृतीय-नाक और त्रिपृष्ठादि स्वर्ग में चढ़ाता है। हे अज ब्रह्मा के निमित्त किया हुआ पंचौदन दाता को काम पूर्ण करने वाली श्रेष्ठ धेनु बन जाता है॥१०॥

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥११॥
ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥१२॥
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसा विपश्चित् ।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषटकृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥१३॥
अमोत वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥१४॥
एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठे अधि सप्तरश्मौ ॥१५॥
अजोस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेपम् ॥१६॥
येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥१७॥
अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥१८॥
यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुप ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥१९॥
अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥२०॥

हे पितरो ! जो ब्रह्मा के निमित तृतीय पञ्चौदन रूप अज का दान करता है, वह तुम्हारे लिये ज्योति रूप है। श्रद्धा सहित इस लोक में दिया गया अज परलोक में पाप रूप अंधकार से मुक्त करता है ॥११॥ पुण्यात्माओं के लोक की कामना करने वाला व्यक्ति पंचौदन के अज को ब्रह्मा के निमित्त दान करता है। हे अज ! हमारे निमित्त मंगलमय स्थान तेरे द्वारा ग्रहीत हो जाय और तू स्वर्ग को जीतने वाला

हो ॥१२॥ यह अज ब्रह्म को जानने वाला, बल का जानने वाला एवं अग्नि की ज्वाला से प्रकट होने वाला है । इसके द्वारा पूर्ण इष्टपूर्ति, अभिपूर्ति और वषट् कर्म को देवगण कल्पित करें ॥१३॥ जो सुवर्ण रूप दक्षिणा को वस्त्र से लपेट कर प्रदान करता है, वह पुरुष पार्थिव तथा दिव्य लोकों को प्राप्त करता है ॥१४॥ हे अज ! यह घृत से सनी मधु युक्त और दमकती हुई सोम की धाराऐं तुझे प्राप्त हों । तू सूर्य के ऊपर विराजमान स्वर्ग में पृथिवी और द्युलोक को स्तम्भित कर ॥१५॥ हे अज! तू स्वर्ग है, क्योंकि अङ्गिरावंशी ऋषियों ने तेरे द्वारा ही स्वर्ग को जाना था। मैंने भी उसी पुण्यमय स्वर्ग लोक को जान लिया है ॥१६॥ हे अग्ने ! जिस बल से तुम सब प्रकार के ऐश्वर्य को देवताओं के पास वहन करते हो, उसी बल से हमारे इस यज्ञ को भी, स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त देवताओं के पास पहुँचाओ ॥१७॥ पंचौदन अज स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है और पाप देवता निर्ऋति को रोकता है । सूर्य से युक्त लोकों को हम इस अज के द्वारा प्राप्त करें ॥१८॥ जो घन अज के ओदन की बूँदें हैं, जिस घन को हमने ब्राह्मणों में और प्रजाओं में स्थापित किया है, हे अग्ने ! पुण्यात्माओं के लोक में यह सब हमको जानने वाले हों ॥१९॥ अज ने प्रारम्भ में व्यक्रमण किया, पेट भूमि, पीठ द्यौ, मध्य अन्तरिक्ष और पसलियाँ दिशाऐं हुईं तथा कुक्षि समुद्र हुई ॥२०॥

सत्यं च ऋतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥२१॥
अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे ।
योजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२२॥
नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेश्येत् ॥२३॥
इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२४

पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पंचास्मै धेनवः का- दुघा भवन्ति।
योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२५॥
पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति।
स्वर्ग लोकमश्नुते योजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२६॥
या पूर्व पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥२७॥
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः।
योज पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२८॥
अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम्।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यान्ति दिवमुत्तमाम् ॥२९॥
आत्मन पितरं पुत्रं पौत्र पितामहम्।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०॥

नेत्र सत्य और ऋतु हुए, शिर विराट् हुआ, प्राण सत्व और श्रद्धा हुए, इसलिए यह पञ्चौदन अज असीमित यज्ञ ही है ॥२१॥ पंचौदन अज का दान करने वाला पुरुष यज्ञ के फल को प्राप्त करता हुआ, अपने लिए अपरिमित लोक का ही उद्घाटन करता है ॥२२॥ इसके लिये हड्डियों को तोड़ने या मज्जा को धोने की आवश्यकता नहीं है। वरन् सब लेकर 'यह है' कहते हुए "इसमें" प्रवेश करे ॥२३॥ इसका यही रूप है, इसके द्वारा ही यह हमको फल से सम्पन्न करता है। जो व्यक्ति इस दमकते हुए दक्षिणायुक्त अज को देता है, उसे यह यज्ञ अन्न, बल और यश को देने वाला होता है ॥२४॥ जो व्यक्ति दक्षिणा से चमकते हुए पंचौदन का दान करता है, सुवर्ण, पंच नवीन वसन और पंच धेनु उसके अभीष्ट को पूर्ण करते हैं ॥२५॥ जो व्यक्ति दक्षिणायुक्त पंचौदन अज का दान करता है, वह स्वर्ग का उपभोग करता है। उसके लिये पंचरुक्मा ज्योति, देह के लिये कवच और वस्त्र प्राप्त होते हैं ॥२६॥ जो स्त्री वाग्दान-द्वारा पति को जानकर अन्य पति

को प्राप्त करती है, वे दोनों पंचौदन अज का दान करने के कारण कभी प्रथक नहीं होते ॥२७॥ ऐसा पुनर्विवाहित स्त्री का जो पति होता है, वह दक्षिणायुक्त पंचौदन अज का दान करने के कारण उसी पुनर्विवाहिता के साथ समान लोक में वास करता है ॥२८॥ जो दाता उपवर्हण वृषभ और अनुपूर्ववत्सा धेनु का स्वर्ण-वस्त्र सहित दान करते हैं, वे श्रेष्ठ स्वर्ग को गमन करते हैं ॥२९॥ मैं स्वयं को, पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, स्त्री माता तथा अन्य सभी जो मेरे प्रिय हैं, उन्हें अपने पास बुलाता हूँ ॥३०॥

यो वै नैदाघं नाम ऋतुं वेद ।
एष वं नैदाघो नाम ऋतुर्यदजः पंचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३१॥
यो वै कुर्वन्तं नाम ऋतुं वेद ।
कुर्वतीं कुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नाम ऋतुर्यदजः पचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३२॥
यो वै संयन्तं नाम ऋतुं वेद ।
सयतींसंयतीमेवाविप्रस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै सयन्नाम ऋतुर्यदजः पचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३३॥
यो वै पिन्वन्तं नाम ऋतुं वेद ।
पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नाम ऋतुर्यदजः पंचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।

योजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३४॥
यो वा उद्यन्तं नाम ऋतुं वेद ।
उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्नामऋतुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३५॥

यो वा अभिभुवं नाम ऋतुं वेद ।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा अभिभूर्नाम ऋतुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३६॥

अज च पचत पञ्च चौदनान् ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥३७
तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं आज्यं हविरिं जुहोमि ॥३८॥

पंचौदन अज ही नैदाघ ऋतु है । जो नैदाघ नामक ग्रीष्म ऋतु के जानने वाला और पंचौदन अज को दक्षिणा सहित दान करने वाला है, उसका शुभ कर्म शत्रु के ऐश्वर्य को जला देता है ॥३१॥ कुर्वन्त नामक ऋतु का ज्ञाता, अपने शत्रु के ऐश्वर्य को ग्रहण कर लेता है । कुर्वन्त ऋतु यही पंचौदन अज है । दक्षिणा पूर्वक इसे जो दान करता है, वह अपने कर्म द्वारा शत्रु के ऐश्वर्य को जला देता है ॥३२॥ पंचौदन अज ही संयंत ऋतु है । जो इस ऋतु को जानता है, वह शत्रु के ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है । जो दक्षिणा से युक्त पंचौदन अज का दान करता है, वह अपने कर्म द्वारा शत्रु के धनों को भस्म कर देता है॥३३॥ जो पिन्वन्त ऋतु का ज्ञाता है, वह शत्रु की सम्पत्ति को हर लेता है । पंचौदन अज ही पिन्वन्त ऋतु है । जो दक्षिणा से सम्पन्न पंचौदन अज

का दान करता है, वह अपने कर्म द्वारा शत्रु के ऐश्वर्य को भस्म कर डालता है ॥३४॥ पंचौदन अज ही उद्यन्त ऋतु है जो उद्यन्त ऋतु का जानने वाला है, वह शत्रु की श्री को हर लेता है। जो दक्षिणा से दमकते हुए पंचौदन का दान करता है, वह अपने कर्म द्वारा शत्रु के ऐश्वर्य रूप लक्ष्मी को भस्म करता है ॥३५॥ पंचौदन अज ही अभिभू नामक ऋतु है। जो अभिभू ऋतु को जानता है, वही शत्रु की लक्ष्मी को हर लेता है। जो दक्षिणायुक्त पंचौदन का दान करता है, उसका वह कर्म शत्रु की लक्ष्मी को जला डालता है ॥३६॥ अज का पंचौदन प्रस्तुत करो। सब दिशाएँ, अन्तर्दिशाओं के सहित समान मन वाली होकर इसका स्वागत करें ॥३७॥ वे दिशाएँ तेरे यज्ञ की रक्षक हों, उनके लिए मैं इस हवि को देता हूँ ॥३८॥

६ [१] सूक्त

[ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अतिथिः विद्या। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; जगती; बृहती; पंक्ति]

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥१

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥२॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥३॥

यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति ॥४॥

या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥५॥

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥६॥

यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥७॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥८॥

यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥९॥

यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥१०॥

यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥११॥

यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥१२॥

यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥१३॥
ते व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेंऽशव एव ते ॥१४॥
यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥१५॥
शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥१६॥
स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥१७॥

जो प्रत्यक्ष ब्रह्म का ज्ञाता है, जिसकी गांठें ही संभार हैं तथा अनूक्य ही ऋचाएँ हैं ॥१॥ जिसका हृदय यजु और लोभ साम हैं तथा परिस्तरण ही हव्य है ॥२॥ जो अतिथिपति अतिथि को देखता है, वह देव यज्ञ को ही देखने वाला है ॥ ३ ॥ अतिथि से भाषण ही दीक्षा है और उदक की प्रार्थना ही प्रणयन रूप है ॥४॥ यज्ञ में प्रणयन किया जाता है, वही जल है ॥५॥ अग्निषोमीय पशु को बाँधना ही तर्पण है ॥६॥ टिकने के स्थान की कल्पना ही हविर्धान्य की कल्पना करना है ॥७॥ उपस्तृणन करना ही बर्हि है ॥८॥ उपरिशयन का आहरण करने वाला ही स्वर्ग का उद्घाटन करता है ॥९॥ जो कशिपु-उपबर्हण के लाने वाले हैं, वही परिधि है ॥१०॥ जो अंजन के अभ्यंजन को लाते हैं, वही आज्य हैं ॥११॥ जो परोसने के निमित्त खाद्य पदार्थों को लाते हैं, वही पुरोडाशों को लाते हैं । १२॥ जो भोजन के लिए आमंत्रित करते हैं वही हवि ग्रहण करने के निमित्त आह्वान करते हैं ॥१३॥ धान और यव ही सोम हैं ॥१४॥ उलूखल और मूसल ही ग्रावा हैं ॥१५॥ शूर्प ही छन्ना, भूसी ऋजीषा और अभिषवणी ही जल है ॥१६॥ दर्वी ही स्रुवा है, शुद्ध करना ही आयवन है, कलशियें ही द्रोणकलश है और काले मृग का चर्म ही वायव्य पात्र है ॥१७॥

६ [२] सूक्त

[ऋषि—ब्रह्मा । देवता–अतिथिः, विद्या । छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्; उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति]

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत

इदं भूया इद्रा मिति ॥१॥
यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥२॥
उप हरति हवींष्या सादयति ॥३॥
तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥४॥
स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥५॥
एते वै प्रिय श्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥६
स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥७॥
सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥८॥
सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥९॥
सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्र पवित्रो विततध्वर आहृतयज्ञकतुर्य उपहरति ॥१०॥
प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो या उपहरति ॥११॥
प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति ॥१२॥
योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥१३॥

यह अतिथिपति अधिक गुण-सम्पन्न है, इस प्रकार देखने वाला यजमान ब्राह्मण का ही करने वाला है ॥१॥ उठाओ खाओ, इस प्रकार कहने वाला इस प्राण को ही बढ़ता हुआ करता है ॥२॥ उपाहरण करता है,वह हवि को प्राप्त कराता है॥३॥अतिथि उन परोसे हुये पदार्थों का अपनी आत्मा में ही हवन करता है ॥४॥ वह हाथ रूपी स्रुवे, प्राण रूपी यूप और वषट्कार रूपी स्रुक्कार से अपनी आत्मा में हवन करता है ॥५॥ इन अतिथि रूप ऋत्विजों को ही यह स्वर्ग ले जाता है ॥६॥ जो यह जानता है, वह अपने वैरी अथवा जिसके गोत्रादि से पूर्ण जानकारी न हो, उसके अन्न को न खाय ॥७॥ जिसके अन्न को जो खाता

है; वह उसके सब पापों को भी खाने वाला होता है ॥८॥ जो जिसके अन्न को नहीं खाता, वह उसके पाप को भी नहीं खाता ॥९॥ अतिथियों को अन्न देते रहने वाला ग्रावाओं सहित, आर्द्र पवित्र यज्ञ का करने वाला और यज्ञ को पूर्ण करने में समर्थ होता है ॥१०॥ अतिथि को बलि देना, प्राजापत्य यज्ञ है ॥११॥ अतिथि का सत्कार करने वाला प्रजापति के पद चिह्नों पर चलने वाला होता है ॥१२॥ अतिथि-आह्वान ही आह्वानीय अग्नि है, घर में स्थित अग्नि ही गार्हपत्य है और पाक वाले अग्नि दक्षिणाग्नि होते हैं। १३॥

६ [३] सूक्त

[ऋषि-ब्रह्मा। देवता-अतिथिः, विद्या। छन्द-गायत्री, बृहती, उष्णिक्]

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥१॥
पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥२॥
ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥३
प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥४॥
कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥५
श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः
पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥६॥
एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥७॥
अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय
यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥८॥
एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा
तदेव नाश्नीयात् ॥९॥

जो अतिथि से पूर्व भोजन कर लेता है वह घर के सभी इष्ट कर्मों की पूर्ति के फलों को खा जाता है ॥१॥ अतिथि से पूर्व भोजन कर लेने वाला, घर के दूध और रस को नष्ट कर डालता है ॥ २ ॥ अतिथि से

पूर्व भोजन करने वाला व्यक्ति अपने घर के बल और समृद्धि का नाश करता है ।।३।। अतिथि से पहले भोजन करने करने वाला, घर की प्रजा और पशुओं को ही खा डालता है ।।४।। अतिथि से पहले भोजन करने वाला घर के यज्ञ का ही भक्षण कर डालता है ।।५।। अतिथि से पहले भोजन करने वाला घर की श्री और समान मति को ही नष्ट करता है ।।६।। श्रोत्रिय ही वास्तविक रूप से अतिथि है, उससे पहिले भोजन नहीं करना चाहिये ।।७।। अथिति के भोजन कर लेने पर भोजन करे। यही गृहस्थी का व्रत होता है ।।८।। गौ का दूध और अमिष पदार्थों को न खाय । ६ ।।

६ [४] सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता-अतिथिः, विद्या । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री, पंक्ति)

स य एवं विद्वान् क्षीरमुहसिच्योपहरति ।।१।।
यावदग्निष्टोमेनेष्ट् वा सुसमृद्धनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ।।२।।
स य एवं विद्वान्तसर्पिरुपसिच्यपोहरति ।।३।।
यावदतिरात्रेणेष्ट् वा सुसमृद्धनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ।।४।।
स य एव विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ।।५।।
यावत् सत्त्रमद्यनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ।।६।।
स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ।।७।।
यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ।।८।।
स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ।।९।।
प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति
य एव विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ।।१०।।

इस बात का ज्ञाता दूध का उपसेचन करके अतिथि के लिये भोज्य पदार्थों को लाता है ।।१।। अग्निष्टोम से यज्ञ करने पर जितने स्थान को अपने लिये खोल सकता है, अतिथि के द्वारा उतना ही स्थान प्राप्त करता है ।।२।। इसका ज्ञाता घृत का उपसेचन करके अतिथि के लिए

भोज्य पदार्थ को लाता है ॥३॥ तो अतिरात्र करने पर स्वर्ग के जितने अधिकार पा सकता है, वह अतिथि द्वारा उतने अधिकार प्राप्त करता है ॥४॥ जो इसे जानकर मधु युक्त भोज्य पदार्थों को अतिथि के निमित्त लाता है ॥ ५ ॥ तो सत्रसद्य यज्ञ के द्वारा जितना स्वर्ग फल प्राप्त कर सकता है, वह अतिथि के द्वारा उतना ही फल प्राप्त करता है ॥६॥ जो इसे जानने वाला भोज्य वस्त्र का उपसेचन कर भोज्य पदार्थों को लाता है ॥७॥ तो द्वादशाह कर्म द्वारा जितना फल प्राप्त कर सकता है, वह अतिथि द्वारा उतने ही फल को प्राप्त करता है ॥८॥ इस बात का जानने वाला जो पुरुष अतिथि के निमित्त जल का उपसेचन कर भोज्य पदार्थ को लाता है । ९॥ वह सन्तानों के प्रजनन को प्राप्त करता है, प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है और प्रजाओं का प्रिय बन जाता है । जो यह जानता हुआ जल का उपसेचन करके अतिथि के लिये भोज्य पदार्थों को लाता है ॥१०॥

६ [५] सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-अतिथिः,विद्या । छन्द-उष्णिक्, बृहती,अनुष्टुप्, गायत्री)

तस्मा उषा हिङ् कृणोति सविता प्र स्तौति ॥१॥
बृहस्पतिरूर्जयोद् गायति त्वष्टा पुष्टया प्रति हरति
विश्वे देवा निधनम् ॥२॥
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥३॥
तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ् कृणोति संगवः प्र स्तौति ॥४॥
मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥५॥
तस्मा अभ्रो भवन् हिङ् कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ॥६॥
विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥७॥
अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ् कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद् गायति ॥८॥

उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥९॥
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥१०॥

प्रजा उसके लिए हिं शब्द करती है, सूर्य उसे यशस्वी बनाते हैं ॥१॥ अन्न रस से उत्पन्न पुष्टि से बृहस्पति उद्गायन करते हैं, त्वष्टा पुष्टि देते हैं और साम परिसमाप्त करने वाली वाणी से विश्वेदेवा उसकी स्तुति करते हैं ॥२॥ ऐसा जानने वाला पुरुष भूति, प्रजा और पशुओं का पालन करने वाला होता है ॥ ३ ॥ उदय होते हुए सूर्य हिं शब्द करते हैं और किरणों से युक्त हुए वे सूर्य उसकी प्रशंसा भी करते हैं ॥४॥ सूर्य उसकी मृत्यु को नष्ट करते हुए मध्यन्दिन के समय प्रशंसा करते है, मध्यान्ह में भोजन देते हैं। ऐसा जानने वाला भूति, प्रजा और पशुओं को प्राप्त करता है ॥५॥ उत्पन्न होता हुआ अभ्र उसके लिये हिं करता है और गर्जन करता हुआ प्रशसा करता है ॥ ६ ॥ वह दमकता हुआ प्रतिहरण करता और बरसता हुआ उद्गान करता है तथा निधन का उद्ग्रहण करता है ॥७॥ अतिथियों को देखता हुआ हिं करता, उद्गान और स्तुति करता, अभिवादन एवं याचना करता है ॥८॥ तो उच्छिष्ट और निधन का प्रतिहरण तथा उपहरण करता है ॥९॥ ऐसा जानने वाला व्यक्ति भूति प्रजा और पशुओं का निधन साम से प्राप्त करने वाला होता है ॥१०॥

६ (६) सूक्त

[ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अतिथिः, विद्या। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्; पंक्तिः, बृहती, जगती, त्रिष्टुप्]

यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥१॥
यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥२॥
यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते
चमसाध्वर्यव एव ते ॥३॥
तेषां न कश्चनाहोता ॥४॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावति ॥५॥
यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदयस्यत्येव तत् ॥६॥
स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥७
स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥८
स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् ॥९
स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् ॥१०
स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ॥११
स उपहूत उपहूतः ॥१२॥
आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥१३॥
ज्योतिष्मतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥१४॥

जो इच्छित कार्य वाले क्षत्ता का आह्वान करता है, वह श्रुति को ही सुनने वाला होता है ॥१॥ प्रतिज्ञा करने वाला ही प्रतिश्राव करने वाला है ॥२॥ हाथ में पात्र लिए आगे पीछे चलते हुए परोसने वाले ही चमस और अध्वर्यु हैं ॥३॥ इन अतिथियों में ऐसा कोई नहीं है जो आहुति न देता हो ॥४॥ अतिथियों को परोस कर गृहों के पास आने वाला अतिथिपति, अवभृथ स्नान करके गृह में बैठने के ही समान हैं ॥५॥ भोजन के पदार्थों को पृथक्-पृथक् देता हुआ दक्षिणा देता हुआ खड़ा रहता है, यह उदवमान करता है ॥६॥ वह पृथिवी में जितने प्राणी हैं, उनके आदर पूर्वक निमंत्रण पर उनके यहाँ खाता है ॥७॥ वह अन्तरिक्ष के प्राणियों को बुलाने पर उन के यहाँ भोजन करता है ॥८॥ वह स्वर्ग में जितने प्राणी हैं उनके द्वारा आदरपूर्वक बुलाने पर भोजन करता है ॥९॥ उपहूत होने पर देवताओं में भोजन करता है, देवताओं में जो प्राणी हैं, उनसे उपहूत होता है ॥१०॥ उपहूत होने पर वह लोकों में खाता है। लोकों में जो रूपवान् पदार्थ हैं, वह उसका आह्वान करता है ॥११॥ इस लोक और परलोक में भी वह सादर आहूत होता है ॥ १२ ॥ वह इस लोक को और परलोक को पाता है

॥१३॥ जो इस बात का ज्ञाता है, वही ज्योतिर्मय लोकों को प्राप्त करता है ॥१४॥

७ सूक्त [चौथा अनुवाक]

[ऋषि–ब्रह्मा । देवता—गौः । छन्द—बृहती, उष्णिक्; अनुष्टुप्, गायत्री, जगती, पंक्तिः, त्रिष्टुप्]

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥१॥
सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्य धरहनुः ॥२॥
विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥ ३ ॥
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४॥
श्येनः क्रोडोन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥५
देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥६॥
मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥७
इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो वालाः ॥८॥
ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥९॥
धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जंघा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदिति शफाः ॥१०॥

इस गौ के सींग परमेष्ठी प्रजापति हैं, इन्द्र शिर, अग्नि ललाट तथा यम कृकाट है ॥१॥ मस्तिष्क सोम, उत्तर ठोड़ी द्यौ और नीचे की ठोड़ी पृथिवी है ॥२॥ मरुद्गण दांत, विद्युत् जिह्वा, कृत्तिका कंधे और रेवती ग्रीवा रूप है ॥३॥ स्वर्ग लोक, विश्व वायु और, कृष्णद्र विधरणी निवेष्य है ।४॥ बृहस्पति ककुद्, बृहती हड्डियाँ, बाज क्रोड तथा अन्तरिक्ष पाजस्य है ॥५॥ देवताओं की पत्नियाँ पसलियाँ हैं और उपसद् उनकी कोख है ॥६॥ मित्र वरुण कन्धे हैं, महादेव बाहु तथा त्वष्ठा और अर्यमा दोनों भुजाऐं हैं ॥७॥ इन्द्राणी कमर है, वायु पूँछ और पवमान बाल हैं ॥८॥ जंघाऐं बल हैं तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय नितम्ब हैं ॥९॥

धाता और सविता उरु और जानु हैं, गन्धर्व जंघाएं हैं, अदिति शफ और अप्सराएं कुष्ठिकाएं हैं ॥१०॥

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥११॥
क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२॥
क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥१३॥
नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥१४॥
विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥१५॥
देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥
रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥१७॥
अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥१८॥
अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥१९॥
इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥२०॥

मेधा; यकृत, चेत; हृदय तथा व्रत पुरीतत नाड़ी है ॥११॥ पर्वत प्लाशि हैं, इड़ा बड़ी आंत है और भूख के अभिमानी देवता कुक्षि हैं ॥१२॥ प्रजा जननेन्द्रिय, मन्यु अण्डकोश तथा क्रोध वृक्क है ॥१३॥ वर्षपति स्तन हैं नदी सूची और गर्जन थन है ॥१४॥ औषधि लोम, नक्षत्र रूप और विश्वव्यचा चर्म हैं ॥१५॥ देवता गुदा, मनुष्य अन्तड़ियाँ, अन्न उदर है ॥१६॥ राक्षस लोहित है, इतर मनुष्य ऊबध्य हैं ॥१७ निधन मज्जा और अभ्र पुष्टि है ॥१८॥ अग्नि असीन और उत्थित अश्विद्वय हैं ॥ १९ ॥ पूर्व की ओर ठहरना इन्द्र और दक्षिण की ओर ठहरना यम है ॥२०॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ्तिष्ठन्त्सविता ॥२१॥
तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥२२॥
मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२३॥
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥२४॥
एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपम् गोरूपम् ॥२५॥
उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥२६॥

पश्चिम में ठहरी हुई गौ धाता और उत्तर में खड़ी हुई सविता है ॥२१॥ तृणों को प्राप्त गौ सोम रूप है ॥२२॥ देखती हुई मित्र है, ढीक हुई आनन्द है ॥२३॥ युज्यमान विश्वेदेव रूप है, युक्त प्रजापति और विमुक्त सर्वरूप है ॥२४॥ यह संपूर्ण विश्वरूप गोरूप है ॥२५॥ ऐसा जानने वाले को हर प्रकार के पशु प्राप्त होते हैं ॥२६॥

८ सूक्त

[ऋषि—भृग्वङ्गिरा। देवता—सर्वशीर्षामयापाकरणम्। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पंक्तिः]

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥१॥
कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥२॥
यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥३॥
यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥४॥
अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥५॥
यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम्।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥६॥
य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥७॥
यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥८॥
हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात्।

यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥६॥
आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१०॥

शीर्षामय, शीर्षक्ति, कर्णशूल और विलोहित तेरे हम सभी शीर्ष रोगों को दूर करते हैं ॥१॥ तेरे कानों से कर्णशूल और विसल्पक रोग को मैं बाहर करता हूँ ॥२॥ जिस शिर रोग के कारण यक्ष्मा रोग कान और मुख द्वारा होता है, उस शीर्षण्य रोग को हम दूर करते हैं ॥३॥ जो रोग अन्धा बना देता है, उस शिर रोग को हम पूर्णतः पृथक् करते हैं ॥४॥ अङ्ग को मरोड़ने वाले ज्वर को, विसल्प रोग को शिवांगय रोग तथा शीर्ष रोग को हम पूरी तरह निकालते हैं ॥५॥ जिसका भीषण आवेग कम्पित करता है उस शरद् कालीन ज्वर को हम बाहर खींचते हैं ॥६॥ जो गवीनिका नामक नाड़ियों में और उरुओं में घूमता है, उस यक्ष्मा रोग को तेरे शरीर से निकालते हैं ॥७॥ जो काम या अकामवश हृदय का बल क्षीण करने वाला रोग उत्पन्न होता है, उसे हम दूर करते हैं ॥८॥ तेरे उदर से अघारोग, अंगों से हरिमारोग, और अन्तरात्मा से यक्ष्मोधा नामक रोग को दूर करते हैं ॥९॥ मूत्र रोग नष्ट हो, बलास का क्षय हो, सब प्रकार के यक्ष्मा रोगों के विष को मैं मन्त्र बल द्वारा तुझसे पृथक करता हूँ ॥१०॥

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥११॥
उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१२॥
याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१३॥
या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१४॥

या: पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु वहिर्बिलम् ॥१५॥
यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१६॥
या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१७॥
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१८॥
ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१९॥
विसल्पस्य विद्रधस्य दातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥२०॥
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥२१॥
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥२२

काहाबाह नामक रोग तेरे पेट से दूर हो । मैं सब प्रकार के यक्ष्मा रोगों के विष को मंत्र बल द्वारा तुझसे पृथक करता हूँ ॥११॥ मैं तेरे उदर, नाभि और हृदय से यक्ष्माओं के विष को मंत्र-बल से निकला हुआ कहता हूँ ॥१२॥ सीमाओं को पीड़ित करने वाली, मस्तक में जाने वाली, अहिंसित हड्डियाँ निरोग होती हुई, शरीर का त्याग न करें ॥१३॥ जो कीकस नामक हड्डियाँ हृदय में फैली हुई हैं, वे किसी की हिंसा न करती हुई, देह से बाहर न हों ॥१४॥ जो हड्डियाँ पार्श्व में जाती और पृष्टियों को शुद्ध करती हैं, वे निरोग रहती हुई देह से बाहर न हों ॥१५॥ तिरछी जाने वाली, वक्षणाओं में मिलने वाली हड्डियाँ हिंसा न करती हुई निरोग रहें और देह को न त्यागें ॥१६॥ गुदा के पीछे

चलने वाली, आंतों को अमित करने वाली वे हड्डियां हिंसा-रहित तथा रोग रहित रहें और शरीर से बाहर न निकलें ॥१७॥ जो हड्डियां गांठों को पीड़ित करती और मज्जा को धोती है, वे अहिंसिका तथा निरोग रहती हुई शरीर से बाहर न निकलें ॥१८॥ अङ्गों पर मांस चढ़ाने में समर्थ, यक्ष्मा रोग को हटाने वाली औषधें तेरे रोग को सूखी कर सकती हैं। मैं उनके द्वारा सब प्रकार के यक्ष्माओं के विष को निकलता हुआ कहता हूँ ॥१९॥ वातीसार, बलजि, विसल्प, विद्रधि आदि सब यक्ष्माओं के विष को मंत्र बल द्वारा तेरे शरीर से निकला हुआ कहता हूँ ॥२०॥ तेरे जानु, पांव, श्रोणि, अनूक उष्णिहा नाड़ियों से मैंने तेरे शिरोरोग को पूर्णतया नष्ट कर दिया ॥२१॥ तेरे शिर पर ही उदय होते हुए सूर्य ने अपनी रश्मियों द्वारा तेरे रोग का नाश कर दिया और चन्द्रमा ने तेरे शिर और हृदय के अंगभेद का शमन कर दिया ॥२२॥

६ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आदित्यः, अध्यात्मम् । छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्य विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नामा ॥३॥
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥४॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥५॥
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।

वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥६॥
अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्वदेकम् ॥७॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८॥
युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९॥
तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥१०॥

यह आह्वान करने योग्य सूर्य, स्तुति द्वारा पालन करते हैं। इनका मध्यम स्थानीय भ्राता वायु है, वही आकाश को जल ले जाता है। इस वायु का तीसरा भ्राता अग्नि है। इस प्रकार वायु, सूर्य और अग्नि रूप ज्योतियों में मैं सूर्य को ही मुख्य समझता हूँ ॥१॥ सरकने वाली किरणें अन्य ज्योतियों के तेज को हटाती हुई एक पहिये वाले सूर्य के रथ में जुड़ जाती हैं। यह सूर्य सप्त ऋषियों द्वारा नमस्कार को प्राप्त करते हुए घूमते हैं। यही सूर्य ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त नामक ऋतुओं का काल निर्धारित करते हैं। सब भुवन इस काल के आश्रय में ही ठहरे हैं ॥२॥ इनके रथ को सात घोड़े खींचते हैं और उस रथ के समीप सप्त ऋषि खड़े रहते हैं। रश्मियाँ इनकी स्तुति करती हैं। जहाँ किरण रूप गौएँ निहित हैं, वे इनको रस से सम्पन्न करती हैं ॥३॥ भूमि को प्राण देने वाले, जल को रचने वाला आत्मा कहाँ है? इस प्रथम उत्पन्न अस्थन्वन् को किसने देखा, अरुण इनका वहन करते हैं। इसे पूछने के लिए विद्वान् के पास कौन गया था? ॥४॥ सूर्य के विषय में जो जानता हो बतावे कि इनकी प्रतिष्ठा कैसी है? इनके मण्डल से गौएँ दूध दुहातीं और इनकी किरणों द्वारा वर्षा होने पर जल पीती हैं ॥५॥ मैं सूर्य के रूप में पूर्णरूप से जानता हूँ। इनके विषय में अपने मन से पूछता हूँ कि सब देवताओं के रक्षा-साधन इन्हीं में निहित हैं।

विद्वानों ने विस्तार के लिए सात तन्तु स्थापित कर दिये हैं ।।६।। मैं अनजान हूँ। विद्वानों से पूछता हूँ कि वह अज के रूप में छै रजों को स्तम्भित करता है अथवा एक रज को ? ।।७।। माता सूर्य के उत्पत्ति काल में ही पिता की सेवा करती है और मन बुद्धि से सम्पन्न हो जाती है। यह गर्भरस से निविद्ध होती है । हविरन्नयुक्त प्राणी इन उपवाक के पास पहुँच जाते हैं।।८।। बलवती स्त्रियों में गर्भ स्थित होता है, वत्स धेनु की ओर देखता हुआ शब्द करता है । वह तीन योजनों में विश्वरूप वाला है।।९।।तीन द्यो रूप तीन पिता और तीन पृथिवी रूप तीन माता, इनके बीच में एक सूर्य स्थित है । विश्व को जानने वाले आकाश की पीठ में विश्व को प्राप्त न होने वाली वाणी को कहते हैं ।।१०।।

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न विच्छद्यते सनाभिः ।।११।।
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रेषडर आहुरर्पितम् ।।१२।।
द्वादशारं नहि तज्जराय ववर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ।।१३
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वाः ।।१४।।
स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ।।१५
साकजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ।।१६
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ।।१७।।
अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ।।१८।।

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥
यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२१॥
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२२॥

उस पाँच अरे के चक्र में सम्पूर्ण जगत स्थित है, उसके भार वाला अक्ष स्वयं सन्तापित नहीं होता और वह पुरातन होने पर भी नहीं टूटता ॥११॥ उस पिता रूप, बारह मास रूप आकृति और पाँच ऋतु रूप पाँव वाले को स्वर्ग के परार्ध में सोने वाला कहते हैं। इस मेघ में, सप्त चक्र और छै अरों को अर्पित करते हैं ॥१२॥ वह बारह अरे वाला स्वयं चलता हुआ जीर्णता को प्राप्त नहीं होता। हे अग्ने! इसमें पुत्र रूप सात सौ बीस युगल स्थित रहते हैं ॥१३॥ वह जीर्ण न होने वाला चक्र बढ़ता रहता है, उसे दश 'युक्त' वहन करते हैं। सूर्य का नेत्र अन्धकार से ढका हुआ आता है जिसमें समस्त संसार रहता है ॥१४॥ उनको देखने वाला अक्षयत्व वाला होता है, नहीं तो ज्ञान से शून्य होता है। जो विद्वान-पुत्र इस बात का जानने वाला है वह पालकों को भी पालने वाला हो जाता है। सती स्त्रियाँ उन्हें पुरुष कहती हैं ॥१५॥ देवताओं से उत्पन्न जो छै ऋषि हैं, वे 'सांकजो' के सप्तथ को एकज बताते हैं। उनके अभीष्ट स्थान पूर्णतः ज्ञात हैं। वे अनेक रूप से शोभायमान होते हैं ॥१६॥ श्वेत रंग वाली गौ पर पैर से अन्न और अवर-पैर से बछड़े को धारण करती हुई उठती है। वह किसी अर्द्ध भाग में जाती है, यूथ में बच्चा नहीं देती ॥१७॥ 'पर' के द्वारा इसके पिता अन्न को जानने वाला और अवर के द्वारा 'पर' को जानने वाला दिव्य मन कहाँ से प्रकट हुआ? यह प्रजापति ने कहा ॥१८॥ जो अर्वाङ हैं, वे पराञ्चों

गों और जो पराग हैं वे अर्वाञ्चों को कथन करते हैं। हे सोम! तुम और इन्द्र जिन्हें करना चाहते हो, वे लोक धारण करने में समर्थ होते हैं ॥१९॥ समान माया से युक्त और समान प्रसिद्धि वाले दो सुन्दर आत्मा एक ही वृक्ष पर बैठे हैं। परन्तु एक सुस्वादु पीपल को खाता है और दूसरा न खाता हुआ उसे देखता ही रहता है ॥२०॥ वृक्ष का जो भाग सुस्वादु पीपल कहलाता है, उसमें जो मधु खाने वाले पक्षी बैठते हैं, वे सृष्टि का विस्तार करते हैं। जो कारण नहीं जानता, उसका वह संसार नाश को प्राप्त नहीं होता ॥२१॥ जहाँ पक्षी कर्मों को अमृत रूप फल के समान कहते हैं, वह संसार का रक्षक और सूर्य में प्रविष्ट होने में समर्थ नहीं है ॥२२॥

१० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—गौः, विराट्, अध्यात्मम्, मित्रावरुणौ।
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, शक्वरी)

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥१॥
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२॥
जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥३॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥४॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥५॥
गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥६॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।

सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत।७
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येन सयोनिः ॥८॥
विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥९॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥१०॥

गायत्र में गायत्र और त्रैष्टूभ में निरतक्षित है तथा जगती में जगत निहित है। इसे वास्तविक रूप से जानने वाले अमृतत्व को भोगते हैं ॥१॥ गायत्र से अर्क, अर्क से साम, त्रैष्टभ से वाक् तथा वाक् से वाक् को और द्विपदा, चौपदा छन्द से सप्त वाणियों को शब्दवान् बनाया जाता है ॥२॥ संसार द्वारा समुद्र को द्युलोक में प्रेरित किया, रथन्तर में सूर्य के दर्शन किये, गायत्री को तीन समिधाओं का कथन किया। फिर वह अपनी महत्ता से ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥३॥ गौओं को सुन्दर हाथ से दुहने वाला मैं सरलता से दुहाने वाली गौ को दुहता हुआ पास में बुलाता हूँ ॥४॥ वन से बछड़े की कामना करती हुई, धन द्वारा पालन करने योग्य यह धेनु हिं शब्द करती हुई धनवानों को प्राप्त हुई है। यह सौभाग्य के लिये हमारे घर में वृद्धि को प्राप्त हो और अश्विनीकुमारों के लिए दूध का दोहन करे ॥५॥ अपनी ओर ताकते हुए वत्स की ओर हिं शब्द करती हुई गौ उसके पास पहुँच कर सूँघती है। तू मेरा है, यह बताने को शब्द करती और बछड़े को अपने दूध से प्रवृद्ध करती है ॥६॥ शब्दवान् मेघ ने माध्यमिका वाणी को ढक लिया और वह ढकी हुई वाणी शब्द करती है। या वह अपने को सूर्य के समान बना कर मेघ में व्याप्त होकर रहती है। यह वाणी मनुष्य को भयभीत बनाती हुई विद्युत रूप से प्रकट होती और वर्षा के बन्द होने पर अपने रूप को छिपा लेती है ॥७॥ मैं यमलोक के डर से कम्पायमान प्राणी के घर में सोता हुआ श्वास लेता हूँ अमर्त्य जीव मरणधर्मा

प्राणियों का सयोनि हुआ स्वधा सहित भक्षण करता है ॥८॥ दमनशील, दमनशील तरुण चन्द्र को सूर्य निगल जाता है। ईश्वर की कुशलता देखो कि जो चन्द्रमा आज मृत्यु को प्राप्त हुआ है, वही कल श्वास लेता है ॥६॥ गर्भ करने वाला, गर्भ के तत्व को नहीं जानता। गर्भ के भीतर जो होता है; वह गर्भ को देखता है। माता के भोजन व्यवहार से पुष्ट हुआ वह समय पर उत्पन्न होता है। बहुत बार उत्पत्ति रूप वाली निर्ऋति के जाल में पड़ता है ॥१०॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥११॥
द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥१२॥
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचं परमं व्योम॥१३॥
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥१४॥
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥१५॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥१६
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥१७
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥१८॥

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१९॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम । ...न वर्षा
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥२०॥ ...नें

हमने संरक्षक आत्मा को संसार रूप चक्र में घूमते देखा। उसी को इहलोक, परलोक में सत्व, रज, तमात्मक मार्गों में घूमते हुये भी देखा। वह अपने में व्याप्त इन्द्रियों सहित लोकों में विचरण करता है ॥११॥ वृष्टि करता हुआ, वीर्योत्पादक ग्रह द्यौ ही मेरा पिता है और यह पृथिवी मेरी माता है, क्योंकि यह वर्षा-जल को औषधि रूप में परिणित करती है। आकाश-पृथिवी को सूत्र रूप से वायु धारण करते हैं। पिता रूप द्यौ वृष्टि रूप गर्भ को पृथिवी में स्थापित करता है ॥१२॥ मैं पृथिवी के परम स्थान को, वर्षक व्यापक के वीर्य को और सम्पूर्ण जगत की नाभि को पूछता हूँ तथा व्योम को भी पूछता हूँ ? ॥१३॥ वेदी पृथिवी की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। सोम ही वर्षक व्यापक का वीर्य है, यज्ञ ही सम्पूर्ण जगत की नाभि है और ब्रह्मवाणी से परे व्योम है ॥१४॥ मैं यह नहीं जान पाया कि मैं परब्रह्म रूप कारण हूँ अथवा उसका कार्य द्वैत हूँ ? मैं इस द्वैताद्वैत की सन्देह ग्रन्थियों से बंधकर उसी के मध्य घूमता हूँ। अतः सब इन्द्रियों में मुख्य बुद्धि के द्वारा, कारण हूँ या कार्य यह जानकर वाणी के भाग का उपभोग करूँ ॥१५॥ आत्मा अमरण धर्म वाला है, वह मर्त्य मन के साथ गर्भ से प्रकट होता है। उनमें से आत्मा ब्रह्म में मिलकर तद्रूप हो जाता है और मन उसके पास नहीं पहुँचता। वह आत्मा के कार्य को देखता है और (अन्धकार) कारण को नहीं देख पाता ॥१६॥ सूर्य में सात किरण वीर्य रूप से वर्तमान रहती हैं। वे कर्मो की उत्पत्ति रूप से वृष्टि रूप संपूर्ण जगत में फैलती हैं ॥ १७ ॥ ॐकार के अक्षर परम व्योम में सब देवता निवास करते हैं. जो इसे नहीं जानता वह ऋक् आदि मन्त्रों द्वारा क्या कर सकता है ? जो इसे जानते हैं वे इसका उपदेश देते हैं ॥१८॥ ॐकार के पद की कल्पना करते हुये उस अर्ध से इस चैतन्य विश्व की कल्पना हुई। ब्रह्म निश्चल रहने वाला है। उसकी एक मात्रा से चारों दिशायें जीवन प्राप्त करती हैं ॥ १९ ॥ हे पृथिवी ! तू जलमय सूर्य से, जल रूप ऐश्वर्य से युक्त हो। हम भी तेरे जल रूप धन से सम्पन्न हों।

...र करती हुई शुद्ध जल का सेवन कर सूर्य की
...न का पान कर ॥२०॥

...न्नानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
...ा बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः
समुद्रा अधि विक्षरन्ति ॥२१॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदु ॥२२॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिरस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥२३॥

विराड् वाग विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्ष विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्यं भूत भव्यं वशे
स मे भूत भव्यं वशे कृणोतु ॥२४॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥२५॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम ॥२६॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीय वाचो मनुष्या वदन्ति ॥२ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ॥२८॥

यह वाणी रूप गो ही संसार की निर्मात्री है । वह जल को करने वाली है । मध्यम के साथ एकत्व प्राप्त कर एकपदी, सूर्य के साथ द्विपदी, दिशाओं के साथ चतुष्पदी, अवान्तर दिशाओं से अष्टपदी और दिशा-विदिशा तथा सूर्य के साथ मिलकर नवपदी हो जाती है । परम व्योम

के अविभक्त आत्मा में मिलती हुई रचना करती है, उसी से मेघ वर्षा करते हैं ॥२१॥ जल को ग्रहण करती सूर्य किरणें, ज्योतिर्मान् सूर्य में ही जाती हैं और वही जब दक्षिणायन में सूर्य मन्डल से लौटती हैं, तब पृथ्वी जल से भीग जाती है ॥२२॥ हे सूर्य, हे वरुण ! तुम्हारे रूप को कौन जानता है? पाँवों से रहित किरण, पाँव वाले से पूर्व आ जाती हैं। पृथिवी इनके भार को धारण करती है। वह सत्य कहने वाले का पालन करती है और झूठे का नाश कर देती है ॥२३॥ विराट अन्तरिक्ष विराट वाणी, विराट प्रजापति और विराट ही मृत्यु है। विराट ही साध्यों का स्वामी है। भूत, भविष्य उसी विराट के वश में हैं, अतः वह विराट भूत, भविष्य को मेरे आधीन कर दे ॥२४॥ मैंने विषवत् और एनावर यज्ञ द्वारा शक्रयुक्त धूम को पास में ही देखा। उक्षा और पृश्नि का वीरों ने पचन किया, यही मुख्य धर्म थे ॥२५॥ जो सूर्य, अग्नि और वायु अपने कर्मों द्वारा समय-समय पर संसार पर अनुकम्पा करते हैं, इनमें एक अग्नि सम्वतसर में पृथिवी को भस्म करते हैं, इससे वह कर्म के योग्य हो जाती है और सूर्य अपने कर्मों को करते हैं तथा वायु का रूप दिखाई नहीं देता, केवल गति ही दिखाई पड़ती है ॥२६॥ वाणी के चार पद हैं। इसे विद्वान् ब्राह्मण जानते हैं। उनमें से तीन पद गुप्त हैं और चौथे पद रूप वाणी का मनुष्य उच्चारण करते हैं ॥२७॥ तत्व के जानने वाले विद्वान् अग्नि मित्र, वरुण को अग्नि ही बताते हैं, और द्युलोक में जो सुन्दर पर्णयुक्त स्तुत्य सूर्य हैं, उन्हें भी अग्नि ही कहते हैं। इस एक ही अग्नि को आत्म स्वरूप से देखने वाले विद्वान् मातरिश्वा, यम, अग्नि आदि अनेकों नामों से पुकारते हैं ॥२८॥

(इस सूक्त में वैदिक ब्रह्मविद्या का मार्मिक रीति से विवेचन किया गया। यही आत्म-विद्या कही जाती है। इसको सदा से गुप्त विद्या समझा गया था और अधिकारी पुरुष को ही इसका उपदेश देने का विधान है। इसीलिये इस विषय को यहाँ बहुत स्पष्ट शब्दों में कहने के बजाय गूढ़ भाषा और व्यंग शब्दों में वर्णन किया गया है। सूक्तकार ने परमात्मा और आत्मा का स्पष्ट नामोल्लेख न करके संकेत के रूप में

लिखा है—'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।' अर्थात् "दो उत्तम पङ्ख वाले पक्षी साथ-साथ रहने वाले परस्पर मित्र हैं और वे दोनों एक ही वृक्ष पर मिलकर रहते हैं, पर उनमें से एक तो वृक्ष के फलों को खाता है और दूसरा केवल देखता रहता है, परन्तु भक्षण (भोग) नहीं करता।" इस मन्त्र द्वारा ब्रह्म और जीव की एकता और उनके अन्तर, दोनों बातों पर बड़े अच्छे ढंग से प्रकाश डाल दिया गया है। इसी प्रकार अन्तिम मन्त्र में स्पष्ट समझा दिया गया है कि इन्द्र, मित्र, वरुण, सुपर्ण, यम आदि अनेक देवताओं का नाम लिया जाता है, पर वास्तव में वे एक परमात्मा के ही रूप हैं और वही परमात्मा संसार का आदि स्रोत और एक मात्र आधार है। इस प्रकार यह समस्त सूक्त आत्म-विद्या की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।)

॥ नवमं काण्डं समाप्तम्॥

दशम काण्ड

—※—

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि-प्रत्यङ्गिरसः। देवता-मन्त्रोक्ताः। छन्द-बृहती; गायत्री; अनुष्टुप्; पंक्तिः, जगती; त्रिष्टुप्; उष्णिक्; गायत्री)

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
साराादेत्वप नुदाम एनाम् ॥१॥
शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
साराादेत्वप नुदाम एनाम् ॥२॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥३॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥४॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥५॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥६॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥७॥

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येव ऋभुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥८॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शम्भ्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

जिस कृत्या को निर्माता लोग दहेज में प्राप्त वधू के समान सजाते हैं, उस कृत्या को हम भगाते हैं, वह हमारे पास से चली जाय ॥ १ ॥ सिर, नाक, कान से युक्त निर्मित कृत्या अनेक आपत्ति वाली है, उसे हम भगाते हैं, वह हमारे पास से चली जाय ॥२॥ शूद्र द्वारा की गई, राजा व स्त्रियों द्वारा की गई और मंत्रों द्वारा प्रेरित कृत्या पति द्वारा उसके भाइयों के पास भेजी गई स्त्री के समान कृत्याकारी के पास लौट जाय ॥३॥ क्षेत्र में, गौओं में और पुरुषों में की गई कृत्या को मैं इस औषधि द्वारा निर्वीय कर चुका हूँ ॥४॥ शपथ, शपथ देने वाले को ही प्राप्त हो,

हिंसा रूप पाप उसी हिंसक के पास पहुँचे। हम कृत्या को इस प्रकार लौटाते हैं, जिससे वह कृत्याकारी की ही हिंसा कर डाले ॥५॥ हमारा पुरोहित पश्चिम का है, अंगिरा वंश का है। हे पुरोहित! तुम सामने आती हुई कृत्याओं को खंडित करते हुए कृत्याकारियों को ही नष्ट कर डालो ॥६॥ हे कृत्ये! जिसने तुझे मेरे पास आने को कहा है, तू उसी के पास लौट जा। हम निरपराध हैं, हमारी कामना न कर ॥७॥ हे कृत्ये! ऋभु जैसे रथ को जोड़ता है, वैसे जिसने तेरी हड्डियों को जोड़ा है, तू उसी के पास लौट जा। यह मनुष्य तो तुझसे परिचित भी नहीं है ॥८॥ हे कृत्ये! जिन अभिचार करने वालों ने तुझे पाया है, यह मंगलमय पुनःसर कृत्या को दूषित कर उसके मार्ग को उलटा करने में समर्थ है, हम उसी से तुझे स्नान कराते हैं ॥९॥ हम जिस कृत्या को प्राप्त होकर मृतवत्सा रूप दुर्भाग्य को प्राप्त हो गये हैं, हमारा वह पाप दूर हो और हमारे पास धनादि स्थित रहे ॥१०॥

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात्।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥१२

यथ वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षच्चाभ्रम्।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१३॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१४॥

अयं पन्थाः कृत्य इति त्वा नतामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनो विश्वरूपा कुरूटिनी ॥१५॥

पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६

वातइव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम्।
कर्तृ न् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१७॥
यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥१८
उपाहृतमनुबुद्ध निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम्।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्वइव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥१९
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि।
उत्तिष्ठैव व परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२०॥

पितरों को देते समय जिसका नाम लिया था, उस पाप से यह औषधियां तुझे छुड़ावें ॥११॥ देवताओं के अपराधजन्य पाप से, पितरों का नाम लेने के पाप से, अभिनिष्कृत से और सन्देश्य से यह औषधियाँ ऋषियों के तपोबल, मन्त्रबल आदि के द्वारा तुझे छुड़ावें ॥१२॥ जैसे वायु, अन्तरिक्ष से, मेघ और पृथिवी से धूलि को उड़ा देता है, वैसे ही मेरे सब पाप मन्त्र बल द्वारा उड़ जांय ॥१३॥ जैसे खुली हुई गर्दभी रेंकती हुई दुलती चलाती है, वैसे ही हे कृत्ये ! तू मन्त्र द्वारा मार खाती हुई दौड़कर अपने करने वालों का ही नाश कर ॥१४॥ हे कृत्ये ! तुझ शत्रु द्वारा प्रेरित की हुई को हम शत्रु की ओर ही भेजते हैं। वही तेरा मार्ग है। इस कर्म द्वारा तू गाड़ी से युक्त, अनेक वीरों से सम्पन्न, शब्द करती हुई सेना के समान हमारे शत्रु पर ही झपट ॥१५॥ हे कृत्ये ! शत्रुओं के पास तेरी ज्योति पहुँचे। तू हमसे दूर अपना निवास बना। तू नौकाओं द्वारा तैरने योग्य दुर्गम नव्वे नदियों के पार हो। हमारी हिंसा मत कर ॥१६॥ जैसे वायु पेड़ों को तोड़ डालता है, वैसे ही तू शत्रुओं को तोड़ डाल। उन शत्रुओं के गौ, घोड़े और पुरुषों को बाकी न रख। तू अपने करने वालों को सन्तान-हीन होने की सूचना देती हुई यहाँ से दूर हो ॥१७॥ हे कृत्ये ! तुझे अग्नि में, श्मशान या क्षेत्र में

गुप्त रीति से अभिचारकों ने किया है अथवा गार्हपत्य अग्नि में किया है। मैं निरपराध पुरुष उसे निर्बल करता हूँ ॥१८॥ कपटपूर्वक किये जाने वाले वैर को हम कर्त्ता को ही प्राप्त कराते हैं, वह जहाँ से आया है, पत्र के समान वहीं जाय और कृत्याकारी की संतान को ही नष्ट करे ॥१९॥ हे कृत्ये ! हम तेरे अस्थिपर्व के जानने वाले हैं, हमारे घर में श्रेष्ठ लोह की तलवारें हैं। इसलिए तू यहाँ से शीघ्र ही हमारे शत्रु के पास भाग। तू हमसे अपरिचित है। अतः यहाँ क्या कामना करती है? ॥२०॥

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजापती ॥२१॥

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२॥

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते। दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३॥

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४॥

अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥२६॥

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७॥

एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८॥

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिताइव।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०॥
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम्।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१॥
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥३२॥

हे कृत्ये ! मैं तेरा गला और दोनों पाँव काटने को उद्यत हूँ। अतः तू यहाँ से चली जा। प्रजाओं के पालन करने वाले इन्द्राग्नि मेरी रक्षा करें ॥२१॥ यह सोम प्राणियों के स्वामी तथा सुख देने वाले हैं, अतः वे हम को भी सुख प्रदान करें ॥२२॥ भव और शर्व नामक देवता कृत्याकारी कुकर्मी पर देवताओं के शस्त्ररूप विद्युत को प्रेरण करें ॥२३॥ हे कृत्ये ! तू कृत्याकारी द्वारा दो या चार पैर वालों में भरी गई है, यदि तू यहाँ आ रही है तो आठ पैर वाली होकर लौट जा ॥२४॥ हे कृत्ये! तू घृत में तर और भले प्रकार सजी हुई दुष्कृत्यों के करने वाली है। जैसे पुत्री अपने पिता को जानती है, वैसे ही तू अपने उत्पन्न वाले को जानती हुई हम से दूर हट ॥२५॥ हे कृत्ये ! तू यहाँ मत रुक, दूर चली जा। जैसे सिंह बिंधे हुए मृग के स्थान की ओर जाता है, वैसे ही तू शत्रु के स्थान पर जा। तेरा प्रयोगकर्त्ता मृग रूप है और तू सिंह रूप है, इसलिए वह तुझे नष्ट करने में समर्थ नहीं है ॥२६॥ पहले बैठे हुये को दूसरा व्यक्ति वाण से नष्ट करता है और पहले मारने वाले मनुष्य को दूसरा मनुष्य हत्या कर देता है ॥२७॥ मेरे इस वचन को सुनती हुई तू जहाँ से चली है, वहीं लौट। जिसने तुझे किया है, उसी को प्राप्त हो ॥२८॥ हे कृत्ये ! निरपराध की हत्या करना भयंकर कर्म है, इसलिये तू हमारे गवादि पशुओं और पुरुषों की हत्या न कर। तुझे जहाँ-

जहाँ प्रतिष्ठित किया गया है, वहाँ-वहाँ से तुझे हम उठाते हैं। तू पत्ते से भी हलकी हो ॥२६॥ हे कृत्याओ ! तुम यदि जाल से या अन्धकार से ढकी हुई हो तो हम उन कृत्याओं को यहाँ से लुप्त करते हुए कृत्याकारी के पास पुनः भेजते हैं ॥३०॥ हे कृत्ये ! तू कपट करने वाले अभिचारी की सन्तानों को नष्ट कर डाल। इन कृत्याकारियों को भी नष्ट कर दे ॥३१॥ जैसे सूर्य अन्धकार से छूट जाता है और रात्रि उत्पन्न करने वाले तथा उषा के उत्पत्ति कारणों का भी त्याग कर देता है तथा जैसे हाथी रज को झाड़ देता है, वैसे ही मैं कृत्या कर्म करने वाले के पाप को पूरी तरह झाड़ता हूं ॥३२॥

२ सूक्त

[ऋषि—नारायणः। देवता—पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; जगती; बृहती]

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ।
केनांगुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥१॥

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत ॥२॥
चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥३॥
कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥४॥
को अस्य बाहू समभरद्वीर्यं करवादिति।
अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५॥
कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥६॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥७॥

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥८॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥९॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥१०॥

मनुष्य की एड़ियों को, टखनों को और माँस को किसने पुष्ट किया, सुन्दर उंगलियों का किसने पोषण किया ? इलखों को मध्य में किसने प्रतिष्ठित किया ? ॥१॥ नीचे के टखनों को देवताओं ने किससे बनाया, उरु तथा पांव की मध्यस्थ जांघों को किससे बनाया, जांघों को निर्ऋति करके किससे बनाया, जांघों का जोड़ कहाँ है, उसे कौन जानता है ? ॥२॥ जाँघों के ऊपर का भाग, शिथिर, कंधे, संहितान्त यह चारों मिलते हैं,जिनसे कुसिंध दृढ़ हुआ । उन श्रोणी और उरुओं का ज्ञाता कौन है ? ॥३॥ जो पुरुष के कंठ और हृदय को जानते हैं वे देवता कितने हैं ? तथा कितने प्रकार के हैं ? स्तनों को, फेफड़ों को, कंधों को कितने-कितने देवताओं ने बनाया और कितने देवताओं ने पृष्टियों की कल्पना की ? ॥४॥ किस देवता ने इसके वीर्य को पुष्ट किया, किस देवता ने कंधों को और किसने भुजाओं को दृढ़ किया तथा किस देवता ने कुंसिध पर स्थापित किया ? ॥५॥ मनुष्य के शिर में दो कान, दो नथुने, दो नेत्र, एक मुख, इन सात छेदों को शिर को फाड़ कर किस देवता ने किया । दो पैर वाले और चार पैर वाले प्राणी इन देवताओं की महिमा से अनेक स्थानों में होते हुए यम-स्थान को प्राप्त होते हैं॥६॥ अनेक स्थानों को प्राप्त होने वाली जीभ को ठोड़ी में किसने स्थापित

किया ? किसने उसमें वाणी को स्थित किया ? जल का धारक वह देवता जीवों के भीतर विचरता है, उसका ज्ञाता कौन है ? ।७।। मस्तिष्क का जो भाग ललाट है, ककाटिका और कपाल तथा हनुओं के संचय योग्य अंश का चयन करके जो प्रथम देवता स्वर्ग को गया, वह देवता कौन सा है ? ॥८॥ इस पुरुष के स्वप्न को प्रिय और अप्रिय वाणी को संबोधन इन्द्रियों को और आनन्दों को कौन सा देवता धारण करने वाला है ? ॥९॥ इस पुरुष में पाप, आजीविका-विरोधी तत्व, संताप आदि कहां से प्राप्त होते हैं और ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि, बुद्धि और उदिति को वह कहां से प्राप्त करता है ॥१०॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः॥११
को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च ।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥१२॥
को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥१३॥
को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥१४॥
को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥१५॥
केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायभवं ददे ॥१६॥
को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् बाणं को नृतो दधौ ॥१७॥
केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१८॥
केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।

केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मन ॥१९॥
केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्नि पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥२०॥

जो जल अनेकों का वरण करने वाले, सर्वत्र वर्तमान सागर की ओर प्रवाहमान हैं, उन जलों को अरुण, लोहित, ताम्र धूम्र रङ्ग में ऊपर, नीचे और तिरछे जाने के निमित्त पुरुष में किसने प्रविष्ट किया? ॥११॥ इस पुरुष में रूप महिमा, ज्ञान, चरित्र, नाम और गति की किस देवता ने स्थापना की ? ॥१२॥ प्राण, अपान व्यान, समान वायु को इस पुरुष में किस देवता ने स्थापित किया ? ॥१३॥ यज्ञ रूप कर्म को किस प्रधान देवता ने इसमें स्थापित किया है ? मरण, अमरण, सत्य और मिथ्या को इस पुरुष में किसने प्रतिष्ठित किया ? ॥१४॥ जिस चर्म से देह ढका है, उसे इसमें किसने लगाया, इसमें बल, वेग और आयु की किसने कल्पना की ? ॥१५॥ किस देवता ने इसमें जल को प्रवृद्ध किया, किसके द्वारा इसके लिये प्रकाशयुक्त दिन को बनाया, किसके द्वारा उषा उज्ज्वल की गई और किसके द्वारा सायंकाल की रचना की गई ? ॥१६॥ प्रजाओं के विस्तारार्थ वीर्य की स्थापना किसने की, किसने इसमें बुद्धि प्रतिष्ठित की और वाण को किसने स्थापित किया ?॥१७॥ किस प्रभाव से इसने भूमि को आवृत किया, किस प्रभाव से यह स्वर्ग पर चढ़ता है। किस प्रभाव से पर्वतादि पर चढ़ता और कर्मों को करता है ॥१८॥ किससे यह पर्जन्य को तथा किस से सोम को पाता है, किसके द्वारा यज्ञ और श्रद्धा को प्राप्त होता है, किससे इसका मन सत्कर्म की ओर प्रेरित होता है ? ॥१९॥ किसके द्वारा यह श्रोत्रिय को, किसके द्वारा परमेष्ठी को, किसके द्वारा अग्नि को प्राप्त हो रहा है ? किस के द्वारा यह संवत्सर की गणना कर रहा है ॥२०॥

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥२१॥

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।
केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते ॥२२॥

ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥२३॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२४॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२५॥

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६॥

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥२७॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टास्तिर्यङ् नु सृष्टाः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥२८॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥३२॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥३३॥

श्रोत्रिय, परमेष्ठी और अग्नि को ब्रह्म ही प्राप्त हो रहा है और ब्रह्म ही संवत्सर की गणना कर रहा है ॥२१॥ किस कर्म से मनुष्य देवताओं के अनुकूल रह सकता है, किस कर्म से देव, प्रजाओं के अनुकूल रहता है, किसके द्वारा क्षत्र नहीं होता, किससे सत् क्षत्र बन जाता है ? ॥२२॥ मन्त्र ही देवानुकूल रहता है, मन्त्र ही देव-प्रजाओं के अनुकूल होता है। यह ब्रह्म ही है, सत् ब्रह्म को ही क्षत्र कहते हैं ।२३। इस भूमि का प्रतिष्ठाता कौन है ? उत्तर द्यौ, ऊपर का भाग और तिर्यक् भाग की स्थापना किसने की ? उस अनेक प्राणियों के गमन योग्य अन्तरिक्ष की रचना किसने की ? ॥२४। ब्रह्म ने ही पृथिवी, द्यौ, ऊपर का भाग, तिर्यक् भाग और गमन योग्य अन्तरिक्ष की रचना की है ॥२५॥ प्रजापति ने इसके शिर और हृदय को सींकर मिलाया। उस उर्ध्व पवमान ने शीर्ष स्थान से और हृदय से ही प्रेरणा की ॥२६॥ यह अथर्वा प्रदत्त शिर सरलता से प्रतिष्ठित है, यह देवताओं का कोशरूप है। प्राण, अन्न और मन उस शिर की रक्षा करते हैं ॥२७॥ पुरुष जिस ब्रह्मा का कहा जाता है उसकी पुरी को जानता हुआ वह उर्ध्व, तिर्यक् आदि समस्त दिशाओं में प्रकट हो जाता और अपने प्रभाव को भी उत्पन्न करता है ॥२८॥ जो पुरुष ब्रह्मा की उस अमरणतत्व से सम्पन्न पुरी को जानता है, उसे ब्रह्म और मन्त्रयुक्त कर्म, नेत्र, प्राण और सन्तति प्रदान करते हैं ॥२९॥ ब्रह्मा की जिस पुरी में शयन करने के कारण पुरुष जिसका कहा जाता है, उसे जो जानता है, उस पुरुष का साथ प्राण और नेत्र वृद्धावस्था से पूर्व नहीं छोड़ते ॥३०॥ आठ चक्र, नौ द्वार वाली देवताओं की अयोध्या नगरी है। उसमें स्वर्ग के देने वाला हिरण्यमय, ज्योति से पूरी तरह ढका हुआ है ॥३१॥ उस हिरण्यमय कोश में पूजन के योग्य आत्मा का जो स्थान है, उसे ब्रह्म के जानने वाले भले प्रकार जानते हैं ॥३२॥ पाप का नाश करने वाले, यशस्वी होने के कारण दमकते हुए, कभी भी पराजित न हुये हिरण्यमय पुर में ब्रह्म प्रविष्ट होता है ॥३३॥

३ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

[ऋषि–अथर्वा। देवता–वरणमणिः, वनस्पतिः। छन्द–अनुष्टुप्
त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती]

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥१॥

प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥२॥

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति। ३

अयं ते कृत्यां वि ततां पौरुषेयादयं भयात्।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥४॥

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥५॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥७॥

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम्।
ततो न वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥८॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥९॥

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०॥

यह वरण वृक्ष की मणि शत्रुओं का नाश करने में समर्थ है और इच्छित फलों की वर्षा करने वाली है। तू उसके द्वारा उद्योग करता हुआ दुष्टता करने वाले वैरियों को नष्ट कर डाल ॥१॥ यह मणि तेरे अभियान में आगे-आगे चले। तू इन शत्रुओं का मर्दन कर, इनका वशीभूत कर। इस वरण मणि की सहायता से देवतागण राक्षसों के अभिचारात्मक कृत्यों को दूसरे दिन ही नष्ट कर देते थे ॥२॥ यह मणि सब दुखों की चिकित्सा के समान है, यह सहस्राक्ष के समान पराक्रम वाली है, यह रमणीय हित वाली हरे रंग की मणि तेरे शत्रुओं का पतन करेगी, तुरन्त तू अपने शत्रुओं का संहार कर डाल ॥३॥ तेरे लिये विस्तृत की गई कृत्या को यह वरण मणि शांत कर देगी, किसी पुरुष द्वारा प्राप्त होने वाले भय की शङ्का को मिटाती हुई यह मणि तुझे समस्त पापों से पृथक् रखेगी ॥४॥ यह सम्मुख प्राप्त दानादि गुण से सम्पन्न वरण मणि, हमारे रोग और शत्रु आदि को दूर करे ॥५॥ हे पुरुष ! पापमय स्वप्न का भय, अप्रीतिकर दिशा की ओर मृग का गमन, छींक, काकादि पक्षियों के द्वारा प्राप्त अपशकुनों से वह वरण मणि तेरी रक्षा करेगी ॥६॥ हे पुरुष! यह मणि शत्रु, पाप अभिचार आदि के भय और मृत्यु के प्रबल कृत्यों से तेरी रक्षा करेगी ॥७॥ यह वनस्पति रूप मणि मेरी माता, पिता भ्राता तथा अन्य आत्मीयजनों ने जो पाप किया है, उससे बचावेगी ॥८॥ मेरे गोत्रीय बन्धुरूप शत्रु इस वरण मणि के द्वारा व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं, वे विस्तृत रज को प्राप्त हुए भीषण अन्धकार में पतित हों ॥९॥ मैं हिंसा से रहित होकर शान्ति प्राप्त कर रहा हूँ। मैं पुत्र, भृत्यादि से सम्पन्न होता हुआ आयुष्मान बनूँ। यह वरण मणि दिशा-प्रदिशा में सर्वत्र मेरी रक्षक हो ॥१०॥

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥११॥
इमं बिभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥१२॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वाञ्जातां उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १३ ॥

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वाञ्जातां उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १४ ॥

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम न क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वाञ्जातां उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१५॥
तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥१६॥
यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१७॥

यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१८॥
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिञ्जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१९॥
यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२०॥

यह दानादि गुण सम्पन्न वनस्पति निर्मित वरण मणि दमकती हुई मेरे हृदय में प्रतिष्ठित है। जैसे इंद्र राक्षसों को दुःख देते हैं, वैसे ही यह मेरे शत्रुओं और दस्युओं को बाधक हो।।११।।वह वरणमणि मुझमें राष्ट्र,पशु,

बल तथा रक्षा-साधनों की स्थापना करे। मैं इस मणि को सौ वर्ष की आयु प्राप्त करने के निमित्त धारण करता हूँ ॥१२॥ वायु अपने बल से वनस्पतियों और वृक्षों को तोड़ फेंकता है, वैसे ही यह मणि मेरे पहिले के और पीछे के शत्रुओं का संहार करे। यह वरणमणि मेरी रक्षा करने वाली हो ।।१३।। जैसे वायु और अग्नि वनस्पतियों के पास जाकर उन्हें भस्म कर डालते हैं वैसे ही हे वरणमणि ! तू मेरे पूर्वोत्पन्न तथा पीछे उत्पन्न होने वाले शत्रुओं का संहार कर। यह मणि मेरी रक्षा करे ।।१४।। वायु से सूखे हुये वृक्ष जैसे गिरकर पृथिवी पर लेट जाते हैं वैसे ही हे वरणमणि ! तू मेरे पहिले-पीछे के शत्रुओं को सुखाकर पतित कर। यह वरण मणि मेरी रक्षक हो ॥१५॥ हे वरणमणि ! जो इस यजमान के पशु और राष्ट्र का अपहरण करने की इच्छा करते हैं, तू उनकी आयु और भाग्य को पहले ही छीनकर नष्ट कर डाल ॥ १६ ॥ जैसे यह सूर्य अत्यन्त प्रकाशमान है, जैसे यह अत्यन्त तेजस्वी है, वैसे ही यह मणि मुझे यश और तेज प्रदान करे। मैं यश और तेज से पूर्णतया सम्पन्न होऊँ ॥ १७ ॥ सब प्राणियों के साक्षिरूप चन्द्रमा में जैसे यश प्रतिष्ठित है, वैसे ही यह मणि मुझे यश और तेज से युक्त करे ॥१८। जैसे पृथिवी में और अग्नि में यश प्रतिष्ठित है, वैसे ही यह वरण मणि मुझे यश और तेज प्रदान करती हुई सम्पन्न बनावे ॥१९॥ जैसे कन्या यशस्विनी है, संभृत रथ मे यश वर्तमान है, वैसे ही यह मणि मुझे यश और तेज से युक्त करे ॥२०॥

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२१॥
यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२२॥
यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूमिं नि यच्छतु तेजसा मा ।
समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२३॥
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा ।
समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२४॥
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा ।
समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२५॥

जैसे सोमपीय और मधुपर्क में यश है, वैसे ही यह मणि मुझमें यश और तेज स्थापित करे ॥ २१ ॥ जैसे अग्निहोत्र और वषट्कार में यश है, वैसे ही वह वरणमणि मुझे यश और तेज में प्रतिष्ठित करे ॥२२॥ जैसा यश यजमान में होता है, जैसे इस यजमान में यश प्रतिष्ठित होता है वैसे ही यह वरणमणि मुझे तेज और यश में प्रतिष्ठित करे ॥२३॥ जैसे प्रजापति और परमेष्ठी में यश है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे यश और तेज प्रदान करने वाली हो ॥ २४ ॥ जैसे देवताओं में अमृत और सत्य प्रतिष्ठित है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे यश और भूति दे तथा तेज और यश में प्रतिष्ठित करने वाली हो ॥२५॥

४ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान् । देवता-सर्पविषापाकरणम् । छन्द-पंक्तिः, गायत्री; बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथः स्थाणुमारदथार्षत् ॥१॥
दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥२॥

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरस विष वारुग्रम ॥३॥
अरघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत्।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरस विषं वारुग्रम् ॥४॥
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम्।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः स बिभेद पृदाक्वाः ॥५॥
पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥६॥
इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम्।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥७॥
संयतं नः वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत्।
अस्मिन् क्षेत्र द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥८॥
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥९॥
अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च।
इन्द्रो मेऽहिमाघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥१०॥

इन्द्र का प्रथम रथ, देवताओं का द्वितीय रथ, वरुण का तृतीय रथ है। सर्पों का अपमा नामक रथ है जो स्थाणु में भी गमनशील है। वह फिर भाग जाता है ॥१॥ यह दर्भ सर्पों को शोकप्रद है, तरुणक और अश्व नामक सर्प के विष को रोकता, परुष नामक विष को दूर करता है, रथ का बंधुर है॥२॥ हे श्वेत सर्प! तू अपने पूर्व पद और अपर पद द्वारा सर्पों का नाश कर। जैसे गिरता हुआ काष्ठ होता है, वैसे ही सर्प विष निर्वीर्य हो गया है। तू इस भीषण विष को शांत कर ॥३॥ अरंघुष गोता लगा कर निकला और कहा कि उतराते हुए काष्ठ के समान सर्पों का विष निर्वीर्य हो गया है। तू इस सर्प के विष को दूर कर ॥ ४ ॥ पैद्व कसर्णील सर्प को, श्वेत और काले सर्प को नष्ट कर

डालता है। पैद्व ने रथर्व्या और पृदाकु के शिर को तोड़ दिया था ॥५॥ हे पैद्व ! तू श्रेष्ट है, हम तेरी प्रार्थना करते हैं। तू यहाँ आ। जिस मार्ग से हम गमन करने के इच्छुक हैं, तू उस मार्ग से सर्पों को दूर फेंक ॥६॥ सर्पों का नाश करने वाला पैद्व प्रत्यक्ष है, यह इसका पारायण है। वह इन शीघ्र चलने वाले विक्रमों का वर्तने वाला है ॥७॥ हमारे लिये काटने को सर्प का बंद मुख न खुले और खुला मुख बंद न हो। इस क्षेत्र के नर और मादा दोनों प्रकार के सर्प मन्त्र की शक्ति द्वारा निर्वीर्य हों ॥८॥ पास के और दूर के सर्प विष-हीन हों। इन आये हुए सर्पों को डण्डे से मारता हूँ। मैं बिच्छू को मुद्गर से कुचलता हूँ ॥९॥ अघाश्व और अकारण उत्पन्न होने वाले स्वज इन दोनों की औषधि मेरे पास है। हिंसात्मक पाप की इच्छा वाले सर्प के निमित्त इन्द्रदेव ने पैद्व को मेरे वश में किया है ॥१०॥

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः।
मे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥११॥
नष्टासवो नष्टविदा हता इन्द्रेण वज्रिणा।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम ॥१२॥
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥१३॥
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम्।
हिरण्ययी भिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥१४॥
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥१५॥
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च।
वातापर्जन्योभा ॥१६॥
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम्।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७॥
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव।

तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥१८॥
सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठइव कर्वरम् ।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥१९॥
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥२०॥

वह पैद्व स्थिर प्रभाव से युक्त है। इसके कारण यह सर्प शोक करते रहते हैं ॥११॥ इन सर्पों के विष और प्राण को वज्रिन इन्द्र ने नष्ट कर दिया था। यह इन्द्र के मारे हुए हैं, इन्हें अब हम मारते हैं ॥१२॥ तिर्यक् अलवेटे वाले तिरश्चिराज नामक सर्प मन्त्र की शक्ति से नष्ट हुए, पृदाकु नामक सर्प भी कुचल दिये गये। तू करिक्रत् सफेद और कृष्ण सर्प को कुशाग्रों में रख कर नष्ट कर ॥१३॥ 'सका कुमारी' किरातों के देशों में अवस्थित है। वह खोदने के सुवर्ण-आयुध द्वारा पर्वतों की चोटी पर ओषधियों को खोदती है ॥१४॥ यह युवा वैद्य कभी पराजित नहीं हुआ। इसमें मन्त्र शक्ति व्याप्त है। वह स्वज नामक सर्प और बिच्छू दोनों को नष्ट करने में समर्थ है ॥१५॥ इन्द्र, वायु, मित्र, वरुण और पर्जन्यद्वय ने सर्प को वशीभूत कर लिया ॥१६॥ पृदाकु, पृदाक्व, स्वज, तिरश्चिराज, कसर्णील और दशोनसि नामक सर्पों को मेरे मंगल के हेतु इन्द्र ने वश में कर लिया ॥१७॥ हे सर्प ! तेरे उत्पत्तिकर्ता को इन्द्र ने पहले नष्ट कर दिया था। उन सर्पों के संहार के समय कौन-सा सर्प शक्तिशाली रहा था ? ॥१८॥ कर्वर को पौंजिष्ट जैसे ग्रहण करता है, वैसा ही मैंने सिन्धु में लौट कर सर्प विष का शोधन कर दिया ॥१९॥ सब नदियाँ सर्पों के विष को वहा ले जांय, तिरश्चिराज नामक सर्प नष्ट होगए, पृदाकु नामक सर्प इस मन्त्र के बल से पीस दिये जांय ॥२०॥

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ।

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् ।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥२२॥

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥२३॥

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥२४॥

अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥२५॥

आरे अभूद विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥२६॥

मैं अपनी सद्बुद्धि द्वारा उर्वरी ओषधियों को वरण कर शीघ्र वेग वाली नदियों के समान प्रेरित करता हूँ, उससे हे सर्प ! तेरा विष दूर हो ॥२१॥ सूर्य, अग्नि, पृथिवी और ओषधियों में जो विष है तथा कन्द का विष पूर्णतया दूर हो जाय ॥२२॥ अग्नि, जल और ओषधि और सर्पों से उत्पन्न जो विद्युत है और जिनके द्वारा अनेक भीषण कर्म हुए हैं, उन सर्पों को हम हव्य समर्पित करते हैं ॥२३॥ हे तौदी और घृताची नाम वाली ओषधे ! मैं नीचे को पांव करके बैठा हुआ तेरे विष को निर्वीर्य करने वाले स्थान को ग्रहण करता हूँ ॥२४॥ हे रोगिन् ! तू हृदय की रक्षा करता हुआ अपने हरेक अङ्ग से विष को निकाल । उस विष का प्रभाव अधोगति को प्राप्त होता हुआ नष्ट हो जाय ॥२५॥ नवीन विष भी विष में मिलकर रुक गया । इस प्रकार विष नष्ट हो चुका । अग्नि ने सर्प विष को दूर कर दिया । सोम उसे दूर ले गया । वह विष काटने वाले सर्प को ही प्राप्त हो गया, इस लिए सर्प मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥२६॥

५ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि—सिन्धुद्वीपः, कौशिकः, ब्रह्मा; विहव्यः। देवता—आपः, मंत्रोक्ताः, प्रजापतिः। छन्द—पंक्तिः, जगती, बृहती, धृतिः, अनुष्टुप्; गायत्री; शक्वरी, अष्टि, उष्णिक्; त्रिष्टुप्।)

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥२॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥३॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥४॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥५॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥६॥

अग्नेर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥७॥

इन्द्रस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥८॥

सोमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥९॥

वरुणस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१०॥

हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल वीर्य और अभिभव करने की शक्ति हो। तुम्हीं इन्द्र के ऐश्वर्य हो। मैं तुम्हें ब्रह्म योगों से सम्पन्न करता हुआ जयशील योग के लिए समर्थ करता हूँ ॥१॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल, वीर्य, धन और तिरस्कार करने वाली शक्ति हो। मैं तुम्हें जयशील योग के निमित्त क्षत्रयोग से सम्पन्न करता हूँ॥२॥ हे जलो!तुम इन्द्र के ओज,बल,वीर्य,धनऔर तिरस्कार करने वाली शक्ति हो। मैं तुम्हें जयशीलता के निमित्त इन्द्र योगों से सम्पन्न करता हूँ॥३॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल, वीर्य, धन और शक्ति हो। मैं तुम्हें विजय के निमित्त सोम योगों से सम्पन्न करता हूँ ॥४॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, शक्ति, बल, वीर्य और ऐश्वर्य हो। मैं तुम्हें विजय के निमित्त अप योगों से सम्पन्न करता हूँ ॥५॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, शक्ति, बल, वीर्य और ऐश्वर्य हो। जयशील योग के लिये तुम मेरे पास सदा रहो तथा सब भूत मेरे पास रहें ॥६॥ हे जलो ! तुम अग्नि के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और जलों को हम में प्रतिष्ठित करो ॥७॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलों के वीर्य,तेज और उज्ज्वल जलों को हम में प्रतिष्ठित करो ॥८॥ हे जलो ! तुम सोम के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में प्रविष्ट करो ॥९॥ हे जलो!तुम वरुण के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलों के वीर्य,तेज और उज्ज्वल जलों को हममें प्रतिष्ठित करो ॥१०॥

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥११॥
यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१२॥

पितृणां भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ।।१३।।

देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ।।१४।।

यो व आपोऽपां भागोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ।।१५।।

यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ।।१६।।

यो व आपोऽपां वत्सोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ।।१७।।

यो व आपोऽपां वृषभोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ।।१८।।

यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ।।१९।।

यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽस्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२०॥

हे जलो ! तुम मित्रावरुण के भाग हो। इस लोक को प्रजापति के वर्च के नष्ट करने के लिये जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में प्रवतित करो ॥११॥ हे जलो ! तुम यम के भाग हो। इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हममें प्रतिष्ठित करो ॥१२॥ हे जलो ! तुम पितरों के भाग हो। इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में भर दो ॥१३। हे जलो ! तुम सविता के भाग हो। इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में भर दो ॥१४॥ हे जलो ! तुम्हारा जो जलीय भाग यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा सेवनीय और देवताओं से संयुक्त होने वाला है, उस जलीय भाग को, जो हमारे वैरी हैं, उन पर छोड़ता हूँ। वह जलीय भाग मुझे पुष्ट करे। मैं इस मंत्र द्वारा अभिचार कर्म तथा जल रूप शस्त्र से शत्रु को आच्छादित कर नष्ट करदूँ ॥१५॥ हे जलो ! तुम्हारी जो लहरें यजुर्मन्त्रों से सेवनीय हैं और देवताओं से मिलने वाली हैं,उन लहरों को अपने शत्रुओं पर छोड़ता हुआ अभिचार कर्म से और जल रूप शस्त्र से मन्त्र द्वारा ढक कर मार डालूँ, उन लहरों से मैं पुष्टि को प्राप्त करूँ ॥१६। हे जलो ! तुम में जो वत्स है,वह यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा सेवनीय और देवताओं की संगति करने योग्य है। उस वत्स को मैं अपने वैरी पर छोड़ता और अपने को पुष्ट करता हूँ। इस मंत्र द्वारा, अभिचार कर्म और जल रूप आयुध से अपने शत्रु को आच्छादित कर नष्ट करदूँ ॥१७॥ हे जलो ! तुम में जो वृषभ है, वह यजुर्मन्त्रों द्वारा सेवनीय तथा देव-संगति से युक्त है। उस वृषभ को हम अपने शत्रु पर छोड़ते हुए अपने को पुष्ट करते हैं। इस

मन्त्र द्वारा अभिचार कर्म से और जल रूप शस्त्र से अपने शत्रु को ढकता हुआ नष्ट कर दूँ ॥१८॥ हे जलो ! तुम में जो हिरण्यगर्भ है, वह यजुर्मन्त्रों से सेवनीय और देवताओं से संगति करने वाला है। उस हिरण्यगर्भ को हम अपने शत्रु पर छोड़ते हुए अपने को पुष्ट करते हैं। इस मन्त्र द्वारा अभिचार कर्म से और जल रूप शस्त्र से अपने शत्रु को आच्छादित करता हुआ मारता हूँ ॥१९॥ हे जलो ! तुम में जो अग्नियाँ हैं, वह यजुर्वेद के मन्त्रों से सेवनीय और देवताओं से संगति करने वाली हैं। उन अग्नियों को मैं अपने शत्रु पर छोड़ता और उन अग्नियों से ही अपने को पुष्ट करता हूँ। इस मन्त्र के बल से अभिचार कर्म द्वारा और जल रूप शस्त्र द्वारा अपने शत्रु को दाबता हुआ नष्ट करता हूँ ॥२०॥

ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्वन्तर्यजुष्या देवयजनाः ।
इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२१॥
यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥२२॥
समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२५॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योस्मान्

द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२६॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टियं
वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२७॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२८॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२९॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३०॥

हे जलो ! तुम में जो दिव्य पृश्नि पत्थर है, वह यजुर्वेद के मन्त्रों से सेवनीय और देवताओं से संगति वाला है। उसे मैं अपने शत्रु पर छोड़ता हुआ अपने को पुष्ट करता हूँ। इस मन्त्र के बल से अभिचार कर्म द्वारा और जल रूप शस्त्र द्वारा मैं अपने उस शत्रु को आच्छादित करता हुआ नष्ट करूँ ॥२१॥ हम ने तीन वर्ष के भीतर जो कुछ मिथ्याभाषण किया है, वह नवीन पाप दुर्गति प्राप्त कराने वाला है। जल मुझे उस पाप से छुड़ावें ॥२२॥ हे जलो ! मैं तुम्हें समुद्र की ओर प्रेरित करता हूँ। तुम उसमें लीन हो जाओ। तुम्हारी गति सब ओर है। तुम हिंसा का नाश करने वाले हो, अतः हम को कोई नष्ट न करे ॥२३॥ हे जलो ! तुम पाप-रहित हो। हम को भी पापों से छुड़ाओ। हमारे दुर्गति देने वाले पाप, दुःख और मल को प्रवाहित करो ॥२४॥ तू शत्रु नाश करने में समर्थ विष्णु का पराक्रम है। पृथिवी ने तुझे तीक्ष्ण किया और अग्नि ने तुझ में तेज भरा है। पृथिवी पर विक्रमण

कर, मैं पृथिवी से उसे हटाता हूँ। हमारा वैरी जीवित न रहे, वह अपने प्राणों से हीन हो जाय ॥२५॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है, तुझे अन्तरिक्ष ने तीक्ष्ण किया और वायु ने तेज से युक्त किया है। तू अन्तरिक्ष पर विक्रमण कर मैं उसे वहाँ से दूर करता हूँ। हमारा वैरी जीवित न रहे और प्राण त्याग दे ॥२६॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है, तुझे द्युलोक ने तीक्ष्ण किया है और सूर्य ने तेजस्वी बनाया है। तू द्युलोक पर विक्रमण कर, उसे वहाँ से दूर करता हूँ। हमारा शत्रु जीवित न रहे और प्राण त्याग दे ॥२७॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है, तुझे दिशा ने तीक्ष्ण किया है और मन से तेजस्वी बनाया है। तू दिशा पर विक्रमण कर, मैं उसे दिशा से पृथक् करता हूँ। हमारा वैरी प्राण त्यागे, जीवित न रहे ॥२८॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। आशा ने तुझे तीक्ष्ण किया है और वात के तेज से यशस्वी बनाया है। तू आशा पर विक्रमण कर, मैं उसे आशा से हीन करता हूँ। मेरा विद्वेषी प्राण त्यागे, जीवित न रहे ॥२९॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। ऋक् ने तुझे तीक्ष्ण किया है और साम से तेजस्वी बनाया है तू ऋक् पर ही विक्रमण कर, मैं उसे ऋक् से पृथक् करता हूँ। मेरा विद्वेषी प्राणों को त्यागे और जीवित न रहे ॥३०॥

विष्णो क्रमोऽपि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः।
यज्ञमन वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः। स मा जीवित् त प्राणो जहातु ॥३१॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्त निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३२॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्त निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३३॥
विष्णोः मोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः।

कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३४॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३५॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्य ष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३६॥
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम्।
दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते।
ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८॥
सप्तऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९॥
ब्रह्माभ्यावर्ते। तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४०॥

तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। तू यज्ञ द्वारा तीक्ष्ण हुआ है और ब्रह्म तेज से तेजस्वी बना है। तू यज्ञ पर विक्रमण कर, मैं उसे यज्ञ से पृथक् करता हूँ। जो हमारे वैरी हैं, प्राण उनका त्याग करे, वह जीवित न रह पावे ॥३१॥ तू विष्णु-नाशक पराक्रम है। तू ओषधि द्वारा तीक्ष्ण हुआ है और सोम से तेजस्वी बना है। तू ओषधि पर विक्रमण कर, मैं उसे ओषधि से दूर करता हूँ। मेरा शत्रु प्राण त्याग दे और वह जीवित न रहे ॥३२॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। तू जल के द्वारा तीक्ष्ण हुआ है। तू वरुण के तेज से तेजस्वी हुआ है। तू जल पर विक्रमण कर मैं उसे जल से पृथक् करता हूँ। मेरे शत्रु को प्राण छोड़ दे और वह शत्रु आयु से हीन हो जाय ॥३३॥ तू विष्णु का शत्रु नाशक पराक्रम है। तुझे कृषि ने कार्य के लिए तीक्ष्ण किया है और तू अन्न के तेज से तेजस्वी हुआ है। तू कृषि पर विक्रमण कर, मैं उसे कृषि से पृथक करता हूं। हमारे शत्रु को प्राण छोड़ दे

और वह शत्रु आयु से हीन हो जाय ।।३४। तू विष्णु का शत्रु नाशक पराक्रम है। तुझे प्राण ने तीक्ष्ण किया है और पुरुष तेज से तेजस्वी किया है। तू प्राण पर विक्रमण कर, मैं उसे प्राण से पृथक करता हूँ। मेरा शत्रु प्राण से रहित हो जाय जीवित न रहे ।।३५।। विजित् पदार्थों का ढेर हमारा है, लाये हुए पदार्थ हमारे हैं। मैं शत्रु की सम्पूर्ण सेना को वश में कर रहा हूँ। मैं अमुक गोत्र वाले, अमुक माता के पुत्र, जो मेरा शत्रु है, उनके वर्च, तेज, प्राण और आयु को घेरता हुआ शत्रु को पतित करता हूँ ।।३६।। दक्षिण में विस्तृत हुए सूर्य से आवृत मार्ग का मैं अनुवर्तन करता हूँ। वह दक्षिण दिशा मुझे ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज से सम्पन्न करे ।।३७।। मैं दमकती हुई दिशाओं की परिक्रमा करता हुआ उनसे ब्रह्मवर्च और ऐश्वर्य की याचना करता हूँ ।।३८।। मैं सप्त ऋषियों के सामने उपस्थित होता हूँ, वे मुझे धन और ब्रह्मवर्चस्व प्रदान करें ।३९।। मैं मन्त्र के सामने स्थित हूँ, वह मेरे लिए ऐश्वर्य और ब्रह्मवर्चस्व प्रदायक हों ।।४०।।

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु
ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ।।४१।।
यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहे ।
व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ।।४२।।
वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि ।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसा ।।४३।।
राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि ।
सोमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ।।४४।।
यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु ।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ।।४५।।
अपो दिव्या अचायिसं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ।।४६।।
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मे अस्य देवाजन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥४७॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान्
॥४८॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥४९॥
अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे
॥५०॥

मैं ब्राह्मणों की परिक्रमा करता हुआ उनसे धन और ब्रह्मवर्च की याचना करता हूँ ॥४१॥ हम जिसके लिए वह यत्न कर रहे हैं, उसे मारने वाले साधनों से रुकते हुए मन्त्र के बल से उसे अग्नि के मुख में धकेलते हैं ॥४२॥ यह समिधा से युक्त हविरूप शस्त्र उस शत्रु को अग्नि की दाढ़ मे डाले । यह तिरस्कार युक्त ज्योतिर्मती हवि शत्रु को खा डाले ॥४३॥ हे वरुण के पाश रूप मन्त्र ! तू अमुक गोत्र वाले, अमुक माता के पुत्र को अन्न और प्राण के निमित्त बाधक हो ॥४४॥ हे पृथिवी के अधिपति देव ! तुम्हारा जो अन्न पृथिवी में रहता है उसके सार रूप अन्न को हमें प्रदान करें । ४५॥ मैंने दिव्य जल सञ्चित किया है, मैं उससे संगति कर रहा हूँ । हे अग्ने ! मैं जल सहित तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ, मुझे तेज से युक्त करो ॥४६॥ हे अग्ने ! मुझे तेज, सन्तान और आयु से भले प्रकार सम्पन्न करो । इन्द्र ऋषियों सहित मुझे अग्नि के सेवक रूप में जान लें ॥४७॥ हे अग्ने ! जिस शत्रु के कारण आज स्तुति करने वाले कठोर वाणी का उच्चारण कर रहे हैं और समस्त स्त्री पुरुषों में हलचल हो रही है उस पीड़ा जनक शत्रु को अपने क्रोधित मन के उत्पन्न रूप बाणों को निकालते हुए मर्दित करो ॥४८॥ हे अग्ने ! इन पीड़ा देने वाले वैरियों को अपने तेज से भस्म कर दो । राक्षस रूप, हिंसा कर्म वाले शत्रुओं को अपनी ज्वाला से मिटा दो । दूसरों के प्राण लेकर अपना सन्तोष करने वाले शत्रुओं का संहार कर डालो ॥४९॥ मैं मन्त्र शक्ति का ज्ञाता हूँ । इस शत्रु का सिर तोड़ने के लिए चतुर्भृष्टि जल रूप वज्र का प्रहार करता हूँ । मेरे इस कार्य में समस्त देवता अनुकूल हों ॥५०॥

बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विवेचन की एक मौलिक कृति

विष्णु रहस्य

लेखक: —डा० चमन लाल गौतम, पू० सम्पादक 'जीवन यज्ञ
मथुरा, 'युग-संस्कृति', बरेली।

"यह अपने विषय की प्रथम पुस्तक है। इसमें भगवान विष्णु के
वैज्ञानिक स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है और वेद,
ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, गीता, पुराण, स्मृति और भारतीय
ाचीन वाङ्मय में वर्णित विष्णु के स्वरूप को भी यथावत रूप में
ाकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त बौद्ध, जैन एवं संत साहित्य
साथ मध्यकालीन काव्य साहित्य में भी वर्णित विष्णु स्वरूप को
कट करते हुये भारतीय ललित कलाओं में निहित विष्णु स्वरूप को
प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार विष्णु की
ापक मान्यता का एक स्पष्ट चित्र लेखक ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत
दिया है।"

इस कृति में अवतारवाद पर वैज्ञानिक रीति से विचार करते हुये
ाु के विभिन्न अवतारों का जहाँ रहस्य उद्घाटित किया गया है
विष्णु के मूल स्वरूप तथा विभिन्न अवतारी स्वरूपों से सम्बद्ध
देव, मुनि आदि पात्रों, व नायकों तथा उनके आयुध आदि
न पदार्थों के रहस्य को भी प्रकाशित करने का यथाशक्ति मौलिक
किया गया है।"

यह लेखक का मौलिक प्रयास है और साथ ही इस क्षेत्र में यह
म पथ प्रदर्शक प्रयास है, अतः सर्वथा प्रशंसनीय व अभिनन्दनीय
—'साहित्य परिचय' आगरा

मूल्य केवल ६)

प्रकाशक :—

भारतीय संस्कृति के गौरवशाली धर्म-ग्रन्थ

(हिन्दी अनुवाद सहित)

१.	चारों वेद ८ जिल्दों में—		
	ऋग्वेद ४ खण्ड	...	२७)
	अथर्ववेद २ खण्ड	...	१३)५०
	यजुर्वेद १ खण्ड	...	६)७५
	सामवेद १ खण्ड	...	६)७५
२.	१०८ उपनिषदें (३ खण्डों में)		
	ज्ञान खण्ड	...	७)७५
	ब्रह्म-विद्या खण्ड	...	७)७५
	साधना खण्ड	...	७)७५
३.	षट् दर्शन (६ जिल्दों में)		
	वेदान्त दर्शन	...	४)
	सांख्य दर्शन	...	४)
	योग दर्शन	...	४)
	वैशेषिक दर्शन	...	४)
	न्याय दर्शन	...	४)
	मीमांसा दर्शन	...	४)
४.	२० स्मृतियाँ २ खण्ड	...	१४)
५.	शिव पुराण २ खण्ड	...	१४)
	वायु पुराण २ खण्ड	...	१४)
	विष्णु पुराण २ खण्ड	...	१४)
	अग्नि पुराण २ खण्ड	...	१४)
	मार्कण्डेय पुराण २ खण्ड	...	१४)
	गरुड़ पुराण २ खण्ड	...	१४)
	हरिवंश पुराण २ खण्ड	...	१४)
	देवी भागवत पुराण २ खण्ड	...	१४)
	भविष्य पुराण २ खण्ड	...	१४)
	पद्म पुराण २ खण्ड	...	१४)
	लिङ्ग पुराण २ खण्ड	...	१४)
६.	विष्णु रहस्य	...	६)

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ० प्र०)